त्रिफला

(ज्योतिष)

सुश्लोकशतक शतयोगराजमंजरी वेडाजातक

फलित के प्राचीन ग्रंथ

इस पुस्तक में ज्योतिष के तीन प्रामाणिक ग्रंथों की सरल हिन्दी में व्याख्या है। संस्कृत-प्रेमियों के लिये मूल श्लोक भी दे दिये गये हैं। सुश्लोक-शतक पाराशरी ज्योतिष का अनुपम ग्रंथ है। शतमंजरी राजयोग में एक सौ से अधिक राजयोग दिये गये हैं। बेड़ाजातक फलित का प्राचीन ग्रंथ है। इसके ८ अध्यायों में ५२८ योग दिये गये हैं। ये तीनों ग्रंथ प्रथम बार हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं और ज्योतिष-प्रेमियों के लिए सर्वथा नवीन साहित्य है।

मूल्य : रु० २५

भारतीय संस्कृति साहित्य के प्रमुख प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७
शाखाएं : १. चौक, वाराणसी-१ (उ० प्र०)
२. अशोक राजपथ, पटना-४ (बिहार)

प्रथम संस्करण : १९७१
पुनर्मुद्रण : १९८२
मूल्य : रु० २५

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित तथा श्री शान्तिलाल जैन, श्री जैनेंद्र प्रेस, ए-४५, फेज़ १, इंडस्ट्रियल एरिया, नारायणा, नई दिल्ली-२८ द्वारा मुद्रित।

भूमिका

विनायकसमाराध्या श्रीकण्ठपदसङ्गिनी ।
चन्द्रिकोत्तंसभृत् काचित् क्षेमं दिशतु देवता ॥

बहुत हर्ष का विषय है कि ज्योतिष साहित्य के तीन अमूल्य रत्न हिन्दी जगत् के सम्मुख उपस्थित किए जा रहे हैं। इन रत्नों का अमित प्रकाश फलितशास्त्र में निश्चय ही मार्ग प्रदर्शन का काम करेगा।

सुश्लोकशतक—उडुदायप्रदीप पर श्लोकबद्ध संस्कृतटीका है। इसके एक सौ श्लोक पाराशरी ज्योतिष के विचार में बहुत प्रामाणिक माने जाते हैं। उडुदाय प्रदीप की अन्य संस्कृत टीकाओं का तुलनात्मक विवेचन भी हिन्दी व्याख्या में किया गया है।

शतमंजरी राजयोग का अनुवाद करीब ५० वर्ष पूर्व बंगलोर-निवासी, एस्ट्रोलौजिकल मैगज़ीन के संस्थापक श्री सूर्यनारायण राव ने किया था। यह अनुवाद अंग्रेज़ी में था जो अब उपलब्ध नहीं है। जहाँ तक हमें ज्ञात है यह राजयोग सम्बन्धी पुस्तक हिन्दी में प्रथम बार प्रकाशित हो रही है। इस प्राचीन पुंस्तक के लेखक के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

वेडाजातक प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथ है। यह प्रायः अप्राप्य है। वेडा कहते हैं नौका को। जातक समुद्र पार करने के लिए यह ग्रन्थ नौका के सदृश है।

इस प्रकार फलित ज्योतिष की तीन अमूल्य पुस्तकों को एकसाथ पाठकों को समर्पण कर रहे हैं, इसलिए इसका नाम

त्रिफला रखा गया है। कदाचित् आपात दृष्टि से देखने वालों को यह भ्रम न हो जावे कि यह आयुर्वेद की त्रिफला है, इसलिए इसका नाम त्रिफला (ज्यौतिष) रखा गया है। आशा है कि मेरा यह परिश्रम पाठकों की ज्ञानवृद्धि में सहायक होगा।

निवेदक

विक्रम संवत् २०२७। गोपेशकुमार ओझा

———

विषयानुक्रमणिका

सुश्लोकशतक

वेड़ा जातक

———

सुश्लोक शतक

संज्ञाध्याय

महेशं प्रणिपत्यादौ स्फुटं पाराशरं मतम् ।
करोमि सुखबोधाय सुश्लोकशतकं मुदा ।। १ ।।

सर्वेग्रहाः प्रपश्यन्ति सप्तमं निजराशितः ।
शनिस्त्र्याशं गुरुः कोणं चतुरस्रं महीसुतः ।।२।।

इमेऽपि सप्तमं सर्वे नान्यद्भावं हि खेचराः ।

सर्वप्रथम भगवान् शंकर को प्रणाम करके पाठकों के सुख-बोध के लिये, जिससे आसानी से यह विषय पढ़ने वालों को हृदयंगम हो जावे—पराशर के ज्योतिष के मत को प्रकट करने वाले इस 'सुश्लोकशतक' ग्रंथ की रचना करता हूँ ।

सूर्य. चन्द्र आदि सब ग्रह जहाँ जिस राशि में वे बैठे हों, वहाँ उस राशि से सातवीं राशि को देखते हैं । विशेष यह है कि इस सप्तम दृष्टि के अतिरिक्त शनि की तृतीय और दशम पर भी दृष्टि होती है । बृहस्पति की सप्तम के अतिरिक्त नवम और पंचम पर भी पूर्ण दृष्टि होती है तथा मंगल की सप्तम के अतिरिक्त चतुर्थ तथा अष्टम पर भी पूर्ण दृष्टि होती है ।

कहने का अभिप्राय यह है कि जो बृहस्पति के अतिरिक्त

अन्य ग्रहों की नवम, पंचम पर आधी दृष्टि, मंगल के अतिरिक्त अन्य ग्रहों की चतुर्थ, अष्टम पर तीन-चौथाई दृष्टि, तथा शनि के अतिरिक्त अन्य ग्रहों की तृतीय, दशम पर एक-चौथाई दृष्टि मानी गई हैं उसे यहाँ लागू नहीं करना चाहिये। केवल पूर्ण दृष्टि को ही दृष्टि मानना चाहिये।

राहु-केतु की दृष्टि नहीं मानी गई है।

ग्रहाः खलाः खला नात्र सौम्याः सौम्याः कदाचन ॥३॥

तत् तत् स्थानानुसारेण भवन्तीह खलाः शुभा।
शुभाः खलास्तथा बोध्यास्तन्निर्णयमथो श्रृणु ॥४॥

केन्द्राधिपतयः पापा भवन्त्यत्र शुभा यतः।
शुभाः पापास्तथा बोध्याः प्रबलाश्चोत्तरोत्तराः ॥५॥

लग्नेशाच्चतुर्थेशस्ताभ्यां स्यात् सप्तमेश्वरः।
बली कर्मेश्वरस्तेभ्यस्तथाङ्केशः सुतेश्वरात् ॥६॥

विक्रमेशाच्च षष्ठेशः षष्ठेशाल्लाभनायकः।
शुभो वा यदि पापो वा भवेत्कोणाधिपः शुभः ॥७॥

त्रिषडायपतिः पापश्चाष्टमेशस्तथाविधः।
धनव्ययेश्वरौ चापि शुभाशुभयुतौ ग्रहौ ॥८॥

शुभाशुभौ केवलौ तु स्थानानुगुणपाकदौ।
पाप कुजो कर्मनाथो यदि नो पञ्चमाधिपः ॥९॥

कुम्भलग्ने यदा जन्म कर्मनाथः कुजो भवेत्।
तदा पापो विशेषेण न कदाचिच्छुभप्रदः ॥१०॥

कर्कलग्ने कर्मनाथः कुजः सत्फलदायकः।

ये सात श्लोक और दो श्लोकांश—एक प्रकार से पाराशरी ज्योतिष के आधारभूत हैं, क्योंकि इनमें यह बताया गया है कि कौन-कौन से घरों के स्वामी शुभ हैं और कौन-कौन से पापी। एक बार शुभ और पाप का निर्णय हो जाने पर फलादेश करना सरल हो जाता है। सुश्लोकशतक के अनुसार इस पाराशरी सम्प्रदाय में नैसर्गिक शुभ और पाप का उतना महत्व नहीं है, जितना भावाधिप होने के कारण शुभत्व और पापत्व होना। इसीलिये ग्रन्थकर्त्ता लिखते है कि जो खल (दुष्ट या पापी) ग्रह हैं वे यहाँ, अर्थात् इस विचार में आवश्यक रूप से खल ही हों ऐसा नहीं है। शनि, मंगल, सूर्य, पापयुत बुध तथा क्षीण चन्द्र नैसर्गिक रूप से पापी अथवा खल माने गये हैं। बहुत से लोग सूर्य को क्रूर कहते हैं, पापी नहीं। अस्तु, यह सूक्ष्म तारतम्य की बात है। साधारण रूप से यह ग्रह पापी संज्ञा में आते हैं। साधारण रूप से राहु और केतु को भी पापी माना जाता है परन्तु यहाँ उन दोनों को नहीं लिया है। क्योंकि इस प्रसंग में भावाधिपवश शुभत्व और पापत्व की विवेचना करनी है, और राहु तथा केतु किसी राशि का ऐकान्तिक आधिपत्य नहीं करते। इस कारण राहु और केतु की, भावेश या भावाधिप होने के कारण, मीमांसा की नहीं जा सकती क्योंकि वे भावेश होते नहीं। इस कारण नैसर्गिक पापवर्ग में राहु, केतु को न लेकर केवल शनि, मंगल आदि ही गिनाये गये हैं।

जैसाकि ऊपर कहा गया है इस पाराशरी फलादेश में नैसर्गिक पापी पापी ही हों, ऐसा नहीं होता। यदि नैसर्गिक पापी शुभ भवन (भाव या घर) का स्वामी हो तो वह वहाँ शुभ ही गिना जावेगा और उसकी दशा का फल शुभ ही कहा जावेगा।

जैसे यह आवश्यक नहीं कि पाप ग्रह इस मतानुसार पापी

ही हो, वैसे यह भी यहाँ आवश्यक नहीं कि शुभ ग्रह शुभ ही हों। शुभ ग्रह शुक्ल पक्ष की पंचमी से कृष्ण पक्ष की पंचमी तक का चन्द्र होता है। कुछ लोग शुक्ल पक्ष की अष्टमी से कृष्ण पक्ष की अष्टमी तक ८ या अधिक कलावान् होने से चन्द्रमा को इस काल में शुभ मानते हैं।[1] एक अन्य मतानुसार केवल कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और अमावास्या को चन्द्रमा क्षीण होता है अन्यथा नहीं। इस प्रकार चन्द्रमा (शुक्ल पक्ष का), बुध (यदि पाप ग्रह से युत न हो), शुक्र और बृहस्पति नैसर्गिक शुभ ग्रह हैं। किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है, यह आवश्यक नहीं कि वह शुभ ही हों। यह क्यों? क्योंकि किसी कुंडली में नैसर्गिक शुभ ग्रह शुभ स्थानों का स्वामी होगा तभी इस पाराशरी मत में वह शुभ माना जावेगा। यदि अशुभ स्थानों का स्वामी हो तो चाहे वह नैसर्गिक शुभ ही हो, पापी ही समझा जावेगा। अच्छे भावों के स्वामी होने से कभी खल ग्रह भी शुभ हो जाते हैं, और ख़राब स्थान के स्वामी होने से कभी नैसर्गिक शुभ ग्रह भी पापी हो जाते हैं, यही इस पाराशरी मत की विशेषता है।

अब स्थानों को ६ भागों में बाँटते हैं—

(१) त्रिकोण अर्थात् पाँचवाँ तथा नवाँ घर।
(२) केन्द्र—प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान।
(३) त्रिक—तीसरा, छठा और ग्यारहवाँ घर।
(४) लग्न के दोनों ओर के घर—अर्थात् बारहवाँ तथा दूसरा घर।
(५) अष्टम स्थान।
(६) यद्यपि केन्द्र के अन्तर्गत पहला घर, लग्न भी आ

१. साधारणतया शुक्लपक्ष का चन्द्रमा शुभ, कृष्णपक्ष का पाप।

गया किन्तु लग्न भाव में अन्य केन्द्रों से कुछ विशेषता है—लग्न केन्द्र भी है, त्रिकोण भी है—इसी कारण लग्न की तथा लग्नेश की पृथक् विवेचना भी की है।

अब इनको पृथक्-पृथक् लेकर विवेचना करते हैं।

इन ग्रन्थकार ने तथा अन्य टीकाकारों ने सब ने एकमत से पाँचवें और नवें घर के स्वामी को शुभ माना है। संस्कृत में नवें स्थान की 'शुभ' संज्ञा भी है। इस कारण त्रिकोणेश की शुभता में कोई वैमत्य नहीं है। उद्योत टीका के अनुसार सातों ही ग्रह—त्रिकोणेश होने से शुभ होते हैं। राहु और केतु किसी राशि के स्वामी न होने के कारण त्रिकोणेश हो नहीं सकते। इसलिये त्रिकोणेश पद उनके लिये लागू नहीं होता। नैसर्गिक शुभ या पाप कोई भी ग्रह त्रिकोणेश होने से शुभता का अधिकारी हो जाता है। जब पाप ग्रह भी त्रिकोणेश होने से शुभ माना जाता है, तब शुभ ग्रहों का तो कहना ही क्या! वे तो और भी अधिक शुभ होंगे।

यदि सातों ग्रह त्रिषडायाधीश होंगे—अर्थात् इनमें से कोई तीसरे, छठे, या ग्यारहवें का मालिक होगा तो वह पापी माना जावेगा। जब शुभ ग्रह भी तीसरे, छठे, ग्यारहवें का मालिक होने से पापी माना जाता है तो पाप ग्रह, त्रिषडायाधीश होने से और भी अधिक पापी होगा।

सज्जनरञ्जनी टीका के अनुसार त्रिकोण का नेतृत्व नवों ग्रह कर सकते हैं क्योंकि भुवनदीपक में कहा है कि कन्या राहु का गृह है और मिथुन राहु की उच्च राशि है। इस कारण यदि नवम या पंचम में कन्या पड़े तो राहु को भी त्रिकोण का स्वामी माना जावे, और त्रिकोण का स्वामी होने के कारण राहु को शुभ माना जावे। ऐसी स्थिति में एक राशि (कन्या) के दो स्वामी बुध और राहु हो जावेंगे। अन्य टीकाकार यह

मानने को तैयार नहीं हैं। न ज्योतिषियों का यह सम्प्रदाय ही है।

अस्तु, अब त्रिषडायापति अर्थात् तीसरे, छठे और ग्यारहवें घरों के सम्बन्ध में सुश्लोकशतक का मत है कि इन स्थानों का मालिक पापी होता है। अष्टमेश भी पापी होता है। अष्टमेश की व्याख्या पृथक् की जायेगी क्योंकि उसके सम्बन्ध में कई विशेष नियम हैं कि वह कब पापी नहीं होता तथा किन स्थितियों में कम पापी होता है। यहाँ केवल तृतीयेश, षष्ठेश तथा एकादशेश का विवेचन करेंगे। सज्जनरञ्जनी के अनुसार भी तीसरे, छठे, ग्यारहवें घर का मालिक पापी होता है परन्तु यदि तीसरे का मालिक तीसरे में, छठे का मालिक छठे में या एकादश का मालिक एकादश में हो तो वह पापी या पाप-फलद नहीं होता, यह विशेष बात कही है। इसका आधार यही है कि अपनी उच्चराशि में ग्रह दीप्त, अपनी राशि में स्वस्थ कहलाता है। शास्त्रान्तरों में स्वस्थ ग्रह की दशा का शुभ वर्णन किया गया है। अपने घर में ग्रह बली हो तो पाप (अनिष्ट

---

१. राहु, केतु किन राशियों में स्वगृही होते हैं और किनमें उच्च, इस विषय में शास्त्रकारों में महान् मतभेद है। 'जातक परिजाता' के मत में राहु का घर कन्या है, मूल त्रिकोण, कुंभ तथा उच्च राशि मिथुन। बृहत्पाराशर के मतानुसार राहु का उच्च स्थान वृषभ है, केतु का वृश्चिक, मूल त्रिकोण कर्क, मिथुन और धनु (दो राशि क्यों) सम्भवतः राहु का मिथुन; केतु का धन। राहु का स्वस्थान कन्या और केतु का मीन। फलदीपिका के अनुसार मेष, वृष, कर्क, वृश्चिक और कुम्भ में राहु बली होता है और केतु वृष, कन्या और धनु के उत्तरार्द्ध और मीन में बली होता है। राहु की उच्च राशि मिथुन, स्वराशि कन्या। केतु की उच्च राशि धनु, स्वराशि मीन, यह संकेत-निधि के अनुसार है। राहु का

फल) कैसे करेगा ? फलदीपिका के अध्याय ६, श्लोक १५ में कहा गया है कि यदि ग्रह अपनी राशि में हो तो उसकी दशा में किसी बड़े व्यक्ति की कृपा या सहायता से मनुष्य बहुत धनोपार्जन करता है। उसके घर में लक्ष्मी दृढता से निवास करती है। जातक स्वयं प्रभुत्व को प्राप्त होता है अर्थात् स्वराशि में स्थित ग्रह की दशा में स्वयं बड़ा आदमी हो जाता है। जो वस्तु जीवन के गत काल में नष्ट हो गई हों या छिन गई हों उनकी पुनःप्राप्ति हो जाती है। नया मकान या भूमि प्राप्ति हो। उसी ग्रंथ के अध्याय २०, श्लोक ३० में कहा गया है कि ग्रह की दशा का विचार करना हो तो वह यदि उच्च राशि स्थित हो तो पूर्ण शुभ फल करता है, अशुभ फल नहीं। यदि स्वगृही हो और अच्छे स्थान में हो तो तीन-चौथाई शुभ फल

उच्च स्थान वृश्चिक और केतु का कुम्भ, यह संकेतनिधि की संस्कृत टीका में यवन मत दिया गया है। कोई-कोई राहु का उच्च स्थान वृषभ, मूल त्रिकोण कर्क और मित्र राशि मेष मानते हैं। एक अन्य मत है कि सिंह, कन्या, धनु और मीन राहु के स्वस्थान हैं। कुछ राहु का गृह कन्या मानते हैं, कुछ अन्य कन्या को केतु का गृह। अन्य मत है कि जिस राशि में केतु उदय हो वह केतु का गृह। केतु से आशय पुच्छल तारे से है — जिसका उदय भावी उपद्रव, छत्र-भंग, व्यथा आदि का द्योतक है। यह विभिन्न मत 'दैवज्ञाभरणम्' में दिये गये हैं। इन विविध मतों का प्रदर्शन इसीलिए किया गया है कि राहु और केतु की स्वराशियों के विषय में मतैक्य नहीं है।

राहु और केतु के विशेष फल के लिये देखिये हमारी लिखी 'सुगम ज्योतिष-प्रवेशिका' और 'फलदीपिका' की भावार्थबोधिनी टीका। यह दोनों पुस्तकें श्री मोतीलाल बनारसीदास, पुस्तक-विक्रेता तथा प्रकाशक के यहाँ प्राप्य हैं।

करता है और अशुभ स्थान में हो तो एक-चौथाई अशुभ फल। इसी अध्याय के श्लोक ४, ७ तथा १२ में कहा है कि यदि तीसरे घर का स्वामी बलवान् हो तो प्रसन्नता और संतोष के संवाद सुनने को मिलते हैं, भाइयों की अनुकूलता या प्रेम प्राप्त होता है, पराक्रम की वृद्धि होती है। ऐसा व्यक्ति सद्गुण-भाजन होता है। लोग उसका आश्रय लेते हैं अर्थात् उसके अधीन बहुत से व्यक्ति रहते हैं और वह सेनापति अथवा इसी श्रेणी का कोई उच्च पद प्राप्त करता है।

यदि षष्ठेश बलवान् होकर षष्ठ में हो अर्थात् छठे घर का स्वामी छठे घर में ही बैठे तो जातक साहस पूर्वक अपने शत्रुओं पर जय प्राप्त करता है; अति लक्ष्मीवान् होता है; सुन्दर स्वास्थ्य रहे, उदार वृत्ति का हो और उसको कोई दबा न सके। यह शुभ फल षष्ठेश की दशा का है। यदि ग्यारहवें घर का मालिक ग्यारहवें घर में स्वगृही, शुभ दृष्ट हो तो जातक को ऐश्वर्य-प्राप्ति, बिना प्रतिबन्ध (रोक-टोक) इष्ट-बन्धु का समागम, अनेक नौकरों तथा दासों की प्राप्ति हो, संसार में उसे सुख-सौभाग्य प्राप्त हो और उसका महान् उदय एकादश के मालिक की दशा में हो। विशेष विवरण के लिये हमारी लिखी फलदीपिका (भावार्थ बोधिनी) देखिये। इन्हीं आधारों पर सज्जनरञ्जनी में लिखा है कि तृतीयेश तृतीय में, षष्ठेश षष्ठ में तथा एकादशेश एकादश में हों तो इन ग्रहों की पाप संज्ञा नहीं होती।

अब केन्द्राधिपतियों को लीजिये। सुश्लोक शतककार लिखते हैं कि सामान्यतः जो पापी समझे जाते हैं वे केन्द्राधिपति होने से शुभ माने जाते हैं और जो सामान्यतः शुभ होते हैं, अर्थात् नैसर्गिक शुभ, वह केन्द्राधिपति होने से पाप हो जाते हैं। लग्नेश की अपेक्षा चतुर्थेश बली है, चतुर्थेश की अपेक्षा सप्तमेश

अधिक बली और सप्तमेश से भी अधिक बली दशमेश होता है। इसी प्रकार दोनों त्रिकोणेशों—पंचमेश तथा नवमेश में—नवमेश अधिक बली होता है। और त्रिषडायेशों में भी उत्तरोत्तर बली होते हैं :—तृतीयेश से अधिक बली षष्ठेश, षष्ठेश से अधिक बली एकादशेश।

कुज (मंगल) यदि दशम का स्वामी हो, और साथ ही साथ वह पंचम का भी स्वामी हो तो शुभ होता है—केवल दशमेश होने से शुभ नहीं होता। दशम में मंगल की राशि केवल कर्क लग्न और कुम्भ वाली कुण्डलियों में हो सकती है। कर्क लग्न वाली कुण्डलियों में मंगल दशम और पंचम का स्वामी होता है इसलिये वह शुभ है। किन्तु कुम्भ लग्न वाली कुण्डली में मंगल दशम तथा तृतीय का स्वामी होताहै (अर्थात् केन्द्रपति होने के साथ-साथ त्रिकोणपति नहीं होता) इस कारण वह पापी ही हो गया।

उद्योतकार कहते हैं सौम्य ग्रह—चन्द्र, बुध, शुक्र आदि—यदि लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम के स्वामी हों, तो शुभ नहीं होते। अर्थात् शुभ ग्रह भी केन्द्र के अधिपति होने के कारण शुभ फल प्रदान नहीं करते और क्रूर (नैसर्गिक) ग्रह सूर्य मंगल, शनि यदि केन्द्रपति हों तो अशुभ फल प्रदान नहीं करते, शुभ फल ही प्रदान करते हैं। त्रिकोणपतियों की अपेक्षा त्रिषडायेश और त्रिषडायेश की अपेक्षा केन्द्रेश प्रबल हैं।

सज्जनरञ्जनी का मत है कि ऊपर जो यह व्याख्या की गई कि तीसरे का मालिक यदि तीसरे में हो, षष्ठेश यदि षष्ठ में हो किंवा एकादशेश एकादश में हो तो पापी नहीं होते, इस सामान्य नियम का एक अपवाद है। वह यह कि यदि वृश्चिक लग्न हो और मंगल षष्ठाधिपति होकर षष्ठ में हो, तो वह शुभ नहीं होता।

इन टीकाकार के अनुसार, जो टीकाकार यह व्याख्या करते हैं कि त्रिकोण यदि त्रिषडायाधीश भी हो तो शुभ नहीं होता, यह व्याख्या असत् है (ठीक नहीं है)। कर्क लग्न में बृहस्पति षष्ठ (धनु) तथा नवम (मीन) का स्वामी होता है—एक घर—त्रि, षट्, आय इस वर्ग का है। एक घर त्रिकोण का है फिर भी कर्क लग्न के लिये बृहस्पति शुभ ही माना जाता है। किन्तु कन्या लग्न की कुण्डली वाले व्यक्तियों के लिये त्रिकोण (पंचम में मकर राशि होने के कारण) तथा षष्ठ (छठे में कुम्भ राशि पड़ने से) का मालिक होने से भी शनि अशुभ ही माना जाता है। वराहमिहिर के मतानुसार—एक ग्रह जब दो कारणों से विरुद्ध धर्म वाला हो—एक हैसियत से शुभ फल देने वाला, दूसरी हैसियत से अशुभ फल देने वाला, तो दोनों फलों का नाश हो जाता है।

केन्द्र के स्वामी का विवेचन करते हुए सज्जनरञ्जनीकार कहते हैं कि पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र यदि केन्द्र के स्वामी हों तो शुभ फल नहीं देते किन्तु अशुभ ही फ़ल देते हैं। क्रूर ग्रह—क्षीण चन्द्र, सूर्य मंगल तथा शनि – यदि केन्द्र के स्वामी हों तो अशुभ फल नहीं देते। ऐसा कैसे होता है, इसमें शंका नहीं करनी चाहिये। यहाँ यह व्यवस्था है—

यदि शुक्ल पक्ष में जन्म हो, मेष लग्न हो तो मंगल तथा शनि सत्फल देने वाले हैं। चन्द्रमा और शुक्र असत्फल देने वाले हैं। वृष लग्न में जन्म हो तो सूर्य, भौम, शनि उत्तम फल देते हैं। शुक्र अशुभ फल देने वाला है। मिथुन-जन्म के लिये केन्द्राधिपतियों में कोई शुभ फल देने वाला नहीं है। कर्क, तुला या मकर लग्न हो तो मेष में जो व्यवस्था बताई गई है वही समझना। सिंह, वृश्चिक या कुम्भ लग्न हो तो वृष लग्न के समान फल समझना। यदि

कन्या, धनु या मीन लग्न हो तो मिथुन लग्न वालों के लिए जो केन्द्रेशों की स्थिति (अर्थात् पाप) वही होगी। इससे क्या निष्कर्ष निकला ? यह कि द्विस्वभाव लग्न में जन्म लेने वालों की अपेक्षा शुक्ल पक्ष में चर लग्न में जन्म लेने वाले अधिक भाग्यशाली—उससे भी अधिक भाग्यशाली कृष्ण पक्ष में चर लग्न में उत्पन्न जातक—उससे भी अधिक भाग्यशाली स्थिर जन्म वाले जातक। इस प्रकार केन्द्राधिप पाप होता है यह लक्षण बताये जाने से जो ग्रह (केन्द्राधिप) शुभ है वह भी पाप फल ही देता है। इस प्रकार द्विस्वभाव लग्न में जन्म लेने वालों को बुध और बृहस्पति की दशा सदैव अशुभ फल देने वाली होती है कभी सत्फल देने वाली नहीं होती और पापी (नैसर्गिक) की दशा प्राकृतिक रूप से शुभ फल देने वाली नहीं होती है, इसलिये द्विस्वभाव लग्न वाला सर्वदा दुःखी ही रहे, ऐसा नहीं है। यह केवल पूर्व पक्ष है। ऐसा क्यों नहीं है ? क्योंकि विशेष कथन यह है कि यदि केन्द्रपति केन्द्र में हो (प्रथम का स्वामी प्रथम में, चतुर्थ का चतुर्थ में, सप्तम का सप्तम में या दशम का दशम में)तो यह अविचारित रमणीय है अर्थात् इतना सुन्दर है कि उसमें विचार की भी आवश्यकता नहीं--बिना विचारे तत्काल कह सकते हैं कि बहुत सुन्दर है, और शुभ है। यदि पापग्रह केन्द्र में स्वगृही हों तो विचारित-रमणीय है अर्थात् विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि वह स्वगृही पाप-ग्रह केन्द्र में सुन्दर हैं। इस तरह शुभ ग्रह केन्द्र में अपने घर में हो तो बहुत सुन्दर, अन्य केन्द्र में हो तो पहिले की अपेक्षा कुछ कम सुन्दर, परन्तु सुन्दर ही समझिये। यदि शुभ (नैसर्गिक) केन्द्राधिप पणफर या आपोक्लिम में हो तो शुभ फल प्रदान नहीं करता। पापग्रह (नैसर्गिक) यदि केन्द्र में स्वगृही हो तो विचारने पर सुन्दर। यदि पणफर या आपोक्लिम में हो

तो अशुभ फल नहीं देता। लग्नेश (पाप ग्रह) लग्न में ही हो तो शुभ फल देता है। दशमेश (नैसर्गिक पापग्रह हो) दशम में हो तो शुभ फल देता है। चतुर्थेश पापग्रह चतुर्थ में ही हो तो चतुर्थ भाव सम्बन्धी पूर्ण शुभ फल नहीं देता– किंचित् न्यूनता शुभ फल में करता है। सप्तमेश पापी सप्तम में हो तो बहुत विवाह कराता है। प्रबल सप्तमेश (पापी) सप्तम में हो तो भार्या (पत्नी) और भर्ता (पति) में स्नेह की कमी करता है। यह सामान्य शास्त्र के वचन ध्यान में रखते हुए—इस ग्रंथ में जो विशेष नियम दिये गये हैं –उनको लागू करना चाहिये।

इसीलिये कहा गया है :—

> क्रूराः कुर्वन्ति दारिद्रयं त्रिकोणकण्टकाश्रिताः।
> एवं केन्द्रे शुभाः सर्वे सद्योलाभकराः स्मृताः॥

पराशर जातक के इस वचन के अनुसार यदि केन्द्र या त्रिकोण में क्रूर ग्रह हों तो दरिद्रता करते हैं और केन्द्र में शुभ ग्रह सद्यः (शीघ्र ही) लाभ कराते हैं। यहाँ यह अभिप्राय नहीं है कि केन्द्रेश से भिन्न शुभग्रह केन्द्र में लाभ कराते हैं।

क्योंकि

> स्वर्क्षतुङ्गत्रिकोणस्था मित्रर्क्षांशगता अपि।
> यावन्त आश्रिताः केन्द्रे ते सर्वेऽन्योन्यकारकाः॥

अर्थात् स्वगृही, उच्च, मूल त्रिकोण या मित्र की राशि और नवांश में भी जितने ग्रह केन्द्र में होते हैं वे एक-दूसरे के कारक होते हैं।

त्रिकोणेश, त्रिषडायाधीश तथा केन्द्रेश उत्तरोत्तर प्रबल होते हैं – अर्थात् त्रिकोणेश से प्रबल त्रिषडायाधीश और केन्द्रेश सबसे बली। यह सब सज्जनरञ्जनीकार का मत है जिस ने पाराशरी ज्योतिष-सिद्धान्तों की व्याख्या की है।

अब पाठकों को श्री विनायक शास्त्री की व्याख्या से परिचित कराया जाता है। यह काशी के दिग्गज विद्वान् थे और ज्योतिष विद्या के मार्तण्ड। सभी ज्योतिषी इनकी विद्वत्ता का लोहा मानते थे। इनका उपनाम वेतालशास्त्री था।

इनके मतानुसार सब त्रिकोणपति (चाहे नैसर्गिक शुभ हों या नैसर्गिक पापी) शुभ होते हैं। तीसरे, छठे, ग्यारहवें के स्वामी यदि पापो (नैसर्गिक) हों तो पापफलद होते हैं और शुभ फल नहीं देते। केन्द्र के स्वामी शुभग्रह हों तो शुभ फल नहीं देते। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि शुभ फल का प्रतिषेध किया है; पाप फल का आरोप नहीं। किसी के लिये यह कहना कि शुभ फल नहीं देता और यह कहना कि पाप फल देता है, इन दोनों कथनों में महान् भेद है। मान लीजिये कि भूमध्य रेखा के ऊपर उत्तर है और नीचे दक्षिण है। अब यदि भूमध्य रेखा पर कोई स्थान है तो हम यह कहते हैं कि यह उत्तर में नहीं है—परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह दक्षिण में है। इसी प्रकार जब यह कहा कि शुभग्रह केन्द्र का स्वामी हो तो शुभ फल नहीं देता तो इसका अर्थ यह करने से कि वह पाप फल देता है—अर्थ का अनर्थ हो जावेगा।

इसी प्रकार नैसर्गिक पापी केन्द्र का स्वामी होने से अशुभ फल नहीं देता, एतावन्मात्र कहा है। इसका अर्थ भी यही है कि पापत्व का प्रतिषेध मात्र किया है- शुभत्व का आरोप नहीं।

इस प्रकार त्रिकोणेशों का नैसर्गिक शुभत्व और नैसर्गिक पापत्व का प्रतिषेध करके उनमें शुभत्व का आरोप करते हैं कि त्रिकोणेश शुभ ही फल देते हैं। श्री विनायक शास्त्री के मतानुसार, त्रिकोण में लग्न की भी गणना करनी चाहिये।

त्रिषडायपति के नैसर्गिक शुभत्व या पापत्व का प्रतिषेध

नहीं करते अर्थात् त्रि, षट, आयपति यदि नैसर्गिक शुभ हैं तो शुभ ही रहेंगे; यदि नैसर्गिक पाप हैं तो पापफलद ही होंगे।

त्रिकोणेश दोनों शुभ हैं। इस कारण पंचमेश की अपेक्षा नवमेश अधिक शुभ। शुभ ग्रहों में जब उत्तरोत्तर प्रबल कहा जावे तो शुभता में प्रबलता कहनी चाहिये। पापग्रह में जब प्रबलता कही जावे तो पापत्व में प्रबलता समझनी चाहिये।

शुभता में केन्द्रेश की अपेक्षा त्रिषडायेश प्रबल होते हैं और त्रिषडायेश की अपेक्षा त्रिकोणेश विशेष शुभ होते हैं।

पाठक अवलोकन करेंगे कि वेताल शास्त्री जी की व्याख्या और अन्य टीकाकारों के मत में क्या अन्तर है और शास्त्रीजी की व्याख्या कितनी सूक्ष्मदर्शिका है। इसके पूर्व कि हम सब मतों का समन्वय करें, यह उचित समझते हैं कि इन महत्वपूर्ण पाराशरी सिद्धान्तों का जो विवेचन[1] श्री रामयत्न जी ओझा ने किया है वह भी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करें। हिन्दू विश्व-विद्यालय से जो विश्व-पंचांग प्रतिवर्ष निकलता है उसके यह आद्य सम्पादक थे और हिन्दी विश्वविद्यालयान्तर्गत प्राच्य विद्या विभाग में ज्योतिष के अध्यक्ष थे। यह महान् विद्वान् और उत्तर भारत के ज्योतिष-शिरोमणियों में एक थे।

अब हम इनका मत प्रदर्शन करते हैं। यह कहते हैं कि यदि यह अर्थ करें त्रिकोणेश सभी ग्रह—शुभ और पाप—शुभ फल प्रद होते हैं—यदि वह साथ ही त्रिषडायाधीश भी हों तो पाप-फलद होते हैं—तो इसमें महान् दोष यह उपस्थित होता है कि सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त अन्य ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी होते हैं और किसी भी लग्न में जो त्रिकोणेश है वह तृतीय या

---

१. पंडित श्री रामयत्नजी ओझा का मत उनकी लिखी 'फलित-विकास' नामक पुस्तक के आधार पर है।

एकादश का स्वामी नहीं हो सकता। केवल कन्या लग्न होने से शनि त्रिकोणेश (पंचमाधिप) और षष्ठेश हो सकता है। यदि यही अभिप्राय था तो केवल यह कहना चाहिये था कि यदि त्रिकोणेश षष्ठेश भी हो पापफलप्रद है। एतावन्मात्र कहने से काम चल सकता था। इसलिये सब त्रिकोणेश शुभ होते हैं किन्तु यदि वह त्रिषडायाधीश हों तो शुभ नहीं होता—यह अर्थ करना समीचीन नहीं है। वास्तविक अर्थ यह है कि त्रिकोणेश शुभफलद होते हैं और त्रिषडायाधिप पाप फलद होते हैं अर्थात् त्रिकोण स्थान शुभ और तीसरा, छठा एवं ग्यारहवां स्थान पाप फलद हैं। कन्या लग्न में शनि त्रिकोणेश तथा षष्ठेश होने से पाप फलद ही है।

अब केन्द्रों को लीजिये। यदि यह अर्थ करें कि केन्द्र के स्वामी शुभ ग्रह हों तो शुभ नहीं होते और यदि केन्द्र के स्वामी पापग्रह हों तो अशुभ नहीं होते, तो इस अर्थ में एक महान् दोष उपस्थित होता है। वह यह कि यह कथन शास्त्र-वर्णित शुभाशुभ फलदायकता के विरुद्ध पड़ता है। लग्न, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम की केन्द्र संज्ञा है। लग्न से शरीर का विचार किया जाता है। चतुर्थ से माता, बन्धु, गृह-सुख आदि का विचार करते हैं, सप्तम से पुरुष की कुण्डली में पत्नी का और स्त्री की कुण्डली में पति का तथा दशम से भाग्य, पिता, व्यवसाय आदि का। शास्त्रान्तरों में प्रसिद्ध है कि किसी भाव का स्वामी शुभ ग्रह हो, भाव शुभ-युत तथा शुभ-दृष्ट हो तो शुभता होती है और भाव का स्वामी पापग्रह हो, भाव पापयुत. पापदृष्ट हो तो अशुभता होती है। इसलिये यदि यह अर्थ करें कि केन्द्र का स्वामी शुभ ग्रह हो तो अशुभ करेगा और यदि पापग्रह हो तो शुभ करेगा, तो यह समीचीन नहीं होगा।

इसलिये वास्तविक अर्थ यह है कि सौम्य ग्रह यदि केन्द्रा-

धिप हों तो शुभं लफद होंगे। पाप ग्रह यदि केन्द्राधिप हों तो पाप फलद होंगे। तब यदि--

(१) सौम्य केन्द्राधिपति, तीसरे, छठे या ग्यारहवें के भी मालिक होने के कारण शुभ फल नहीं करते तो।

(२) क्रूर भी केन्द्राधिप, त्रिकोणेश भी होने के कारण शुभ फल देता है।

(३) सौम्य केन्द्राधिप, यदि त्रिकोणेश भी हो तो शुभ फलद है।

(४) क्रूर केन्द्राधिप यदि त्रिषडायेश भी हो तो अशुभ फलद है।

जैसे कर्क या सिंह लग्न वाली कुण्डलियों में, चतुर्थ दशमाधीश (कर्क लग्न में चतुर्थेश, सिंह लग्न में दशमेश) शुक्र क्रम से लाभ तृतीयाधीश (कर्क लग्न में लाभेश, सिंह लग्न में तृतीयेश) होने से पापी होता है। कर्क लग्न में मंगल दशम तथा पचम का स्वामी होने से तथा सिंह लग्न वालों के लिये चतुर्थ तथा नवम का मालिक होने से शुभ होता है। मकर तथा कुम्भ लग्न वाले जातकों के लिये (मकर के लिये) पंचम और दशम का स्वामी होने से तथा (कुम्भ के लिये) चतुर्थ और नवम का स्वामी होने से शुक्र शुभ है।

मकर के लिये चतुर्थ और लाभ का स्वामी होने से तथा कुम्भ के लिये दशम तथा तृतीय का स्वामी होने से मंगल पाप फलद है।

इस सबसे निष्कर्ष यह निकला कि यदि सौम्य ग्रह केन्द्राधिप होने से शुभं फलद नहीं होता तो अशुभ भी नहीं होता। केन्द्राधिप होने से पाप अशुभ फल नहीं करता तो शुभ फल भी नहीं करता। इस प्रकार केन्द्रस्वामियों के नैसर्गिक शुभ होने

से उनका शुभत्व और केन्द्र स्वामियों से नैसर्गिक पाप होने से उनका पापत्व स्फुट है। लग्नेश से चतुर्थ से प्रबल, उससे सप्त-मेश अधिक प्रबल और दशमेश सर्वाधिक बली होता है।

यह जो वचन है कि कुंभ लग्न वाले को मंगल पाप फल करता है और कर्क लग्न वाले को शुभ यह प्रकट करता है कि पाप ग्रह केन्द्रेश बिना त्रिकोणेश हुए शुभ नहीं होता। मूल पाराशरी में कुज शब्द आया है जिसका अर्थ बहुत से लोग कुत्सित जन्मा या पापी करते हैं। अन्य कुज को पाप का उपलक्षण मानते हुए यह तर्क करते हैं कि जो बात मंगल के लिये कही गई है वह शनि को भी लागू होनी चाहिये।

धनेश और व्ययेश

धनेश और व्ययेश स्वभावतः न पापी हैं, न शुभ। अर्थात् सम हैं। किन्तु सूर्य और चन्द्र को छोड़कर अन्य ग्रह दो स्थानों के स्वामी हैं। इसलिये कर्क तथा कन्या लग्न में सूर्य क्रमशः द्वितीयेश तथा व्ययेश और मिथुन तथा सिंह लग्न में चन्द्रमा क्रम से द्वितीयेश तथा व्ययेश होगा। यह दोनों ग्रह अन्य भवनों के स्वामी न होने के कारण सम समझे जायेंगे और जिस स्थान में होंगे उस स्थान के अनुसार इन्हें शुभाशुभत्व प्राप्त होगा। यदि अच्छे स्थान में, अच्छे भवन के स्वामी के साथ बैठेंगे तो शुभ और यदि खराब स्थान में, खराब ग्रह के साथ बैठेंगे तो अशुभ, यही इनकी व्यवस्था है।

सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त अन्य ग्रह दो स्थानों के स्वामी होते हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई ग्रह द्वितीयेश होकर अन्य शुभ स्थान का स्वामी हो तो शुभ और द्वितीयेश होकर अन्य अशुभ स्थान का स्वामी हो तो पाप। जैसे वृश्चिक लग्न में

बृहस्पति द्वितीयेश तथा पंचमेश हो के कारण शुभ और कुम्भ लग्न में द्वितीयेश एकादशेश होने के कारण पाप। इसी प्रकार व्ययेश यदि अन्य शुभ स्थान का स्वामी हो तो शुभ—जैसे तुला लग्न में बुध व्ययेश तथा नवमेश होने से या मेष लग्न में बृहस्पति व्ययेश, नवमेश होने से शुभ होता है। किन्तु व्ययेश दूसरे अशुभ स्थान का मालिक हो तो अशुभ—जैसे मीन लग्न वाले को एकादशेश, व्ययेश, शनि या कर्क लग्न को तृतीयेश, व्ययेश बुध पापी होगा।

उद्योत टीकाकार कहते हैं कि जैसे ग्रह के साथ बैठे हों वैसे वे (द्वितोयेश, व्ययेश) होते हैं। यदि शुभ ग्रह के साथ हों तो शुभ फल। यदि अशुभ ग्रह का साहचर्य हो तो अशुभ फल। जिस भाव में यह बैठे हों उसी भाव के द्वारा अपना फल दिखाते हैं। यदि मित्र आदि के स्थान में बैठा हो तो मित्रादि द्वारा धन प्राप्ति। यदि शत्रु आदि के स्थान में बैठा हो तो शत्रु द्वारा अशुभ फल। यह विचार करते समय ग्रह किस अवस्था में है यह भी विचार कर लेना चाहिये।—ग्रहा की अवस्था को नौ भेदों में बाँटा गया है :—

(१) उच्च राशि में—दीप्त (२) अपनी राशि में स्वस्थ (३) अधि मित्र की राशि में मुदित (४) मित्र की राशि में शान्त (५) सम के गृह में दीन (६) शत्रु के गृह में दु:खी (७) पाप ग्रह से युत विकल (८) खल ग्रह की राशि में खल (९) सूर्य के साथ होने के कारण अस्त होने पर कोपी।

(१) उच्च राशि में होने से धराधिपत्य, उत्साह, शौर्य' धन, वाहन, स्त्री; पुत्र लाभ। राजा से सम्मान, बन्धुओं से आदर विद्या यशोवृद्धि होती है।

(२) यदि ग्रह स्वस्थ या स्वराशि में हो तो नृप से धन, सुख, विद्या और यश की प्राप्ति, स्त्री पुत्र सुख, धर्म वृद्धि,

प्रीति, महत्त्व आदि प्राप्त होते हैं ।

(३) यदि ग्रह मुदित हो तो उसकी दशा में भूमि, मकान, धन, वस्त्र आदि का लाभ हो । पुराण श्रवण आदि धर्म के कार्य हों । नवीन सवारी, आभूषण आदि की प्राप्ति हो ।

(४) यदि ग्रह शान्त हो तो उसकी दशा में सुख, धैर्य, भूमि, कलत्र (पत्नी), सवारी, विद्या-विनोद, धर्मशास्त्र चर्चा, राजा से सम्मान और बहुत धन प्राप्ति हो ।

(५) दीन ग्रह की दशा में, स्थान च्युति (नोकरी या मकान छूटना) मित्रों से वियोग (या मित्र अपनी मित्रता छोड़ दें), बन्धुओं से विरोध, रोग से पीड़ा, कुत्सित हीन वृत्ति से जीवन-यापन आदि अशुभ फल होते हैं ।

(६) दुःखी ग्रह की दशा में—नित्य नाना प्रकार के दुःख उत्पन्न हों । चोर, अग्नि, राजा से यातना (कष्ट) हो, विदेश जाना पड़े (पहिले विदेश यात्रा कष्ट कारक समझी जाती थी—लोकोक्ति प्रसिद्ध है "परदेश कलेश नरेशन को"।) अर्थात् जीवन कष्ट से बीते ।

(७) यदि ग्रह विकल हो तो उसकी दशा में मनोविकार (हृदय पीड़ा, स्नायुओं की निर्बलता, चित्त भ्रम आदि रोग) विकलता (मानसिक तथा आर्थिक), मित्र या बन्धु का मरण, स्त्री, पुत्र, सवारी आदि की पीड़ा—यह सब अशुभ फल हों ।

(८) यदि खल ग्रह की दशा हो तो कलह, वियोग, पिता का वियोग शत्रुओं द्वारा धन और भूमि का नाश, अपने जनों द्वारा अपनी निन्दा आदि अशुभ फल होते हैं ।

(९) कोपान्वित ग्रह की दशा में बहुत प्रकार के पाप फल होते हैं; विद्या, धन, स्त्री, सुत, बन्धुओं का नाश, पुत्र से कलह, नेत्र रोग आदि अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं ।

उद्योत टीका के अनुसार जैसी राशि में ग्रह हो—दीप्त,

स्वस्थ आदि—इसके अनुसार, द्वितीयेश या व्ययेश का फल कहना चाहिये।

सज्जन रञ्जनी के अनुसार जातक शास्त्र के (यथा दीप्त, स्वस्थ आदि राशियों में ग्रह की स्थिति) अन्य नियमों को लागू न कर, केवल किस भावेश के साथ (शुभ भाव पति के साथ या पाप भावेश के साथ) ग्रह बैठा है और द्वितीय या द्वादश के अतिरिक्त, किस अन्य भाव का स्वामी ग्रह है—इसी आधार पर द्वितीयेश, या व्ययेश शुभ हैं या अशुभ इस का निर्णय करना चाहिये।

विनायक शास्त्री की व्याख्या इस प्रकार है। सब भावों के विचार में द्वितीय भाव को (उस, उस भाव से द्वितीय, उस उस भाव का धन हुआ) धन भाव होने के कारण शुभ माना जाता है और व्यय (बारहवें) भाव को (उस, उस भाव से बारहवाँ—उस भाव का व्यय हुआ) व्यय होने के कारण अशुभ माना जाता है, यह सामान्य शास्त्र सिद्ध है। आगे कहा भी है कि लग्न से अष्टम स्थान, भाग्य का व्यय (नवम स्थान से बारहवाँ) होने के कारण शुभ नहीं होता। अब लग्न से द्वितीय और व्यय के विषय में व्यवस्था बताते हैं। लग्न से दूसरे और बारहवें के स्वामी (i) दूसरों के साहचर्य तथा (ii) स्थानान्तरानुगुण से फलदायक होते हैं—अर्थात् शुभ या अशुभ होते हैं। स्वभावतः द्वितीयेश शुभ और व्ययेश अशुभ यह नियम जो ऊपर बताया गया है—यहाँ लागू नहीं करना चाहिये। द्वितीय तथा व्यय का जो स्वभाव फल है उसका यहाँ प्रतिषेध किया गया है।

अब (i) साहचर्य और (ii) स्थानान्तरानुगुण इसकी व्याख्या करते हैं। सहचर—किसी के साथ रहने अर्थात् किसी स्थान में

वठने को कहते हैं। इस दृष्टि से व्ययेश या द्वितीयेश त्रिकोण में वैठें तो शुभ, यदि पापी ग्रह की राशि में तीसरे, छठे, ग्यारहवें वैठें तो पाप। यदि पाप ग्रह की राशि में केन्द्र में वैठें तो पापी नहीं। यदि वह शुभ ग्रह की राशि में तीसरे, छठे, या ग्यारहवें बैठें तो शुभ। यदि वह शुभ ग्रह की राशि में केन्द्र में वैठें तो शुभ नहीं।

सहचर का एक अर्थ राशिस्थितिवश ऊपर बताया गया है। दूसरा अर्थ सहचर का हुआ कि जैसे भावाधिप के साथ बैठा हो वैसा फल अर्थात् द्वितीयेश तथा व्ययेश का जैसे भावाधीश से योग हो वैसा फल। अर्थात् त्रिकोणेश के साथ बैठे तो शुभ पापी त्रि, षट्, आय के स्वामी के साथ बैठे तो पाप। शुभ त्रिषडायाधीश के साथ वैठे तो शुभ। पाप केन्द्रेश के साथ बैठे तो पापत्व नहीं। शुभ केन्द्रेश से योग हो तो शुभत्व नहीं। अष्ट-मेश के साथ बैठे तो पापत्व।

स्थानान्तरानुगुण का अर्थ है कि द्वितीयेश या व्ययेश का जो अन्य स्थान (दूसरी राशि जिस भाव में पड़ी हो) उसके गुण के अनुसार। अर्थात् यदि अन्य स्थान शुभ है तो शुभ, पाप है तो पाप।

जैसे मिथुन लग्न के लिये शुक्र व्ययेश तथा पंचमेश हुआ। व्यय स्थान (वृष) के अतिरिक्त शुक्र की दूसरी राशि तुला पंचम (त्रिकोण) में पड़ती है, इसलिये शुभ हुआ। अथवा मेष लग्न में द्वितीयेश शुक्र, सप्तम (तुला) का भी स्वामी हुआ इस-लिये स्थानान्तर के गुण से पापी हुआ। इसी प्रकार और लग्नों में भी समझना।

जैसे कर्क लग्न में सूर्य द्वितीय का स्वामी होता है किन्तु सूर्य की एक राशि ही होती है, इसलिये इसका स्थानान्तर न होने से सूर्य सम हुआ। शुक्र पाप है—किंचित् शुभ भी। मंगल

योगकारक है। शनि पाप है। बुध व्ययेश तथा तृतीयेश होने से शुभ (श्री विनायक शास्त्री के मत से शुभ ग्रह तृतीय, षष्ठ, या एकादश का मालिक होने से पाप नहीं होता यह बता चुके हैं)। यहाँ मंगल में शुक्र का अन्तर किंचित् शुभफलप्रद है। मंगल में बुध का अन्तर शुभ है। सूर्य का अन्तर भी शुभ फल-प्रद है।

सूर्य का स्थानान्तर नहीं होता इसलिये सूर्य में बुध समफल देने वाला होगा।

मेष लग्न में सूर्य त्रिकोणेश होता है इसलिये शरीर आदि के लिये शुभप्रद है। सप्तमेश शुक्र शरीर आदि के लिये अशुभकर है। चन्द्रमा माता के लिये शुभकर है; शुक्र माता के लिये अशुभकर है।

(ऊपर मेष लग्न की कुण्डली में शुक्र को अशुभ क्यों कहा गया? क्योंकि चतुर्थ स्थान से गिनने पर शुक्र चतुर्थेश, एका-दशेश हुआ।

पराशर मतानुसार भाव फल कथन की यह युक्ति साधु (उत्तम) है।

इस प्रकार द्वितीय और व्यय यह अपनी स्वाभाविक वृत्ति के अनुसार 'सम' स्थान हुए—न शुभ, न पाप। यदि सूर्य (अपनी राशि सिंह में) या चन्द्रमा (अपनी राशि कर्क में) यहाँ हो, या राहु और केतु यहाँ अकेले हों तो– एकाकी तथा सम स्थान में बैठने से न शुभ फल देंगे—न अशुभ फल—अर्थात् सम फल

१. यदि कोई ग्रह दो स्थानों का स्वामी हो—एक शुभ स्थान का दूसरे अशुभ स्थान का और अपने शुभ स्थान में बैठा हो तो क्या फल होता है इसके लिये देखिये फलदीपिका (भावार्थबोधिनी) अध्याय १५ श्लोक २९ की टीका।

दगे। यह सम फल केवल भाग्योपचय, अपचय के विषय में कहा गया है। द्वितीय स्थान में बैठने से जो उनको मारकत्व प्राप्त होगा - उसका निराकरण इस समत्व फलादेश से नहीं होता। शुभता के साथ भी मारकता रहती है (जैसे वृश्चिक लग्न में द्वितीयाधिप पंचमाधिप बृहस्पति को अथवा वृष लग्न में द्वितीयेश पंचमेश बुध को)।

अष्टमेशोऽपि च शुभो यदि स स्यात्तनूपतिः ॥११॥

मेषलग्ने यदा भौमश्चाष्टमेशोऽपि शोभनः।
तुलालग्ने शुभः शुक्रो वृषलग्ने गुरुः खलः ॥१२॥

अष्टमेशो विधुर्वार्को नो पापः शुभ एव सः।
धर्मस्याप्यष्टमस्येह पतिरेकः खलः स्मृतः ॥१३॥

युग्मलग्ने शनिः पापः स एकोष्टमधर्मपः।

अब अष्टमेश के विषय में कहते हैं। यदि अष्टमेश लग्नेश भी हो तो शुभ होता है। जैसे मेष लग्न में अष्टमेश के साथ साथ लग्नेश होने से मंगल, या तुला लग्न में लग्नेश अष्टमेश शुक्र शुभ होता है। परन्तु जहाँ अष्टमाधिपति, लग्नाधिपति न हो—जैसे वृषभ लग्न में बृहस्पति (अष्टमेश, एकादशेश) खल (दुष्ट, या पाप) होता है।

यदि सूर्य या चन्द्रमा अष्टमेश हो तो वह पाप नहीं होता शुभ ही होता है। यदि अष्टमेश, नवमेश एक ग्रह हो तो वह खल (दुष्ट या पाप) होता है। जैसे मिथुन लग्न में, शनि ही अष्टम और धर्म (नवम) का स्वामी है, वह पाप है।

यहाँ अष्टमेश का निर्णय करना है किन स्थितियों में वह

शुभ होता है और किन स्थितियों में पाप। पाराशरी सिद्धान्त के अनुसार भाग्य स्थान या धर्म स्थान का जो व्यय (बारहवाँ —नवम स्थान से गिनने से बारहवाँ स्थान अष्टम हुआ) उसका स्वामी शुभ नहीं होता किन्तु लग्नाधीश होने से यह दोष नहीं होता।

सज्जन रञ्जनी टीका के अनुसार किसी भाव का व्ययाधीश उस भाव का (जिसके बारहवें का स्वामी वह है) नाशकर्ता होता है इस सिद्धान्त को सब भावों पर (उनके बारहवें के मालिक पर) लागू करना चाहिये। उदाहरण के लिये लग्नेश की दशा में धन (द्वितीय) का व्यय, द्वितीयेश की दशा में, भाई, बहन, पराक्रम बल (तृतीय) का व्यय, तृतीयेश की दशा में माता, वाहन, भूसम्पत्ति (चतुर्थ भाव) का व्यय, चतुर्थेश की दशा में, पुत्र विद्या, बुद्धि (पंचम भाव का) व्यय, पंचमेश की दशा में शत्रु, रोग ऋण (षष्ठ भाव) का व्यय, षष्ठेश की दशा में स्त्री, काम (सप्तम भाव) का व्यय, सप्तमेश की दशा में आयु (अष्टम भाव) का व्यय, अष्टमेश, की दशा में भाग्य (नवम भाव) का व्यय, नवमेश कीं दशा में पिता (दशम भाव) का व्यय, दशमेश की दशा में लाभ (एकादश भाव) का व्यय, एकादशेश की दशा में व्यय, भोग, शयन सुख (द्वादश भाव) का व्यय और व्ययेश की दशा में शरीर (प्रथम भाव) का व्यय।

साथ ही प्रत्येक स्थान से उसका अष्टमाधिप उस भाव के लिये अच्छा नहीं है, यह भी नियम लागू करना चाहिये। उदाहरण के लिये पंचम स्थान के लिये पंचम से अष्टम अर्थात् लग्न से बारहवें का स्वामी अच्छा नहीं। लाभ के लिये लाभ से अष्टम अर्थात् लग्न से षष्ठ का स्वामी अच्छा नहीं। किन्तु मिथुन लग्न के लिये यदि पंचम का विचार कर रहे हों तो

पंचम का मालिक शुक्र ही पंचम से अष्टम का मालिक हो जावेगा इसलिये पुत्र भाव के लिये अशुभ नहीं होगा। धनु लग्न के लिये लाभ स्थान का विचार कर रहे हों तो लाभ तथा लाभ से अष्टम (लग्न से षष्ठ स्थान) का स्वामी एक ही ग्रह हो जावेगा इसलिये वह लाभ के लिये अशुभ नहीं होगा।

अष्टमाधिपति का विवेचन करते हुए लोमश मुनि कहते हैं।

अष्टमाधिपतेर्दोषस्तुलामेषे नहि क्वचित्।
अलौ षष्ठपदोषो न वृषभेऽपि न दोषभाक्॥

अर्थात् तुला लग्न और मेष लग्न को अष्टमेश का दोष नहीं होता। वृश्चिक और वृषभ लग्न वालों का षष्ठेश का दोष नहीं होता, क्योंकि इन लग्नों में, लग्नेश ही दुःस्थानाधिपति होता है।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि जब पापतम अष्टमाधिपत्य दोष का भी लग्नेश परिहार करता है तो षष्ठेशत्व या केन्द्रत्व के दोष को भी दूर करेगा, क्योंकि षष्ठेशत्व या केन्द्रत्व का दोष, अष्टमेशत्व के दोष से अल्प है। यदि केन्द्र और त्रिकोण का स्वामी एक ही ग्रह हो तो योगकारक होता है। इस सिद्धान्तानुसार लग्नेश योगकारक होने के कारण (क्योंकि लग्न केन्द्र भी है, त्रिकोण भी है) त्रिकोणेशों से भी शुभतर है। केवल लग्नेश ही अष्टमेशत्व के दोष का निराकरण करता है। त्रिकोणेश यदि अष्टमेश हो तो वह अष्टमेश होने के दोष को दूर नहीं करता।

इस सिद्धान्त से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

(१) कुम्भ लग्न वाली कुण्डलियों में पञ्चमेश, अष्टमेश

बुध दोषयुक् (दोष सहित) होता है।

(२) सिंह लग्न में पञ्चम, अष्टमाधिपति बृहस्पति भी दोषयुक् होता है।

(३) मिथुन लग्न में अष्टम तथा नवम का स्वामी शनि पाप है।

पंडित रामयत्न ओझाजी यह विशेष कहते हैं कि अष्ट-माधिप यदि त्रिकोणेश होकर अष्टम में ही स्थित हो तो शुभ है।

अन्य ग्रह तो अष्टमाधिपति होकर अन्य भाव के स्वामी भी होते हैं किन्तु धनु और मकर इन दो कुण्डलियों में, चन्द्र और सूर्य क्रमशः अष्टम के मालिक होते हैं। इनके विषय में क्या व्यवस्था अन्य टीकाकारों ने की है ?

उद्योतकार का वही मत है जो सुश्लोक शतक का। सज्जन-रञ्जनीकार लिखते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा का अष्टमेश होने का दोष नहीं होता, इस कथन का एतावन्मात्र अभिप्राय है कि और ग्रहों के समान अष्टमेश होने का महान् दोष सूर्य और चन्द्रमा को नहीं है किन्तु अतिमन्दतर दोष (अल्प दोष) तो होता ही है, यह गुरु आज्ञा (सम्प्रदाय सिद्ध) है। श्री विनायक शास्त्री के मतानुसार भी सूर्य तथा चन्द्रमा को अष्टमेश होने से अल्प दोष होता ही है—इस कारण इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये—या यह न समझना चाहिये कि अष्टमेश होने से सूर्य या चन्द्र शुभ हो जाते हैं। जैसे लग्नेश षष्ठेश भी हो तो थोड़ा दोष रहता ही है इसीप्रकार सूर्य को त्रि, षट् या आय का स्वामी होने से अल्प दोष होता है तथा चन्द्रमा को केन्द्राधिपत्य दोष भी अल्प होता है। पंडित रामयत्नजी ओझा कहते हैं कि देखा गया है कि सूर्य या चन्द्रमा अष्टमेश की दशा में बहुतों की भाग्यहानि, मारक क्लेशादि होते हैं, इसलिये यह पक्ष

आदरणीय नहीं है कि सूर्य या चन्द्रमा को अष्टमेश होने का दोष नहीं होता। इससे यही अर्थ करना चाहिये कि सूर्य यदि अष्टम में सिंह का हो या चन्द्रमा यदि कर्क का अष्टम में हो तो अष्टमेश होने का दोष नहीं होता।

केन्द्रकोणाधिपो यो हि स भवेत् त्रिषडायपः ॥१४॥

दोषयुक् स तु विज्ञेयः पाराशरमुनेर्मतम्।
केन्द्राधिपः शुभश्चेत् स्यात्स एव त्रिषडायपः ॥१५॥

पाप एव स विज्ञेयः पापश्चेच्छोभनः स्मृतः।

अर्थात् यदि केन्द्र या त्रिकोण का स्वामी तीसरे, छठे, या ग्यारहवें का स्वामी हो तो पराशर मुनि के मत से उसे दोष-युक् (दोष सहित) समझना चाहिये। यदि नैसर्गिक शुभ ग्रह केन्द्रेश तीसरे, छठे, या ग्यारहवें का मालिक हो तो उसे पाप ही समझना। यदि नैसर्गिक पाप ग्रह केन्द्र का मालिक होते हुए तीसरे, छठे या ग्यारहवें का मालिक हो तो शोभन (सुन्दर, या अच्छा) है। इस सम्बन्ध में अन्य मतों की व्याख्या पहिले की जा चुकी है, इसलिये पिष्टपेषण नहीं किया जा रहा है।

यस्मिन् भावे स्थितः खेट स्तमाश्रित्य स्वकं फलम् ॥१६॥

ददातीह न संदेहः शुभो वाप्यशुभोऽपि वा।
मेषलग्नेश्वरो भौमः सोत्थे भ्रात्रादितः सुखम् ॥१७॥

गुरुर्लग्नेश्वरः सोत्थे दुःखं भ्रात्रादितो दिशेत्।

जिस भाव में ग्रह रहता है—उस भाव का आश्रय लेकर ग्रह अपना फल देता है। इसको हम उदाहरण द्वारा स्पष्ट

करते हैं। जैसे षष्ठेश का स्वभाव शत्रु या रोग उत्पन्न करना है तो षष्ठेश यदि पंचम स्थान में हो तो पुत्र शत्रुता करे, या पेट में विकार करे (क्योंकि पंचम स्थान पुत्र और उदर का है)। यदि षष्ठेश चतुर्थ स्थान में हो तो—चतुर्थ स्थान माता तथा हृदय का होने का कारण--हृदय रोग हो या माता से शत्रुता करे। इस सम्बन्ध में लाभेश, व्ययेश आदि की भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थिति से लाभ तथा व्यय किन मार्गों से होता है, इसके विशेष विवरण के लिये देखिये फलदीपिका पर हमारी भावार्थबोधिनी टीका (अध्याय १६)।

यदि मेष लग्न हो और मंगल तृतीय में हो तो भाइयों से सुख हो। यदि बृहस्पति लग्नेश होकर तृतीय में हो तो भाइयों से दुःख हो।

यत्र भावे स्थितौ राहुकेतू तत्फलदायकौ ॥१८॥

यद् ग्रहस्य तु सम्बन्धी तत्फलाय तमोग्रहः।
यद्युक्तः सप्तमो यस्मात्तत्सम्बन्धी तमोग्रहः ॥१९॥

अर्थात् राहु और केतु जिस भाव में हों, उसके अनुसार फल देते हैं। दूसरी बात यह कि तमोग्रह (इन्हें छायाग्रह भी कहते हैं—क्योंकि यह प्रकाशमान ग्रह नहीं हैं) जिस ग्रह के सम्बन्धी हों उसका फल देते हैं। सम्बन्धी किसे कहते हैं – यह आगे, चार प्रकार सम्बन्ध बतलाने के प्रकरण में वर्णन करेंगे। परन्तु राहु और केतु के सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए, सुश्लोकशतककार ने केवल दो ही प्रकार का सम्बन्ध कहा है :—(i) जिस ग्रह के साथ राहु (या केतु) हो (ii) जिस ग्रह से सप्तम में राहु (या केतु) हो।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि पाराशरी के अन्य

व्याख्याकारों ने राहु और केतु का सहावस्थान (एक साथ अन्य ग्रह के साथ बैठना) सम्बन्ध तो माना है परन्तु राहु, केतु का दृष्टि सम्बन्ध (कोई इनको देखे, या यह किसी अन्य ग्रह को देखें) नहीं माना है। मूल पाराशरी में शब्द आया है कि "यद्यद्भावगतौ"। जिसका उद्योतकार अर्थ करते हैं कि जिस ग्रह का जो-जो भाव—वह ग्रह जो फल करेगा वही उस भाव में बैठा राहु या केतु करेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि मान लीजिये मिथुन में राहु बैठा है तो मिथुन और कन्या दोनों का स्वामी बुध है तो मिथुन के स्वामी बुध के अनुसार राहु फल करेगा। प्रायः ग्रह दो राशियों का स्वामी होता है। मिथुन और कन्या का स्वामी बुध है इसलिये राहु चाहे मिथुन में बैठा हो चाहे कन्या में—इनके स्वामी बुध की भाँति राहु भी द्वि स्थानाधिपतित्व—मिथुन और कन्या दोनों के स्वामी बुध का भी फल करेगा। इस प्रकार किसी ग्रह की एक राशि में बैठने पर भी—दोनों राशियों का (और दोनों राशियाँ लग्न से जिस भाव में पड़ी हों—उन भावों का) आधिपत्य का फल राहु को दिया गया।

परन्तु अन्य टीकाकार यह अर्थ नहीं करते। उनके हिसाब से 'यत् यत् भाव'—जिस-जिस भाव में राहु या केतु हो उस-उस भाव का फल राहु या केतु देगा। उदाहरण के लिये तुला लग्न हो- नवम में मिथुन में राहु पड़ा हो तो केवल नवम भाव का फल राहु देगा। मिथुन के स्वामी बुध की अन्य राशि कन्या से—या कन्या के आधिपत्य से राहु को कोई सरोकार नहीं। यह सज्जनरञ्जिनी का अभिप्राय है।

श्री विनायक शास्त्री ने भी यही अर्थ किया है जिस-जिस भाव में राहु केतु हों उस-उस भाव का, तथा जिस भावेश के साथ हों उसका फल, प्रबल रूप से राहु और केतु देते हैं। जिस-

जिस भावेश के साथ हों यह अर्थ प्रायः सभी मानते हैं। इसमें मतभेद नहीं है। श्री विनायक शास्त्री यह भी कहते हैं कि यह पापग्रह है, इसलिये तीसरे, छठे, या ग्यारहवं बैठने से पाप होंगे। परन्तु ज्योतिषियों के अनुसार पापग्रह कहीं तो बैठे होंगे—उनका तीसरे, छठे, ग्यारहवं बैठना उत्तम है।

शास्त्री जी कहते हैं कि यदि राहु या केतु त्रिकोण में बैठे ता शुभ; व्यय या द्वितीय में बैठे तो सम, अष्टम में बैठे तो अति पाप, लग्न में बैठे तो शुभ।

जिस स्थान में राहु या केतु बैठे उसके अनुरूप तो फल करता ही है—जिस भावेश के साथ हों उसके अनुसार भी राहु, केतु शुभ या अशुभ फल करते हैं। कारक के साथ बैठें त, कारक, मारक के साथ बैठें तो मारक। जिस भावेश के साथ यह बैठें—उस ग्रह के गुण, प्रकृति, स्वभाव, भावेशजन्य फल को यह ग्रहण कर लेते हैं।

तृतीयमष्टमं चायुर्द्वितीयं सप्तमं तनोः ।
मारकं तद्धि विज्ञेयं तत्पूर्वं प्रबलं स्मृतम् ॥२०॥

तृतीय और अष्टम आयु के स्थान हैं। मुख्यतः अष्टम ही आयु स्थान है किन्तु ज्यौतिष में 'भावात् भावः' अर्थात् भाव से भाव देखने की पद्धति है। यथा पंचम से सन्तान का विचार किया जाता है तो पंचम से पंचम (लग्न से नवम) भी देखिये शुभ ग्रह युत, दृष्ट है या नहीं। लाभ का विचार करना है तो लाभात् लाभ: एकादश से एकादश (अर्थात् लग्न से नवम) का भा विचार कीजिये। भाग्योदय, राज्य, उन्नति आदि के लिय उत्तर कालामृत खण्ड ४, श्लोक ४ के अनुसार न केवल लग्न से नवमेश दशमेश सम्बन्ध अपितु नवम स्थान से गिनने पर नवमेश दशमेश सम्बन्ध और दशम स्थान से गिनने पर

नवमेश दशमेश सम्बन्ध भी देखना चाहिए । यहाँ उत्तर कालामृत के उद्धरण देने का तात्पर्य इतना ही है कि "भावात् भावः"—भाव से भाव गिनने की आर्ष पद्धति है । अस्तु अब प्रकृत विषय पर आइये ।

अष्टम आयु स्थान है । अष्टम से अष्टम (अर्थात् लग्न से तृतीय) भी आयु स्थान है । आयु का व्यय ही मृत्यु है, इस कारण अष्टम का व्यय स्थान सप्तम और द्वितीय का व्यय स्थान द्वितीय मारक स्थान कहे जाते हैं । द्वितीय और सप्तम इन दोनों मारक स्थानों में द्वितीय विशेष प्रबल मारक होता है । मारकेश या मारक स्थान में बैठे हुए ग्रह की दशा में मृत्यु सम्भव है । विनायक शास्त्री ने सप्तम को द्वितीय की अपेक्षा अधिक प्रबल मारक स्थान माना है किन्तु अधिकांश टीकाकार द्वितीय स्थान को ही विशेष प्रबल मानते हैं ।

केन्द्रनाथो गुरुर्दुष्टस्तथा दैत्यगुरुः स्मृतः ।
ततो न्यूनः सोमसुतः सोमश्चाल्पतरस्तथा ॥२१॥

अर्थात् केन्द्रनाथ गुरु दुष्ट है तथा शुक्र दुष्ट है । उससे कम केन्द्रनाथ बुध दुष्ट है और उससे कम केन्द्रनाथ चन्द्र दुष्ट है । सामान्यतः टीकाकार यही अर्थ करते हैं कि किसी भी केन्द्र के (लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम का) स्वामी होने से यह चारों शुभ ग्रह दुष्ट हो जाते हैं । परन्तु इस अर्थ में स्वाभाविक शंका यह होती है कि यदि सभी शुभ ग्रह चारों केन्द्रों में से किसी के स्वामी हो जाने से दुष्ट हो जाते हैं, तो लग्नेश की जो इतनी प्रशंसा की गई है कि वह परम पाप स्थान अष्टम का स्वामी होने पर भी (यदि वह लग्नेश भी हो) शुभ ही रहता है तो यह सब हेतुवाद व्यर्थ हो जावेगा । इसीलिये हमें श्री रामयत्न जी

ओझा का मत विशेष संगत प्रतीत होता है कि बृहस्पति शुक्र, बुध या चन्द्रमा सप्तम के मालिक हों तो बृहस्पति सबसे अधिक मारक, शुक्र उससे कम मारक, बुध उससे कम और सप्तमेश यदि चन्द्रमा हो तो सबसे कम मारक होता है।

मुख्यश्चान्योन्यभे खेटौ चान्योन्यं वापि पश्यतः।
सम्बन्धो मध्यमश्चान्यो द्वयोरेकतरो भवेत् ॥२२॥

भवेदेकतरस्थाने तं चापि यदि पश्यति।
एकराशौ यदा द्वौ चेतदा तेभ्योऽधमः स्मृतः ॥२३॥

इस श्लोक में आगे राजयोग, मारक, दशा, अन्तर्दशा आदि के प्रसंग में बार-बार सम्बन्ध शब्द आवेगा। इसलिये यहां यह बताते हैं कि सम्बन्ध चार प्रकार का होता है। सबसे मुख्य (१) स्थान विनिमय अर्थात् 'क' ग्रह 'ख' ग्रह को राशि में और 'ख' ग्रह 'क' ग्रह को राशि में। (२) एक-दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखें। यह साधारणतः तभी संभव होगा जब दोनों ग्रह एक दूसरे से सप्तम में हों। किन्तु मंगल की चतुर्थ दृष्टि भी पूर्ण होती है और शनि की दशम भी पूर्ण दृष्टि इसलिए शनि यदि मंगल से चतुर्थ राशि में हो तो मंगल शनि को पूर्ण दृष्टि से देखेगा और शनि मंगल को। यह दृष्टि—जब दोनों एक दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखें—द्वितीय श्रेणी का सम्बन्ध है। (३) तीसरे प्रकार सम्बन्ध यह है कि 'क' ग्रह 'ख' ग्रह को राशि में बैठकर 'ख' ग्रह को देखे। यथा सिंह में मंगल बैठकर मीन में बैठे हुए सूर्य को पूर्ण दृष्टि से देखें। सिंह से मीन अष्टम स्थान हुआ। परन्तु मंगल को अष्टम दृष्टि पूर्ण होती है। (४) चौथे प्रकार का सम्बन्ध जो सबसे कमजोर है वह यह कि दोनों ग्रह एक ही राशि में बैठें। सुश्लोकशतक के

अनुसार सबसे प्रवल प्रथम (१) प्रकार और फिर वाद के उत्तरोत्तर न्यून बली होते हैं

इस प्रकार यह संज्ञाध्याय समाप्त हुआ। अब आगे राजयोगाध्याय के १४ श्लोकों में विभिन्न राजयोग बताये जावेंगे

———

राजयोगाध्याय

आयुस्त्रिषष्ठेशायेशानामसम्बन्धी च यो ग्रहः ।
पुनस्तादृशकेन्द्रेशसम्बन्धी स तु राज्यदः ।।१।।

जो ग्रह (त्रिकोणेश) तीसरे, छठे, ग्यारहवें या अष्टम के स्वामी से असम्बन्धित हो और केन्द्रेश का सम्बन्धी हो, वह राज्य (अधिकार, उच्च पदवी) प्रदान करने वाला होता है ।

चंद्रज्ञगुरुकाव्यानां मध्ये यः केन्द्रनायकः ।
स दुष्टोऽपि च केन्द्रेशसम्बन्धी राज्यदायकः ।।२।।

यद्यपि चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति और शुक्र केन्द्रेश होने से दुष्ट कहे गये हैं तथापि—ऐसे केन्द्रेश से सम्बद्ध त्रिकोणेश भी राज्य देने वाला होता है। यह याद रखना चाहिये कि ३, ६, ११ अथवा ८ के स्वामी से सम्बन्ध नहीं होना चाहिये ।

आयुस्त्रिषष्ठलाभेशः स एव यदि केन्द्रपः ।
दोषयुक्तोऽप्ययं राज्यं दत्ते सम्बन्धितस्ततः ।।३।।

यदि तीसरे, छठे या ग्यारहवें का मालिक ही केन्द्र का स्वामी भी हो तो ऐसा केन्द्रेश दोषयुक्त हो जाता है । फिर भी—दोषयुक्त होने पर भी—सम्बन्ध होने के गुण (प्रभाव) से राज्य (अधिकार, पदवी, उन्नति) प्रदान करता है । अर्थात् यदि उसका त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो ।

एवं त्रिकोणनाथोऽपि दोषयुक्तोऽपि राज्यदः ।
त्रिकोणेशश्चकेन्द्रेशौ द्वावपीह तु राज्यदौ ।।४।।

इसी प्रकार त्रिकोण का स्वामी दोषयुक्त होने पर भी—यदि केन्द्रेश से सम्बन्ध करे तो राज्य देने वाला होता है। इस प्रकार केन्द्रेश और त्रिकोणेश दोनों (परस्पर सम्बन्ध करने के गुण से—प्रभाव से) राज्यदायक हैं।

ये चारों श्लोक पाराशरी ज्यौतिष के सिद्धान्तों पर आधारित हैं—इसलिये इनका वाक्यार्थ देने के बाद इनके फलितार्थ का विवेचन किया जाता है।

उद्योतकार कहते हैं कि केन्द्रपति और त्रिकोणपति परस्पर सम्बन्ध से यदि तृतीय, षष्ठ, एकादश या अष्टम के स्वामी से प्रसक्त न हों तो विशेष शुभ फल देते हैं। यदि इनसे सम्बन्ध हो तो योग भंग हो जाता है।

यदि केन्द्र या त्रिकोण का स्वामी स्वयं दोषयुक्त हो—(अर्थात् केन्द्रस्वामी, तृतीय आदि पाप-स्थान का भी स्वामी हो, या त्रिकोणेश तृतीय आदि पापस्थान का भी स्वामी हो,) तो भी सम्बन्ध-मात्र के प्रभाव से बली होकर यह (परस्पर सम्बन्ध करने वाले केन्द्रेश और त्रिकोणेश) योगकारक अर्थात् शुभ फल देने वाले होते हैं।

उद्योतकार ने स्पष्ट कह दिया है कि केन्द्रेश, त्रिकोणेश के सम्बन्ध में यदि तीसरे, छठे, ग्यारहवें या एकादश के स्वामी का अर्थात् केन्द्रेश, त्रिकोणेश के सम्बन्ध में—किसी पाप स्थान के स्वामी तीसरे ग्रह का सम्बन्ध हो जावे तो योग खंडित हो जाता है परन्तु सज्जनरञ्जनीकार के मत से योग सर्वथा खंडित नहीं हो जाता किन्तु शुभ योग न्यून हो जाता है। यही इन टीकाकारों में मतभेद है।

श्री विनायकशास्त्री कहते हैं कि त्रिकोणेश, केन्द्रेश का सम्बन्ध ही योगकारकत्व का मूल है। योगकारकत्व—अर्थात् शुभ फल। यदि अन्य (तीसरे आदि) घर का स्वामी भी केन्द्रेश-त्रिकोणेश सम्बन्ध में योग करता है तो दोष हो जाता है, इसलिये शुभ फल में कमी हो जाती है। पूर्ण शुभ फल केवल तभी होता है जब केन्द्रेश-त्रिकोणेश योग किसी अन्य योग से संस्पृष्ट न हो।

जहाँ यह कहा गया है कि केन्द्रेश और त्रिकोणेश स्वयं दोष-युक्त हों तो भी परस्पर सम्बन्ध-मात्र से योगकारक होते हैं—वहाँ श्री विनायकशास्त्री यह अर्थ लेते हैं कि दोष से तात्पर्य यह है कि यदि केन्द्र या त्रिकोणपति में से एक या दोनों की नीच राशि में स्थिति, अस्तंगत (सूर्य के समीप होने के कारण अस्त हो अर्थात् दिखाई न दे) आदि दोष से युक्त हों तो भी सम्बन्ध-मात्र से बली होकर शुभ फल देते हैं।

श्री रामयत्नजी ओझा के अनुसार[1] योगाध्याय में जो योग दिये गये हैं, उनका अर्थ है भाग्ययोग। केन्द्रेश-त्रिकोणेश योग यदि अन्य (केन्द्र, त्रिकोण के स्वामियों के अतिरिक्त) ग्रहों से प्रसक्त हों तो कहीं फल देते हैं, कहीं नहीं देते। कहाँ फल देते हैं और कहाँ नहीं, यह आगे वर्णन करेंगे।

त्रिकोणेश और केन्द्रेश यदि स्वयं दुःस्थान के स्वामी हों या इनके योग में किसी दुःस्थान के स्वामी का भी सम्बन्ध हो, तो किस हद तक शुभ फल में कमी हो जावेगी या अशुभ फल होगा, यह नीचे स्पष्ट करते हैं।

---

१. देखिये 'फलितविकास' पृष्ठ १०३।

(क) लग्नेश का + १ गुण
चतुर्थेश ,, + २ ,,
सप्तमेश ,, + ३ ,,
दशमेश ,, + ४ ,,
(ख) पंचमेश ,, + २ ,,
नवमेश ,, + ४ ,,
(ग) तृतीयेश ,, — १ ,,
षष्ठेश ,, — २ ,,
एकादशेश,, — ३ ,,
(घ) अष्टमेश ,, — ६ ,,
(ङ) द्वितीयेश ,, — ० ,,
द्वादशेश ,, ,, ,,

अब मान लीजिये—

(i) कर्क लग्न की कुण्डली है। बुध, एवं मंगल, बृहस्पति का योग है—

बुध तृतीयेश = —१
बुध द्वादशेश = —०
मंगल पंचमेश = +२
मंगल दशमेश = +४
बृहस्पति षष्ठेश = —२
बृहस्पति नवमेश = +४
——————
शेष +७ शुभफल ७+ होने से।

(ii) कर्क लग्न की कुण्डली है। शनि, शुक्र, मंगल, बृहस्पति का योग है—

शनि सप्तमेश = +३
शनि अष्टमेश = —६

शुक्र चतुर्थेश = +२
शुक्र एकादशेश = −३
मंगल पंचमेश = +२
मंगल दशमेश = +४
बृहस्पति षष्ठेश = −२
बृहस्पति नवमेश = +४

———

शेष +४ शुभ फल=४

(iii) मान लीजिये, सिंहलग्न की कुण्डली है। बृहस्पति-शनि का योग है—

बृहस्पति पंचमेश = +२
बृहस्पति अष्टमेश = −६
शनि षष्ठेश = −२
शनि सप्तमेश = +३

———

शेष −३ फल=अशुभ−३

(iv) मान लीजिये, सिंहलग्न है। सूर्य, मंगल एवं शुक्र का योग है—

सूर्य लग्नेश = +१
मंगल चतुर्थेश = +२
मंगल नवमेश = +४
शुक्र तृतीयेश = −१
शुक्र दशमेश = +४

———

शेष +१० =१० शुभफल

(v) मान लीजिये, मिथुन लग्न है। बृहस्पति और शनि का योग है—

बृहस्पति सप्तमेश = +३
बृहस्पति दशमेश = +४
शनि अष्टमेश = —६
शनि नवमेश = +४

———————

शेष +५ =५ शुभ फल

(vi) मान लीजिये, मेषलग्न है। बृहस्पति और शनि का योग है—

बृहस्पति नवमेश = +४
बृहस्पति द्वादशेश = ०
शनि दशमेश = +४
शनि एकादशेश = —३

———————

शेष +५ शुभफल=५

(vi) मान लीजिये, मिथुनलग्न है। मंगल, शुक्र, शनि का सम्बन्ध है —

मंगल षष्ठेश = —२
मंगल एकादशेश = —३
शुक्र पंचमाधीश = +२
शुक्र व्ययेश = ०
शनि अष्टमेश = —६
शनि नवमेश = +४

———————

शेष —५ अशुभ फल=५

उपर्युक्त प्रकार से गुण-दोष का विचार कर इस परिणाम पर पहुँचना चाहिये कि गुण कितना है, दोष कितना है और गुण, दोषों को दबा देते हैं या दोष गुणों को । हमारे

विचार से जहाँ अष्टमेश लग्नेश हो या त्रिकोण का स्वामी अष्टमेश या षष्ठेश होकर त्रिकोण में बैठा हो, वहाँ षष्ठेश या अष्टमेश-जन्य दोष की गणना नहीं करनी चाहिये। उदाहरण के लिये, यदि मेषलग्न हो और मंगल (लग्नेश, अष्टमेश) का सूर्य या बृहस्पति से योग हो तो मंगल को लग्नेश होने के कारण अष्टमेश का दोष नहीं होगा और सूर्य-मंगल योग अथवा मंगल-बृहस्पति योग शुभ ही होगा।

मंत्रेश्वर ने कहा है कि यदि ग्रह ऐसी दो राशियों का स्वामी हो, जिनमें एक राशि जन्म-कुण्डली में शुभ स्थान में पड़ी हो, दूसरी राशि अशुभ स्थान में और ग्रह उस राशि में बैठा हो जो शुभ स्थान में पड़ी हो, तो उसे अशुभस्थान में पड़ी राशि के आधिपत्य का दोष नहीं होता। विशेष विवरण के लिये देखिये फलदीपिका की 'भावार्थबोधिनी'[1] नामक हिन्दी-व्याख्या, अध्याय १५।

भाग्यराजेश्वरौ भाग्ये राज्ये वान्योन्य राशिगौ।
यातौ स्वस्वगृहे वा तौ योगोऽयं प्रबलः स्मृतः ॥५॥

पुत्रपितृपती चेत्थं प्रबलौ राज्यकारकौ।
अथ क्वापि स्थितौ चापि चेत्संबन्धचतुष्टये ॥ ६॥

कुरुतो न्यतमं योगं राज्यं तौ यच्छतः प्रभू।
दशा चेद्राज्यनाथस्य भवेदन्तर्दशा सतः ॥ ७ ॥

---

१. इस पुस्तक में ज्योतिष के अनुपम सिद्धान्तों की बहुत ही सरल हिन्दी में व्याख्या है। पृष्ठ-संख्या ७७१। प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक, बँगलो रोड दिल्ली-७ से प्राप्य है।

प्रायशो लभते राज्यं ध्रुवं सम्बन्धिनोऽस्य तु ।
राज्यदात्प्रबलो यस्तु खलो मलिनलक्षणः ॥८॥

सम्बन्धी योगनाथस्य चेत्तस्यैव दशा भवेत् ।
अन्तर्दशा यदा योगनाथस्य तु तदा नृपः ॥९॥

केन्द्रेशान्यतमः कश्चित् कोणेशान्यतरेण चेत् ।
सम्बन्धमाचरन्खेटो राज्यं यच्छति निश्चितम् ॥१०॥

कोणनाथस्य सम्बन्धी केन्द्रगश्चेदुपग्रहः ।
अथवा केन्द्रनाथस्य सम्बन्धी यदि कोणगः ॥११॥

सो पि राज्यप्रदो ज्ञेयः पाराशरमुनीरितः ।
लाभेशस्यतु सम्बन्धी राज्यभंगाय कर्मपः ॥१२॥

धर्मायुषोऽस्तु कर्मायोरेको राज्य हरो ग्रहः ।
युग्मेलग्नेऽथ वा मेषे राज्यभंगाय भानुजः ॥१३॥

जन्मलग्नेश्वरः खेटो दशमे दशमेश्वरः ।
लग्ने विख्यातकीर्तिः स्याद्विजयी च धराधिपः ॥१४

पहले इन श्लोकों का वाक्यार्थ दिया जाता है ; फिर अन्य विद्वानों ने इस विषय में जो आलोचना की है और शास्त्रार्थ उठाया है उससे परिचय कराया जावेगा ।

भाग्य और राज्य अर्थात् नवम-दशमके मालिक यदि नवम में हों या दशम में हों या भाग्य का मालिक दशम में और राज्य का मालिक नवम में हो या नवमेश नवम में और दशमेश दशम में हो, तो ये चारों प्रवल राजयोग हैं ॥५॥

पंचम और दशम के स्वामी प्रबल राज्ञयोगकारक हैं । ये दोनों कहीं भी हों, यदि इन दोनों में, चारों प्रकार के सम्बन्धों में

से किसी प्रकार का सम्बन्ध हो तो राजयोग होता है ।। ६-७ ।।

यदि दशमेश की महादशा हो और उसमें शुभ ग्रह की (नैसर्गिक शुभ ग्रह नहीं—जो पाराशरी मत से शुभ ग्रह है) अन्तर्दशा हो तो प्राय: राज्यं (उच्च पदवी, प्रतिष्ठा, राजयोग) प्राप्त होता है। यदि दशमेश और अन्तर्दशानाथ शुभ ग्रह में सम्बन्ध हो तो निश्चय ही उपर्युक्त फल प्राप्त होता है ।।७-८।।

राजयोगकारक ग्रह से प्रबल जो मलिन लक्षण (दुष्ट या पाप) ग्रह है उसका यदि योगकारक से सम्बन्ध हो और ऐसे दुष्ट ग्रह की महादशा में योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा भी हो तो मनुष्य नृप अर्थात् राजा होता है (देश, काल, पात्र के हिसाब से—उसकी परिस्थिति के अनुसार, जातक की उन्नति होती है) ।८-९।

किसी भी केन्द्र का स्वामी, किसी भी त्रिकोण के स्वामी से सम्बन्ध करे तो वह राजयोगकारक है। ।।१० ।।

यदि राहु या केतु केन्द्र में हों और त्रिकोणपति से सम्बन्ध करें; या यदि राहु या केतु त्रिकोण में हों और केन्द्रेश से सम्बन्ध करें तो पराशर मुनि के मत से राज्यप्रद (राजयोग का कारक) होता है। ।।११-१२ ।।

यदि ग्यारहवें घर का मालिक दशमेश से सम्बन्ध करे तो राज्य भंग करने वाला होता है। ।१२ ।।

यदि आठवें और नवें ग्रह का मालिक एक ही ग्रह हो तो राज्य हरण करने वाला होना है। मिथुन या मेष लग्न में शनि राजयोग भंग करने वाला है। ।।१३।।

यदि लग्नेश दशम में हो और दशमेश लग्न में हो, तो जातक विख्यात क़ीर्ति वाला, विजयी और पृथ्वी का मालिक होता है। ।।१४।।

(१) अब नीचे इन योगों की भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा की

गई आलोचना और मत दिये जाते हैं। उद्योतकार के अनुसार उपर्युक्त योगों के अतिरिक्त, नवमेश और दशमेश ,इन दोनों में यदि एक भी अपने स्थान—नवम या दशम—में हो तो राज-योगकारक होता है। सज्जनरञ्जनीकार का भी मत है कि नवमेश नवम में हो तथा दशमेश दशम में हो या परस्पर स्थान-विनिमयी हों तो राजयोग होता है।

श्री विनायकशास्त्री कहते हैं कि जो यहाँ नवम आया है वह शब्द त्रिकोण का उपलक्षण है और दशम शब्द केन्द्र का उप-लक्षण है। इस प्रकार यह योग नवमेश-दशमेश या नवम-दशम स्थान तक ही सीमित नहीं समझना चाहिये। सभी केन्द्र, त्रिकोणों पर इसको लागू करना उचित है। यदि केन्द्रेश त्रिकोण में हो और त्रिकोणेश केन्द्र में हो तो यह योग घटित होगा। जैसे कर्कलग्न में केन्द्रेश (दशमेश) मंगल नवम में हो, त्रिकोणेश बृहस्पति सप्तम में केन्द्र में हो तो मंगल और बृहस्पति योग-कारक कहे जावेंगे। केन्द्रेश-त्रिकोणेश के सम्बन्ध से तो प्रबल योग होता ही है. यह पहले बता चुके हैं—अब यह योग जो केन्द्रेश-त्रिकोणेश के सम्बन्ध पर आधारित नहीं, अपितु केन्द्र त्रिकोण के स्थान पर आधारित है, पहले की अपेक्षा न्यून होते हुए भी राजयोग है, क्योंकि केन्द्रेश का त्रिकोण से साह-चर्य हो जाता है और त्रिकोणेश का केन्द्र से। यदि केन्द्रेश-त्रिकोणेश दोनों एक (त्रिकोण) में बैठें हों तो भी दोनों योग-कारक होते हैं—जैसे कर्क लग्न हो, मंगल केंद्रेश (दशमेश) नवम (त्रिकोण) में और नवमेश बृहस्पति पंचम में या दोनों केन्द्र में बैठें। यथा कर्कलग्न हो, दशमेश मंगल चतुर्थ में और नवमेश बृहस्पति सप्तम में, हो तो भी मंगल और बृहस्पति योगकारक होते हैं; किन्तु यह द्वितीय प्रकार के योग, जिनमें दोनों केन्द्र में हों या दोनों त्रिकोण में, पूर्वोक्त योग (जिसमें

केन्द्रेश त्रिकोण में—त्रिकोणेश केन्द्र में हो) से स्वल्प (छोटी) कक्षा का है। जैसा ऊपर लिख चुके हैं, श्री विनायकशास्त्री के मत से, कर्कलग्न में मंगल नवम में हो (केन्द्रेश त्रिकोण में) तो योगकारक है। अथवा इसी लग्न की जन्म-कुण्डली में त्रिकोणेश बृहस्पति सप्तम में हो तो योगकारक है, क्योंकि त्रिकोणेश केन्द्र में हुआ।

पंडित रामयत्नजी ओझा के मतानुसार, नवमेश दशम में और दशमेश नवम में बैठें तो एक योग हुआ। यदि दोनों एकत्र किसी भी राशि में एक साथ बैठें तो दूसरा योग हुआ। परन्तु श्री विनायक शास्त्री ने जो मत दिया है कि धर्म से कोई भी त्रिकोण ले सकते हैं और कर्म से कोई भो केन्द्र, यह मत उन्हें स्वीकार नहीं है। इनके मतानुसार, नवमेश-दशमेश में चारों प्रकार के सम्बन्ध में कोई-सा संम्बन्ध हो, तो ये दोनों योग कारक होते हैं।

(२) उद्योतकार के मत से दशमेश का यदि पंचमेश या नवमेश से सम्बन्ध हो तो सुयोग (राजयोग) होता है। सज्जन-रञ्जनीकार टीका में एक प्राचीन श्लोक उद्धृत करते हैं—

धर्मकर्मेशसम्बन्धौ लग्नेशेनाथता भवेत्।
केवलं वा तयोर्वापि राजयोगो यमीरितः॥

अर्थात् धर्मेश (नवमेश), कर्मेश (दशमेश) के सम्बन्ध में लग्नेश का भी योग हो, या केवल धर्मेश-कर्मेश का ही सम्बन्ध हो, तो यह राजयोग है।

श्री विनायक शास्त्री के मत से यदि दशमेश का पंचमेश या नवमेश से सम्वन्ध हो या नवमाधीश का किसी केन्द्रेश से सम्वन्ध हो तो यह सुयोग अर्थात् अच्छा योग या राजयोग है। यदि योग करने वाले केन्द्रेश-त्रिकोणेश आदि उच्च, मूल त्रिकोण

स्वगृही आदि गुण से युक्त हों, तो बल के अनुसार उनके प्रभाव में भी वृद्धि होगी।

हम इसके लिये एक दृष्टान्त उपस्थित करते हैं। कर्क लग्न वाले जातक के लिये दशमेश मंगल होता है, नवमेश बृहस्पति। अब यदि कर्क में मंगल, मकर में बृहस्पति हो या कर्क में बृहस्पति, मकर में मंगल हो, दोनों ही स्थितियों में नवमेश-दशमेश-सम्बन्ध होगा; किन्तु एक स्थिति में दोनों अपनी-अपनी नीच राशि में होंगे। दूसरी स्थिति में दोनों अपनी-अपनी उच्च राशि में होंगे; ऐसी स्थिति में दोनों राजयोगों के प्रभाव में कितना भेद होगा।

श्री रामयत्न जी ओझा के मतानुसार[1] चारों प्रकार के सम्बन्ध में से दशमेश का पंचमेश या नवमेश से स्थान-सम्बन्ध हो तो विशेष फलद है।

(३) यदि कोई केन्द्रेश एक त्रिकोणेश से सम्बन्ध करे तो योगकारक; यदि दोनों त्रिकोणेशों से सम्बन्ध करे तो क्या कहना है— अर्थात् और भी शुभ। यदि दो केन्द्रेश दोनों त्रिकोणेशों से सम्बन्ध करें तो और भी उत्तम। यदि तीन केन्द्रेश दोनों त्रिकोणाधिपों से सम्बन्ध करें तो उससे भी उत्तम; और यदि चारों केन्द्रेश दोनों त्रिकोणेशों से सम्बन्ध करें तो सर्वोत्तम।

सज्जनरञ्जनीकार कहते हैं कि यदि केन्द्रेश स्वयं त्रिकोणेश भी हो तो वह योगकारक होता है। जैसे वृषलग्न में शनि नवमेश (त्रिकोणेश) दशमेश होने से योगकारक होता है। कर्क लग्न की कुण्डली में मंगल त्रिकोणेश केन्द्रेश होने से, सिंह लग्न में भी मंगल त्रिकोणेश केन्द्रेश होने से। इसी प्रकार मकर और कुम्भ लग्न में केन्द्रेश के साथ-साथ त्रिकोणेश होने से शुक्र योगकारक है। इसी प्रकार तुला के लिये शनि। यह योगकारक स्वयं एक त्रिकोण

---

१. देखिए, 'फलित विकास'।

के स्वामी तो होते ही हैं, ऐसी स्थिति में यदि दूसरे त्रिकोणेश से भी सम्बन्ध करें तो क्या ही कहना है—अर्थात् अतिउत्तम है। अतः--

(क) वृष या तुला लग्न हो शनि बुध से भी सम्बन्ध करे।

(ख) कर्क या सिंह लग्न हो, और मंगल-बृहस्पति सम्बन्ध हो।

(ग) मकर या कुम्भ लग्न हो और शुक्र बुध से भी सम्बन्ध करे तो उत्कृष्ट योग होगा।

इसी प्रकार दो केन्द्रपति एक त्रिकोणेश से सम्बन्ध करें तो भी एक केन्द्रपति के एक त्रिकोणपति के सम्बन्ध की अपेक्षा अधिक प्रबल होगा। यथा—

(क) मिथुन या कन्या लग्न हो और बुध या बृहस्पति शुक्र से सम्बन्ध करे।

(ख) धनु या मीन लग्न हो और बुध या बृहस्पति मंगल से सम्बन्ध करें।

श्री विनायकशास्त्री ने इस प्रसंग में तीन बातें कही हैं—(१) केन्द्राधीश यदि त्रिकोणेश भी हो अर्थात् एक ही ग्रह केन्द्रेश-त्रिकोणेश हो तो वह राजयोगकारक होता है; (२) वह शुभ है या पाप यह प्रश्न उठता ही नहीं; क्योंकि वह योगकारक है; (३) लग्नेश केन्द्रेश भी है और त्रिकोणेश भी, अतः एक ही स्थान के केन्द्र और त्रिकोणेश होने से वह योगकारक है।

श्री रामयत्न जी ओझा के मतानुसार भी वृष, या तुला लग्न में शनि, कर्क तथा सिंह लग्न जातकों को मंगल, तथा मकर एवं कुम्भ लग्न होने शुक्र, यदि अन्य त्रिकोणपति से सम्बन्ध करे तो विशेष राजयोग है।

यदि मेषलग्न हो और चतुर्थेश चन्द्रमा का पंचमाधिपति सूर्य के साथ-साथ नवमेश बृहस्पति से भी सम्बन्ध हो तो

विशेष राजयोग है।

यहाँ यह शंका उठना स्वाभाविक है कि मिथुन लग्न में बुध शुक्र के साथ-साथ अन्य त्रिकोणपति से सम्बन्ध करे तो शनि अष्टमेश भी हो जावेगा। कर्क लग्न में बृहस्पति त्रिकोण-स्वामी होने के साथ-साथ षष्ठेश भी है और सिंह लग्न में पंचमेश अष्टमेश भी होगा। कन्यालग्न में पंचमेश शनि षष्ठेश भी होगा। मकर लग्न में नवमेश बुध षष्ठेश भी होगा। कुम्भ लग्न में बुध पंचमेश अष्टमेश भी होगा। ऐसी स्थिति में भी—त्रिकोणपति को षष्ठेश या अष्टमेश का दोष होने पर भी क्या अन्य त्रिकोण-पति से सम्बन्ध वांछनीय होगा ?

इसके समाधान में कहते हैं कि आचार्य ने अन्य त्रिकोण-पति को इतना अधिक शुभ माना है कि षष्ठेश या अष्टमेश का दोष होने पर भी त्रिकोण और केन्द्र का एक ही स्वामी यदि अन्य दोषयुक्त त्रिकोणपति से भी सम्बन्ध करे तो प्रबल राज-योग है।

(४) उद्योतकार कहते हैं कि यदि नवमेश अष्टमेश भी हो (जैसे मिथुन लग्न में शनि) या दशमेश एकादशेश भी हो (जैसे मेष लग्न में शनि), तो राजयोगकारक नहीं होता। इसी हेतु वाद से, यदि दशमेश एकादशेश से सम्बन्ध करे तो राजयोग भंग होता है। यदि भाग्येश अष्टमेश से सम्बन्ध करे तो राजयोग भंग होता है।

सज्जनरञ्जनीकार के मत से यद्यपि अष्टमेश-एकादशेश के सम्बन्ध मात्र से राजयोग भंग होता है परन्तु यदि इन भावेशों के अतिरिक्त अन्य केन्द्रेश-त्रिकोणेश योग हों तो फल होगा ही। इस कारण यदि नवमाधीश ही अष्टमाधीश हो या दशमेश ही लाभाधीश हो तो राजयोग भंग होता है। इस प्रकार मेष लग्न या मिथुन लग्न में शनि योगभंगकारक होगा। वृष लग्न में

नवमेश शनि और अष्टमेश बृहस्पति के सम्बन्ध से, दशमेश शनि और लाभेश बृहस्पति के सम्बन्ध से योगभंग हो,–कर्क लग्न में-नव मेश बृहस्पति और अष्टमेश शनि के सम्बन्ध से या कर्मेश मंगल तथा लाभेश शुक्र के सम्बन्ध से—सिंहलग्न में धर्मेश (नवमेश) रंध्रेश (अष्टमेश) मंगल-बृहस्पति के सम्बन्ध से या कर्मेश-लाभेश बुध-शुक्र के सम्बन्ध से—कन्यालग्न में धर्मेश-रन्ध्रेशशुक्र-मंगल के सम्बन्ध से या कर्मेश-लाभेश बुध-चन्द्र के सम्बन्ध से।

तुलालग्न में अष्टमेश-नवमेश शुक्र-बुध हुए (किन्तु हमारे मत से लग्नाधीश होने के कारण शुक्र को अष्टमेश-प्रयुक्त दोष नहीं होगा) या कर्मेश—लाभेश चन्द्र-सूर्य के सम्बन्ध से राजयोग भंग होगा। वृश्चिक लग्न में धर्मेश-रंध्रेश चन्द्र-बुध के योग से या सूर्य (दशमेश) बुध (लाभेश) के सम्बन्ध से योगभंग। धनुलग्न में अष्ट-मेश नवमेश चन्द्र सूर्य हुए (किन्तु हमारे मत से किसी स्थिति में, यदि चन्द्रमा स्वगृही हो तो दोष चन्द्रमा को नहीं होगा और अन्य स्थिति में, जब चन्द्रमा स्वगृही न हो, चन्द्रमा को अष्टमेश प्रयुक्त स्वल्प दोष होगा)। लाभेश शुक्र और राज्येश बुध के सम्बन्ध से योग-भंग। मकरलग्न के लिये अष्टमेश सूर्य नवमेश बुध हुए (सूर्य को भी स्वगृही हो तो कोई दोप नहीं; स्वगृही न हो तो स्वल्प दोष)। कर्मेश शुक्र आयेश मंगल के सम्बन्ध से योग भंग। कुंभलग्न के लिये अष्टमेश बुध नवमेश शुक्र के योग से और कर्मेश मंगल, लाभेश बृहस्पति के सम्बन्ध से योगफल। मीनलग्न के लिये अष्टमेश शुक्र, नवमेश मंगल के सम्बन्ध से तथा कर्मेश बृहस्पति, लाभेश शनि के योग से राजयोग भंग होगा। किन्तु यदि इन योगों के अतिरिक्त सुयोग (शुभ योग) अधिक हों तो परिणाम में (शुभयोगों में से दुर्योग घटाने से) शेष में शुभयोग बचेंगे इसको दृष्टान्त द्वारा पहले स्पष्ट किया जा चुका है।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि मेष और मिथुन लग्न को बृहस्पति शनि मात्र के सम्बन्ध होने से योग नहीं होता। हेतुवाद ऊपर दिया जा चुका है इस कारण पिष्टपेषण नहीं किया जा रहा है। धर्मेश को त्रिकोणेश का उपलक्षण समझना चाहिये, कर्मेश को केन्द्रेश का उपलक्षण। त्रिकोणेश लाभेश नहीं हो सकता, किन्तु केन्द्रेश अष्टमेश और लाभेश, दोनों हो सकता है। इसलिए केवल यह अर्थ नहीं लेना कि त्रिकोणेश यदि अष्टमेश हो और केन्द्रेश यदि लाभेश हो। प्रत्युत यह अर्थ है कि त्रिकोणेश और केन्द्रेश यदि इनमें कोई भी अटष्मेश, लाभेश हो तो राज योग भंग होता है और ऐसे त्रिकोणेश-केन्द्रश के सम्बन्ध से जातक को योग प्राप्त नहीं होता। किन्तु यदि साथ ही साथ अष्टमेश दोषप्रसक्त त्रिकोणेश के अतिरिक्त त्रिकोणेश से निर्दोष केन्द्रेश सम्बन्ध करे या अष्टमेश किंवा लाभेश-प्रसक्त दोषयुक्त केन्द्रेश के अतिरिक्त भी अन्य केन्द्रेश से निर्दोष त्रिकोणेष सम्बन्ध करे तो योग होगा ही। यही मूल में 'मात्र' शब्द से इंगित किया है।

पहले कह आये हैं कि केन्द्रेश-त्रिकोण का सम्बन्ध हो और इतर (अन्य भावाधीश) से अप्रसक्त (संबन्ध रहित) हों तो विशेष शुभदायक होते हैं। यहाँ इतर (अन्य) शब्द से लग्नेश नहीं लिया जा सकता क्योंकि वह त्रिकोण और केन्द्र दोनों का स्वामी होने से शुभ है। व्यय, द्वितीय, त्रि, षट् आय, अष्टम इनके स्वामी का ही अन्य ग्रह से अभिप्राय है। इनमें अष्टमेश पापतम (सर्वाधिक पापी) है। उससे कम पापी लाभेश। उससे अल्प पापी षष्ठेश है और न्यूनतम (सबसे कम) पापी तृतीयेश। व्ययेश और द्वितीयेश स्वयं पापी नहीं होते। इसलिये पहले कहा है कि 'इतर' (अन्य) के सम्बन्ध से दोष—हानि की सम्भावना है। यहाँ सबसे बड़े पापी अष्टमेश और लाभेश हैं।

इसलिये यदि कोई ग्रह अष्टम या लाभ का स्वामी हो तो—चाहे वह त्रिकोण या केन्द्र का भी स्वामी हो तो भी वह योग कारक नहीं हो सकता, यह पराशर मुनि का मत है। किन्तु जहाँ शनि या मंगल नैसर्गिक पापी लाभेश हों वहीं यह व्यवस्था है। शुक्र यदि लाभेश हो तो ऐसा नहीं होता। (क्योंकि श्री विनायक शास्त्री के मतानुसार, नैसर्गिक पापी यदि लाभेश हो तो पापी होता है—शुभग्रह में केवल शुक्र ही ऐसा शुभग्रह है जो केन्द्रेश होने के साथ लाभेश भी हो सकता है—इस कारण शुक्र का निर्देश किया कि यह व्यवस्था शुक्र के लिये नहीं।)

यदि नैसर्गिक पापी मंगल या शनि तृतीय या षष्ठ के स्वामी हों तो तृतीय और षष्ठ—अपेक्षाकृत स्वल्प (कम) पाप स्थान होने के कारण अल्प पापी होंगे इसलिये इनके—केन्द्रेश त्रिकोणेश सम्बन्ध में सम्मिलित होने से योग कारकता में हानि तो होती है किन्तु अल्प योग फल होता ही है। व्ययेश किंवा द्वितीयेश यदि केन्द्रेश त्रिकोणेश सम्बन्ध में योग दान करें तो हानि नहीं होगी—योगफल न अधिक होगा न अल्प - इसलिये मध्यम मान से समझना चाहिये (जैसे कि संख्या में ० शून्य घटाया तो कम नहीं होगी या ० शून्य जोड़ा तो अधिक नहीं होगी।

इसलिये 'इतर' (अन्य भावाधीश के) सम्बन्ध से क्या व्यवस्था होती है वही यहाँ बताया है कि रन्ध्रेश या लाभेश के सम्बन्ध मात्र से योग भंग हो जाता है। यह भी स्पष्ट है कि यदि केन्द्रेश त्रिकोणेश का सम्बन्ध हो और ऐसे केन्द्रेश त्रिकोणेश से भिन्न अन्य ग्रह जो रंध्रेश या लाभेश हों, योगकारक (सम्बन्धित केन्द्रेश त्रिकोणेश में से एक से) या योगकारकों (सम्बन्धित केन्द्रेश त्रिकोणेश दोनों से) से सम्बन्ध करे तो योग भंग नहीं होता। केन्द्रेश या त्रिकोणेश स्वयं रन्ध्रेश या भेलाश

हों तो योगकारकत्त्व की हानि होती है—यह स्वयं योगकारक नहीं हो सकते, इसका यह अर्थ नहीं है कि योग नाशक होते हैं क्योंकि स्वत: फल की अपेक्षा साहचर्य फल (शुभ या अशुभ) कम होता है।

श्रीरामयत्न ओझाजी के मतानुसार "धर्मकर्माधि – नेतारौ"—इसके अन्तर्गत त्रिकोणेश केन्द्रेश लेने चाहिये।

'धर्म' शब्द त्रिकोण बोधक है, 'कर्म' शब्द केन्द्र बोधक है। अष्टमेश और लाभेश इनके (दोनों के) सम्बन्ध से जातक को योग प्राप्त नहीं होता। यदि केन्द्रेश त्रिकोणेश में केवल नवमेश अष्टमेश हो अथवा दशमेश लाभेश हो तो योग की हानि नहीं होती तथा चतुर्थेश एकादशेश भी हो, पंचमाधीश अष्टमाधीश भी हो तो योग की हानि नहीं होती; यदि नवमेश दशमेश के सम्बन्ध में त्रि, षट्, आय तीनों के स्वामियों का योग हो तो हानि नहीं होती—(जैसे पहिले गुण जोड़ने, घटाने का प्रकार बताया गया है) यथा।

नवमेश	गुण	+४
दशमेश	,,	+४
तृतीयेश	,,	—१
षष्ठेश	,,	—२
एकादशेश	,,	—३
शेष		+२ शुभफल (सुयोग) २

किन्तु यदि नवमेश, दशमेश के सम्बन्ध में, अष्टमेश लाभेश दोनों का योग हो तो —:

नवमेश गुण +४
दशमेश „ +४
अष्टमेश „ —६
लाभेश „ —३

———

शेष —१ अशुभफल (दुर्योग) १

यहीं सिद्धान्त बताया गया है।

(v) इस राजयोगाध्याय के विवेचन में चार विशिष्ट राज योग बताते हैं :

उद्योतकार कहते हैं कि लग्नेश दशम में हो और दशमेश लग्न में हो तो जातक विशिष्ट ख्यातिमान् विजयी (संग्राम. विवाद आदि में जयशाली,) होता है।

श्री विनायक शास्त्री के मतानुसार लग्नेश, दशमेश दोनों लग्न में हों तो एक योग हुआ। लग्नेश, दशमेश दोनों दशम में हों तो दूसरा राजयोग हुआ।

लग्न त्रिकोण और केन्द्र दोनों है। कहीं भी लग्नेश, दशमेश दोनों एक साथ बैठें तो राजयोग होगा—किन्तु यहाँ केवल भावेश साहचर्य नहीं होगा किन्तु भाव साहचर्य भी होगा। दोनों लग्न में बैठेंगे तो न केवल दशमेश, लग्नेश साहचर्य होगा अपितु लग्नेश दशमेश त्रिकोण (लग्न) में होंगे। दोनों दशम में बैठेंगे तो न केवल दो उत्तम भावेश एक साथ होंगे अपितु दोनों केन्द्र में होंगे। साथ ही लग्न में बैठें तो लग्नेश स्वगृही होगा— दशम में बैठें तो दशमेश स्वगृही होगा। लग्न शरीर है, दशम राज्य है, इनके स्वामियों का लग्न से साहचर्य हो किंवा दशम से साहचर्य हो तो जातक के शरीर सुख और राज्य सुख विशेष रूप से संभावित होते हैं।

पंडित रामयत्न ओझा जी के मत से उपर्युक्त योग को लग्न और कर्म तक ही सीमित नहीं करना चाहिये अपितु सब केन्द्र बोधक कर्म शब्द है। इसी प्रकार अन्योन्याश्रय सम्बन्ध से सब प्रकार के सम्बन्ध समझने चाहिये।

अब जिस प्रकार लग्नेश कर्मेश संबन्ध से राज योग बताया वैसे ही धर्मेश कर्मेश संबन्ध से राजयोग बताते हैं। उद्योत टीकाकार लिखते हैं कि धर्मेश दशम में हो, कर्मेश नवम में तो जातक की कुण्डली में प्रबल राजयोग होता है और जातक विख्यात और विजयी होता है। श्री विनायक शास्त्री "धर्म लग्नाधिनेतारौ" तथा "धर्म कर्माधिनेतारौ" पाराशरी के इस मूलवचन के पाठांतर के आधार पर कहते हैं कि धर्मेश और लग्नेश यदि दोनों लग्न में हों या दोनों भाग्य में हो या धर्मेश और कर्मेश दोनों यदि धर्म में हों या दोनों यदि कर्म (दशम) में हो तो विजयी और विख्यात होता है। इस विशेष राजयोग का आधार पूर्वोक्त वर्णित सिद्धान्त है कि दोनों केन्द्र या त्रिकोण में होंगे और न केवल केन्द्र त्रिकोणेश भावेश साहचर्य होगा अपितु केन्द्र त्रिकोण भाव साहचर्य भी होगा। इस उक्ति से पराशर मुनि ने भाव फल कहने की युक्ति भी बता दी है। लग्नेश चतुर्थेश सम्बन्ध से सुखी क्योंकि लग्न स्वयं (शरीर) है और चतुर्थ सुख है। लग्नेश पंचमेश संबन्ध मे बुद्धिमान् क्योंकि पंचम बुद्धि स्थान है। लग्नेश सप्तमेश सम्बन्ध से सत्कलत्र (अच्छी पत्नी) होने से सत्कर्म करने वाला। लग्नेश नवमेश सम्बन्ध से भाग्यवान्। पंचमेश चतुर्थेश सम्बन्ध से सुबुद्धि के कारण सुखी। पंचमेश सप्तमेश सम्बन्ध से पत्नी बुद्धिमती होने से सद् गृहस्थ। नवमेश चतुर्थेश सम्बन्ध से भाग्यवान् होने से सुखी। नवमेश सप्तमेश सम्बन्ध से भाग्यवती पत्नी होने से सद्गृहस्थ। नवमेश दशमेश के सम्बन्ध का फल पहिले ऊपर बता चुके हैं कि भाग्य-

वान् होने से विख्यात और विजयी। लग्नेश धर्म में, धर्मेश लग्न में हो तो भी जातक विख्यात और जयशाली होता है।

पंडित रामयत्न ओझा जी के मत से "धर्म लग्नाधिनेतारौ" इस वचन में "धर्म" पद त्रिकोण का बोधक है। इसलिये "लग्न कर्म" के अधिपतियों के योग में लग्न को त्रिकोण माना गया है और "धर्मलग्न" पद में लग्न को केन्द्र—इस कारण लग्नेश केन्द्रेशों से सम्बन्ध करे तो भी उत्तम और लग्नेश त्रिकोणेशों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध करे तो राजयोग कारक होता है।

(vi) इस राजयोगाध्याय में प्रसंगवश श्लोक ७ की द्वितीय पंक्ति, श्लोक ८ तथा ९ में जो दशा, अन्तर्दशा फल बताया गया है उसका दशा अन्तर्दशा विवेचन के प्रसंग में विवेचन करेंगे कि अन्य आचार्यों ने इस प्रसंग में क्या मत प्रदर्शन किया है।

विभिन्न विद्वानों के मत को प्रदर्शन कर मूल की दुरूह ग्रंथियों को सुलझाना तथा विषय को खोलकर विभिन्न दृष्टि-कोण से उसकी समीक्षा करना ही इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है। जो किसी श्लोक या सिद्धान्त का एक ही अर्थ जानते हैं—वे उस एक अर्थ को ही सही और मान्य समझते हैं। तुलनात्मक विवेचन और अध्ययन से ही पूर्ण ज्ञान होता है। अन्यथा आंशिक ज्ञान ही हो पाता है जो भ्रमात्मक होता है।

(vii) राहु या केतु यदि केन्द्र या त्रिकोण में हों।

उद्योतकार कहते हैं कि राहु या केतु यदि त्रिकोण में बैठे और केन्द्रेश के स्वामी से संबन्ध करे या केन्द्र में बैठे और त्रिकोणेश से सम्बन्ध करे तो योगकारक होता है। सज्जनरञ्ज-नीकार यह विशेष कहते हैं कि यदि राहु या केतु इन दोनों में एक केन्द्र में होगा तो दूसरा भी केन्द्र में होगा, परन्तु इन दोनों में से एक यदि त्रिकोण में होगा तो दूसरा भी त्रिकोण में नहीं हो सकता। इस कारण केन्द्र में बैठकर त्रिकोणेश से सम्बन्ध

करे तो विशेष योग कारक और त्रिकोण में बैठकर केन्द्रेश से सम्बन्ध करे तो न्यून योगकारक होगा।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि तमोग्रह (राहु, केतु) को भावसाहचर्य से ही भावेश-साहचर्य का पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है। इसलिये यदि ये केन्द्र में बैठें तो उस केन्द्रेश के समान और यदि त्रिकोण में बैठें तो उस त्रिकोणेश के समान समझे जावेंगे। यदि राहु केन्द्र में बैठकर त्रिकोण के स्वामी से या त्रिकोण में बैठकर केन्द्र के स्वामी से सम्बन्ध करे तो योगकारक होता है। जो राहु के विषय में कहा गया वह केतु के विषय में भी समझना चाहिये। पडित श्री रामयत्न जी ओझा के मतानुसार (i) राहु या केतु केन्द्र में बैठकर त्रिकोणश से सम्बन्ध करे या त्रिकोण में बैठकर केन्द्रेश से सम्बन्ध करे तो योगकारक होता है (ii) किन्तु यदि केन्द्र में बैठकर केन्द्रेश से सम्बन्ध करे या त्रिकोण में बैठकर त्रिकोणेश से सम्बन्ध करे तो भी योगकारक होता है किन्तु (i) की अपेक्षा कम।

यद्यपि सुश्लोकशतक ने राहु या केतु का जिस राशि में वह हो, उससे सप्तम स्थित ग्रह से भी सम्बन्ध माना है किन्तु अधिकांश विद्वान् चारों सम्बन्ध में से एक ही सम्बन्ध-सहावस्थान (एक साथ बैठना) मानते हैं। अन्य तीन प्रकार के सम्बन्ध राहु-केतु के नहीं होते।

अथ मारकाध्यायः

सप्तमं मारकस्थानं तस्मात्तु प्रबलं धनम् ।
मरणं मारकेशस्य दशायां प्रवदेत्सुधीः ॥ १ ॥

सम्बन्धी मारकेशस्य पापः कश्चिद्ग्रहो भवेत् ।
तद्दशायामथो मृत्युं संभवे प्रवदेद् बुधः ॥ २ ॥

सप्तम मारक स्थान है। उससे प्रबल मारक धन (द्वितीय) स्थान है। विद्वान् को उचित है कि उसमें (सप्तमेश या द्वितीयेश की महादशा में) मृत्यु होगी, ऐसा कहे यदि संभावना हो ॥१॥

यदि मारकेश का सम्बन्धी कोई पाप ग्रह हो तो उसकी दशा में मृत्यु कहे । अर्थात् सप्तम या द्वितीय के स्वामी, सप्तम या द्वितीय में बैठे पाप ग्रह या सप्तमेश या द्वितीयेश से सम्बन्ध करने वाले पापग्रह मारक (मृत्यु करने वाले) होते—हैं ॥२॥

उद्योत टीकाकार कहते हैं कि सप्तमेश से द्वितीयेश बलवान है इसलिये मारकता द्वितोय स्थान में अधिक है । मारकेश से सम्बन्ध का अर्थ है मारकेश के स्थान (द्वितीय या सप्तम) से सम्बन्ध करना या मारकेश ग्रह से सम्बन्ध करना । उनकी दशा या अन्तर्दशा में मृत्यु होती है। सज्जनरजनी टीकाकार के मतानुसार द्वितीयेश की अपेक्षा द्वितीय स्थान में बैठे पापग्रह अधिक मारक हैं, इन द्वितीय स्थान में बैठे पापग्रहों में जो अधिक पापी

है वह विशेश बलवान् मारक है। इससे भी अधिक मारक वह पापग्रह होता है जो द्वितीयेश से संयुक्त हो। इस प्रकार इन का बल ज्ञात कर मारक निश्चय करना चाहिये। जब द्वितीयेश द्वितीयस्थान गत पाप तथा द्वितीयेश-संयुत पाप-तीनों प्रकार के ग्रह मारक होने के अधिकारी हों तो उनका मारकत्व बल ज्ञात कर मारकेश निश्चय करना चाहिये। क्योंकि कहा है—

लग्नादस्तं द्वितीयं भवति मृतिपदं तत्र ये पापखेटाः
तन्नाथेनाथयुक्तास्तदधिपतिदशास्वेवमृत्युं दिशन्ति।

अर्थात् लग्न से सप्तम और द्वितीय मृत्युस्थान हैं। उन स्थानों में (सप्तम और द्वितीय में) जो पापग्रह हो, सप्तमेश और द्विती-येश से युक्त जो पाप खेट (ग्रह) हो और सप्तम तथा द्वितीय के मालिकों की दशा में मृत्यु होती है।

श्री विनायक शास्त्री के मतानुसार यहाँ पापी शब्द से जो दोष विशिष्ट हो अर्थात, नीच, अस्तंगत्, पापयुत, पापाक्रान्त शत्रुक्षेत्रस्थिति आदि वाले पाप ग्रह लेने चाहियें। इनके मत से द्वितीयेश की अपेक्षा सप्तम अधिक प्रबल मारक स्थान है। यदि सप्तमेश या द्वितीयेश गुरु या शुक्र हों तो इनकी विशेष मारकता होती है और यदि मारक स्थान में बैठ जावें तो विशेष मारक-त्व इनमें आ जाता है। सप्तमेश होने की स्थिति में सर्वाधिक मार-कता बृहस्पति को फिर शुक्र को उससे कम बुध को और उससे कम चन्द्र को होती है।

सर्वप्रथम सप्तमेश की मारकता का विचार करना चाहिये उसके बाद द्वितीयेश का, उसके बाद गुरु और शुक्र का। क्योंकि मारक स्थान से अतिरिक्त स्थान में बैठकर भी ये ग्रह मारक हो सकते हैं। किन्तु केन्द्रेश (सप्तमेश) गुरु, शुक्र यदि मारक

स्थान में न बैठे हों तो उन्हें मारक बनाने के लिये किंचित् पाप-संयुति आवश्यक होती है। इसलिये मारकेश की सर्वप्रथम मारक स्थान स्थिति है या नहीं, यह विचार करना चाहिये। उसके बाद पाप-संयुति का विचार करना चाहिये। इनके विचार से मारकेश, फिर मारक स्थान-स्थित ग्रह, उसके बाद मारकेश से संयुत पापग्रह—इन तीनों में प्रथम द्वितीय की अपेक्षा बली, द्वितीय तृतीय की अपेक्षा बली मारक होता है। जिस ग्रह में प्रबलमारकत्व हो उसी की दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु संभव है। शास्त्रीजी के मत से इस पाराशरीय मत में जैमिनि के मत का सम्मिश्रण नहीं करना चाहिये।

परन्तु पंडित रामयत्न जी ओझा के विचार से (i) लग्नेश अष्टमेश (ii) मन्द (लग्न या शनि) तथा चन्द्र और (iii) लग्न तथा होरा लग्न इनसे यह पहले निश्चय करना चाहिये कि जातक अल्पायु है, मध्यायु या दीर्घायु। और यह निर्णय करने पर जिस खंड में आयु आती हो उस खंड में किस मारक ग्रह, मारक स्थान-स्थित पापग्रह या मारकश-संयुत पापग्रह की दशा प्राप्त होती है, यह देखकर मारक दशा का निर्णय करना उचित है।

लग्नेश, अष्टमेश आदि से जैमिनि-सूत्र के अनुसार अल्पायु, मध्यायु, दीर्घायु का निर्णय करना हमने सुगम ज्योतिष-प्रवेशिका में सविस्तार बतलाया है। पाठक उसका अवलोकन करें। इसके अतिरिक्त उन नियमों को लागू करने के बाद, निम्नलिखित नियमों के अनुसार भी आयु-निर्णय करना चाहिये।

(i) लग्न और सप्तम से जो अष्टमेश, उनमें जो बलवान्, वह लग्न से केन्द्र में हो तो दीर्घायु, पणफर में हो तो मध्यायु और

---

१. देखिये फलित विकास पृष्ठ ६९

आपोक्लिम में हो तो अल्पायु जाननी चाहिए।

दो ग्रहों में कौन विशेष बलवान् है, इसका निर्णय जैमिनि ऋषि ने यह किया है कि अन्य ग्रह के साथ जो ग्रह हो, वह उस ग्रह से बलवान् होता है जो अकेला बैठा हो। यदि ग्रह दोनों के साथ बैठे हों तो जो अधिक ग्रहों के साथ बैठा हो वह विशेष बलवान् होता है। मान लोजिये, एक ग्रह दो ग्रहों के साथ बैठा है और अन्य तीन ग्रहों के साथ, तो जो ग्रह तीन ग्रहों के साथ बैठा है वह दो ग्रहों के साथ बैठने वाले से विशेष बली होगा। यदि दोनों अकेले बैठे हों, अन्य ग्रह से युक्त न हों, या समान संख्या के ग्रहों के साथ बैठे हों —दोनों एक-एक दो-दो या तीन-तीन ग्रहों के साथ हों तो इस प्रकार ग्रह-साम्य होने पर जो स्थिर राशि में बैठा है, वह चर-राशि में बैठे ग्रह से अधिक बली होता है और जो द्विस्वभाव राशि में बैठा है वह स्थिर राशि में बैठने वाले की अपेक्षा विशेष बली होता है।

(ii) दूसरा विचार जन्म-कुंडलो में जो आत्मकारक है उससे किया जाता है। आत्मकारक क्या? जो ग्रह राशि (जिस राशि में वह बैठा है) में सबसे अधिक अंश वाला है वह आत्मकारक होता है। राशि-संख्या से कोई मतलब नहीं। केवल अंश-संख्या से आत्मकारक का निर्णय किया जाता है।

आत्मकारक से तथा आत्मकारक से (जिस राशि में आत्मकारक बैठा है, उस राशि से) सप्तम — इन दोनों स्थानों से जो अष्टम, उनके स्वामियों में जो बलवान् ग्रह हो (बलवान् ग्रह निर्णय करने का प्रकार ऊपर समझा चुके हैं) वह यदि आत्मकारक के साथ बैठा हो तो दीर्घायु, आत्मकारक से पणफर में बैठा हो तो मध्यायु और आत्मकारक से आपोक्लिम में बैठा हो तो अल्पायु जानना चाहिए।

यदि लग्न विषम हो और आत्मकारक तृतीय में हो, या यदि लग्न सम हो और आत्मकारक एकादश में हो तो (आत्म-कारक तथा उससे सप्तम से गिनने पर जो अष्टमेश, उनमें जो बली) यदि केन्द्र में हो तो अल्पायु, पणफर में हो तो मध्यायु, आपोक्लिम में हो तो दीर्घायु जाननी चाहिए।

यदि उपर्युक्त अष्ट मेश और आत्मकारक एक साथ बैठे हों तो मध्यायु समझना चाहिए।

पंडित जी के मत से विषम लग्न हो तो मेष, वृष, मिथुन इस क्रम से और यदि लग्न सम हो तो वृष, मेष, मीन इस क्रम से गणना करनी चाहिये। परन्तु बहुत से विद्वान् लग्न विषम हो या सम क्रम से ही गणना करते हैं।

इस प्रकार आयु लगभग कितनी है, वह अल्पायु है या मध्यायु या दीर्घायु, इसका निर्णय होने पर कौन सी दशा मारक होगी, यह निर्णय करना। पंडितजी लिखते हैं—

लग्न, कर्म (दशम) आयु (अष्टम) के मालिक केन्द्र या एकादश या त्रिकोण. में बैठे हो तो दीर्घायु। तृतीय या चौथे स्थान में पापग्रह हों या पणफर में कोई ग्रह हो तो मध्यायु। इनसे अन्य स्थान में ग्रह हो तो अल्पायु योग समझना।

दीर्घायु, मध्यायु, अल्पायु योग लग्न और चन्द्रमा के द्रेष्काणानुसार, लग्नेश और चन्द्रमा जिस राशि में हों उसके स्वामी, ये दोनों जिस नवांश में हों उनके स्वामी की स्थिति के अनुसार तथा लग्नेश और अष्टमेश, इन दोनों के द्वादशांश वश किस प्रकार निर्णय करना, इसके लिये देखिये "फलदीपिका (भावार्थबोधिनी टीका, पृष्ठ २५७-२५८)। फलदीपिका के तेरहवें अध्याय में आयुर्भावविवेचन विशद रूप से किया गया है। फलदीपिका (पृष्ठ ६७६-६७७ के अन्त) में जो काल चक्र दशा का विधान दिया गया है वह भी मारक काल-निर्णय में

सहायक होता है।

जन्मलग्नेश्वरः खेटो भानोरधिसुहृत् सुहृत् ।
वा चेद्दीर्घायुरथवा समो मध्यायुरुच्यते ।। ३ ।।

अल्पायुरधिशत्रुश्चेच्छत्रुर्वा रविरत्र चेत् ।
भवेल्लग्नेश्वरस्तर्हि जन्मराशीश्वरस्तदा ।। ४ ।।

तयोः स एव नाथश्चेत् तदा यद्गृहगो रविः।
तद्वशादिह निर्णयमायुर्विद्धद्भिरेव हि ।। ५ ।।

अल्पायुषागते चेत्स्यात्तद्दशान्यतमा भवेत् ।
संभवे स तु विज्ञेय स्तदभावेत्वसंभवः ।। ६ ।।

दीर्घायु, मध्यायु, अल्यायु निर्णय करने का एक अन्य प्रकार भी बताते हैं ।

यदि जन्म-लग्न का स्वामी सूर्य का अधिमित्र या मित्र हो तो दीर्घायु । यदि जन्म-लग्न का स्वामी सूर्य का सम हो तो मध्यायु ।।३।।

यदि जन्म-लग्न का स्वामी सूर्य का शत्रु या अधिशत्रु हो तो अल्पायु ।।४।।

यदि जन्म-लग्न का स्वामी सूर्य स्वयं हो तो—चन्द्रराशि का स्वामी सूर्य का अधिमित्र या मित्र हो तो दीर्घायु ; सम हो तो मध्यायु, शत्रु या अधिशत्रु हो तो अल्पायु। यदि अल्पायु आवे तो अल्पावस्था में मारकेश, मारक-स्थानगत पाप, या मारकेश संयुत पापग्रह की जब दशा होती है तभी मरण-काल उपस्थित हो जाता है।

जैमिनि तथा फलदीपिका के मत से जो अल्पायु-मध्यायु-

दीर्घायु खण्ड हैं, वे निम्नलिखित हैं—

प्रथम मत—३२ वर्ष तक अल्पायु, ३२ से, ६४ तक मध्यायु ६४ से ९६ तक दीर्घायु ।

द्वितिय मत—३६ वर्ष तक अल्पायु, ३६ से ७२ तक मध्यायु, ७२ से १०८ तक दीर्घायु ।

तृतीय मत—४० वर्ष तक अल्पायु, ४० से ८० तक मध्यायु और ८० से १२० तक दीर्घायु ।

कब कौन सा मत लेना, यह विवेचन करने से ग्रंथ बहुत विस्तृत हो जायेगा । जिज्ञासु पाठक महा महोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद जी द्विवेदी लिखित 'जैमिनीय पद्यामृतम्' का अवलोकन करें। अस्तु ।

अब प्रस्तुत प्रसग पर आइये । जन्म-लग्नेश्वर सूर्य का मित्र सम या शत्रु है, इस आधार पर निर्णय करना 'सर्वार्थ चिंतामणि' नामक फलित ज्यौतिष के प्रसिद्ध ग्रंथ में भी दिया है—और उसे सज्जनरञ्जनी टीकाकार ने उद्धृत भी किया है। परन्तु हमारे विचार ये यह पद्धति सर्वथा निर्णीत रूप से संतोषजनक नहीं है क्योंकि शनि सूर्य का नैसार्गक शत्रु है। यदि यह सूर्य से द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, दशम, एकादश, द्वादश नहीं हुआ तो मकर, कुंभ वाले सदैव अल्पायु हो जावेंगे। शुक्र भी सूर्य का शत्रु है, इस कारण जब-जब सूर्य-शुक्र साथ होंगे वृष और तुला लग्न वाले अल्पायु हो जावेंगे । इस प्रकार वृष, तुला, मकर, कुंभ लग्न वाले जातकों को दीर्घायु होने की संभावना रहेगी ही नहीं । परन्तु लोक में ऐसा नहीं देखा जाता ।

असंभवे जन्मलग्नात् व्ययाधीशो हि मारकः ।
व्ययाधीशस्य सम्बन्धी शुभः खेटोऽपि मारकः ।। ७ ।।

व्ययस्थाने स्थितः पापो ह्याष्टमेशोऽथवा भवेत् ।
एषामन्यतमायान्तर्दशायां निधनं भवेत् ।। ८ ।।

अथवा सर्वथारीत्या यः खेटः कलुषो भवेत् ।
न शुभस्तद्दशायां तु मरणं भवति ध्रुवम् ।। ९ ।।

मारकेशस्य सम्बन्धी यदि पापः शनैश्चरः ।
मारकः स शनिर्ज्ञेयो नान्ये मारकलक्षणाः ।। १० ।।

केन्द्रनाथो गुरुश्चेत् स्याद्धने वा भवने स्थितः ।
मारकः प्रबलो ज्ञेयस्तथैव कविनन्दनः ।। ११ ।।

राहुश्चेदथवा केतुर्धने कामे व्ययाष्टमे ।
मारकेशान्मदे वापि मारकेशेन वा युतः ।। १२ ।।

मारकः स तु विज्ञेयो दशास्वन्तर्दशासु च ।
त्रिषडायेऽपि कष्टाय पापसंबन्धकृत्तथा ।। १३ ।।

यदि आयु जिस खंड (अल्पायु आदि) में आवें, उसमें मारकेश, मारकस्थानगत पाप, या मारकेश-संयुत पाप को दशा संभव न हो । अर्थात् उस समय न आवे तो जन्म-लग्न से बारहवें घर (व्यायधीश) की दशा मारक हो जाती है, व्ययाधीश से सम्बन्धित शुभ ग्रह भी मारक हो जाता है ।।७।।

अथवा व्यय स्थान में स्थित पापी की दशा ही मारक हो जाती है या अष्टमेश ही मारक हो जाता है, या इनमें से किसी की अन्तर्दशा में मृत्यु हो जावें ।।८।।

अथवा सब रीति से जो ग्रह सर्वथा कलुष (खराब हो—हमारे विचार से तृतीय, षष्ठेश, एकादशेश यदि नीच या शत्रु राशिगत, अस्त आदि दोषों से युक्त हों तो वे सर्वथा, खराब

समझे जावेंगे) या पापी हो, उसकी दशा में शुभ नहीं होता और मरण निश्चित है। (क्योंकि मरण-काल आ जाने पर केवल पाप की दशा, अन्तर्दशा में मरण हो जाता है) ।।९।।

यदि मारकेश का सम्बन्धी पापी शनि हो तो अन्य मारक लक्षण वाले ग्रह मारक न होकर शनि ही मारक होता है ।।१०।।

केन्द्रनाथ (सप्तम का स्वामी) बृहस्पति यदि धन स्थान लग्न से द्वितीय स्थान में बैठें या सप्तम में बैठे तो उसे प्रवल मारक समझना चाहिये। इसी प्रकार शुक्र यदि केन्द्रनाथ (सप्तम का स्वामी होकर) द्वितीय या सप्तम में बैठे तो वह भी प्रवल मारक होता है। हमारे विचार से बृहस्पति या शुक्र द्वितीयेश होकर द्वितीय या सप्तम में बैठे तो भी उसे मारकता प्राप्त होती है किन्तु सप्तमेश होने से विशेष दुष्ट हो जाते हैं ।।११।।

राहु या केतु द्वितीय, सप्तम या अष्टम में बैठा हो या मारकेश से सप्तम में बैठा हो, या मारकेश के साथ हो, तो यह अपनी दशा या अन्तर्दशा में मारक हो जाता है। त्रि षट्, आय का स्वामी भी कष्टकारक हो सकता है यदि पाप से सम्बन्ध करे ।।१२-१३।।

फलदीपिका (भावार्थबोधनी) के पृष्ठ ४४६ से ४५० तक 'जातक-चन्द्रिका' और भावार्थरत्नाकर' इन दोनों फलित ग्रंथों से मारक योग संग्रहीत करके दिये गये हैं कि अष्टमेश या अष्टम स्थान स्थित ग्रह की दशा में कौन-सी अन्तर्दशा, षष्ठेश या षष्ठस्थान-स्थित ग्रह की दशा में कौन-सी अन्तर्दशा, व्ययेश या व्यय-स्थान-स्थित ग्रह की महादशा में कौन-सी अन्तर्दशा मारक होती है। पाठक अवलोकन करें।

'सुश्लोकशतक' के उपर्युक्त श्लोकों का आधार पाराशरी सिद्धान्त हैं, इसलिए इस प्रसंग में उन सिद्धान्तों की विवेचना की

जाती है।

(i) उद्योतकार कहते हैं कि आयुर्दाय-विचार से यदि आयु की समाप्ति—अल्पायु, मध्यायु, या दीर्घायु—जिस खंड में आवे उसमें यदि पूर्वोक्त मारक ग्रह की दशा प्राप्त न हो तो व्ययेश की दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु हो जाती है। शास्त्रीजी कहते हैं कि दोनों मारक सप्तमेश, द्वितीयेश बृहस्पति, शुक्र (केन्द्राधिपति बृहस्पति या शुक्र) मारक स्थानगत अथवा पाप-संयुत ग्रहों की दशा का सम्भव न हो, तो व्ययाधीश की दशा में मृत्यु हो जाती है। किस स्थिति में? यदि व्ययाधीश मारक स्थानगत और पापसंयुत हो।

इसमें-पाराशरी क्रम में—तीन व्ययाधीश बताये गये: (१) अष्टम (आयु) का व्ययाधीश (२) अष्टम (आयु) से अष्टम (आयु) अर्थात् तृतीय स्थान का व्ययाधीश और (३) लग्न (शरीर) का व्ययाधीश। पंडित रामयत्नजी ओझा के मतानुसार उपर्युक्त स्थिति में व्ययेश की दशा या अन्तर्दशा भी मारक हो सकती है।

(ii) उद्योतकार कहते है कि यदि व्ययेश, व्ययस्थानगत पाप व्ययेश-संयुत पाप ग्रह की दशा प्राप्त न हो तो व्ययेश से सम्बन्धित शुभ ग्रह की दशा में निधन हो जाता है। सज्जन रञ्जनी कार कहते हैं कि व्ययेश से सम्बन्धित योगकारक की दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु नहीं होती। इसलिये ऊपर जो व्ययेश से सम्बन्धित शुभ की दशा भी मारक कही गई है, यहाँ योग-कारक व्यतिरिक्त (योगकारक के अलावा) शुभ ग्रह समझना।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि जो व्ययेश का सम्बन्धी ग्रह भी मारक हो जाता है, इससे सप्तमेश-सम्बन्धी, द्वितीयेश-सम्बन्धी, केन्द्रेश गुरु-शुक्र-सम्बन्धी, व्ययेश-सम्बन्धी—ये सब सम्बन्धी लेने चाहियें। व्ययेश से सम्बन्धित इस वाक्य में भी

व्यय स्थानगत पाप, व्ययेश-संयुत पाप आदि जो सप्तमेश द्वितीयेश के प्रकरण में अर्थ लिये गये हैं, वे सब अर्थ लेने चाहियें। पंडित रामयत्नजी ओझा सीधा यही अर्थ लेते हैं कि व्ययेश से सम्बन्धित शुभ ग्रह की दशा-अन्तर्दशा में मरण कहना चाहिये।

(iii) कहीं उपर्युक्त मारकेशों से सम्बन्धित शुभ ग्रह की दशा, अन्तर्दशा में मृत्यु हो जाती है। अर्थात् उपरोक्त मारक द्वितीयेश, सप्तमेश, केन्द्रेश गुरु, शुक्र, व्ययेश - ग्रहों से सम्बन्धित पाप की दशा, अन्तर्दशा प्राप्त न हो तो उनसे सम्बन्धित शुभ की दशा- अन्तर्दशा मारक हो जाती है।

(iv) यदि वह भी प्राप्त न हो तो अष्टमेश की दशा मारक हो जाती है। सज्जनरञ्जनीकार कहते हैं कि कदाचित् ऐसा भी हो जाता है। और अष्टमेश की दशा भी प्राप्त न हो तो अष्टमेश से सम्बन्धित पापी की दशा मृत्यु कर देती है। यह इस प्रसंग में सत्याचार्य का मत देते हैं--

यो लग्नाधिपतेः शत्रुर्लग्नेशान्तर्दशां गतः।
करोत्यकस्मान्मरणं सत्याचार्यमतं त्विदम् ॥

अर्थात्, जो लग्नेश का शत्रु हो, और लग्नेश की अन्तर्दशा में हो (अर्थात् लग्नेश की महादशा—लग्नेश शत्रु की अन्तर्दशा) तो अकस्मात् मरण हो जाता है।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि यहां "अष्टमेश," अत्यन्त पापी का इंगित करता है क्योंकि सब भावाधीशों में अष्टमेश ही सर्वाधिक पापी होता है। इसलिये अष्टमेश के अन्तर्गत अन्य, अष्टमेश से न्यून पापी भी अष्टमेश के बाद क्रम, से लेने चाहियें। श्रीरामयत्नजी इस विवेचन में कहते हैं कि अष्टमेश की दशा—अन्तर्दशा-- प्रत्यन्तर्दशा में (जब पूर्वोक्त मारकों की दशा आदि प्राप्त न हो) मरण कहना चाहिये।

(v) यदि उपयुक्त मारक दिखाई न दे तो मारकेश से

असम्बन्धित पापग्रह की दशा में मरण कहे। उद्योतकार पाप का अर्थ करते हैं—त्रि, षट्, या आय के स्वामी, सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त, मारकेश स्थानों के स्वामी, षष्ठ, अष्टम और व्यय के स्वामी, राहु तथा केतु और जो आय नवांशपति हो वह मारक समझना चाहिये। चन्द्र जिस नवांश में हो उसका स्वामी मारक होता है। पाप षड्वर्ग, शत्रुगृह में, अस्त, नीच वर्गों में ग्रह दुष्ट होता है षड्वर्ग के विस्तृत विवेचन के लिये देखिये हमारी लिखी 'सुगम ज्योतिष प्रवेशिका।'

पापग्रह मृत्यु करता है। शुभग्रह पीड़ामात्र करते हैं यह सब उद्योतकार का मत है। सज्जनरञ्जनीकार कहते हैं कि (१) मंगल, राहु (२) मंगल, शनि (३) सूर्य, शनि (४) चन्द्र, बुध (५) शुक्र, बृहस्पति यह जो पाँच जोड़े ग्रहों के बताये गये-इनमें एक की दशा में जब दूसरे की अन्तर्दशा आती हैं तो कष्ट-कारक होती है। यथा मंगल में राहु या राहु में मंगल, मंगल में शनि या शनि में मंगल। इत्यादि

श्री विनायक शास्त्री के अनुसार अष्टमेश के बाद त्रिकोण-केन्द्र सम्बन्ध-रहित त्रिषडायपति पापी आते हैं।

इस प्रकार पूर्व-पूर्व जो मारक ग्रह कहे गये उनके अभाव में उनकी दशा प्राप्त न होने पर बाद, बाद के ग्रह क्रम से लेने चाहियें।

श्रीरामयत्नजी ओझा कहते हैं कि यदि आयुर्दाय लम्बी हो तो उपर्युक्त ग्रह अपनी दशा-अन्तर्दशा में शारीरक कष्ट मात्र देते हैं, मृत्यु नहीं करते।

(vi) उद्योतकार कहते हैं कि त्रि, षट्, आय आदि के स्वामित्व प्रयुक्त पाप लक्षणों से युक्त यदि शनि मारकों से सम्बन्ध करे तो और सब मारकों का अतिक्रमण करके, शनि स्वय ही मारक हो जाता है। पापकृत् मात्र शनि मारक हो जाता है,

इसका अर्थ हुआ कि अन्य मारकों की अपेक्षा शनि विशिष्ट मारक है। मारकेशों के साथ सम्बन्ध हो अथवा शनि मारक हो तो इसके मारक होने में संदेह ही क्या है ? अर्थात् कोई सन्देह नहीं है। इससे मारकत्व के मामले में शनि की प्रबलता हुई।

सज्जनरञ्जनीकार कहते हैं कि जहाँ दो, तीन मारक प्राप्त होते हों वहाँ शनि में (पाप भावों का स्वामित्व हो) और शनि मारकों से सम्बन्ध करे तो सबका अतिक्रमण करके शनि ही मारक हो जाता है। हम इसे एक उदाहरण द्वारा समझाते हैं। शनि मारकों का राजा है। जैसे दो तीन मंत्री और राजा किसी स्थान पर उपस्थित हों और कोई पुष्प माला लेकर आवे तो मंत्रियों को छोड़ कर राजा को ही माला पहनावेगा, इसी प्रकार कई मारकों के उपस्थित होने पर, यदि शनि को भी मारकत्व प्राप्त हो तो वही मृत्यु-रूपी भेंट ले लेता है। इसका विचार अन्तर्दशा में करना चाहिये। मान लीजिये, राहु, गुरु, शनि, बुध—इन चारों को मारकत्व प्राप्त हो, तो राहु-राहु में मृत्यु नहीं होगी। राहु-गुरु में कोई रोग प्रारंभ हुआ तो भी राहु-गुरु में नहीं मरेगा। राहु-शनि में मृत्यु हो जावेगी—संभव है कि उसी रोग से मृत्यु हो जो बृहस्पति की अन्तर्दशा में प्रारंभ हुआ हो, परन्तु आगे मारकों के महाराजा शनि महाराज आने वाले हैं, उनके लिये बृहस्पति भेंट कायम रखेंगे, स्वयं नहीं लेंगे और शनि भेंट (मृत्यु) ले लेंगे। चाहे बुध को शनि की अपेक्षा अधिक मारकत्व प्राप्त हो, परन्तु उन तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। शनि देव ही काम समाप्त कर देंगे। यही आगे (बृहस्पति) और पीछे (बुध) को अतिक्रमण कर भेंट लेने का दृष्टान्त है।

श्री विनायक शास्त्री यही कहते हैं कि यदि शनि मारकेश न भीं हो, तो भी, यदि त्रि, षट्, आय या अष्टम का स्वामी

होकर मारकेश, मारक-स्थानगत पाप, या मारकेश-संयुक्त पाप से जितना अधिक सम्बन्ध करता हो, उतना ही अधिक प्रबल मारक वह हो जाता है। शनि आयुकारक है। आयु का अन्त ही मृत्यु है। यदि पापकत् (तृतीय, षट् एकादश या अष्टम का स्वामी) न हो तब भी ऐसा करता है। यदि पापकृत् हो तो संशय ही नहीं है।

श्री रामयत्नजी ओझा के मतानुसार शनि का नैसर्गिक पापत्व ही इस सिद्धान्त का मूल है। और वह मारकेश हो या मारकेश से सम्बन्ध करे तो और भी प्रबल मारक हो जाता है।

दशाध्याय

आरम्भो राजयोगस्य पापमारकभुक्तिषु ।
नाम्नैव स भवेद्राजा तेजोहीनोऽल्पसौख्यभाक् ॥ १ ॥

यदि पाप मारक भुक्ति में राजयोग का प्रारंभ हो तो जातक नाममात्र का राजा होता है। उसे सुख थोड़ा मिलता है और वह तेजहीन होता है।

राजयोगकर्ता ग्रह की महादशा में पापग्रह या मारक की अन्तर्दशा।

मूलश्लोक में यह नहीं कहा गया है कि राजयोगकर्ता ग्रह की महादशा हो और उसमें पाप या मारक की अन्तर्दशा हो। परन्तु पाराशरी ज्योतिष में जहाँ इस प्रकरण का उल्लेख हुआ है उस प्रकरण के अव्यवहित पूर्व केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा और त्रिकोणेश की महादशा में केन्द्रेश की अन्तर्दशा—यदि दोनों सम्बन्ध करते हों तो क्या फल होगा, और यदि दोनों सम्बन्ध न करते हों तो क्या फल होगा, इसका निर्देश है। इसलिये प्रकरण-सम्बन्ध से राजयोगकर्ता ग्रह की महादशा समझनी चाहिये। दूसरे, यदि राजयोगकर्ता ग्रह की महादशा न हो, तो पाप या मारक ग्रह की दशा में राजयोग का प्रारंभ ही कैसे होगा ? सुश्लोकशतककार ने 'पाप' और 'मारक' इन दो शब्दों का प्रयोग किया है; परन्तु मूल पाराशरी में वाक्य है—"आरंभो

राजयोगस्य भवेन्मारकभुक्तिषु ।" उद्योतकार कहते हैं कि मारक (द्वितीयेश या सप्तमेश) की अन्तर्दशा में यदि राजयोग प्रारंभ हो तो दिनानुदिन राजापने की प्रसिद्धि मात्र बढ़ती है। राज सुख, तेज, बल, वृद्धि आदि नहीं होते। सज्जनरञ्जनीकार यह विशेष लिखते हैं कि इस सिद्धान्त से स्पष्ट है कि प्रबल योग-कारक की महादशा में अन्तर्दशानाथ के पापी होने पर भी, महादशानाथ के राजयोग-फलनाशकारक रूप दोष, अन्तर्दशा-नाथ में नहीं होता।

सम्बन्धी राज्यदातुर्यः शुभस्यान्तर्दशा भवेत् ।
प्रारंभे राजयोगस्य तेजःसौख्ययशोऽर्थदा ।। २ ।।

असंबन्धि शुभस्येह समा चान्तर्दशा भवेत् ।
असम्बन्धि खलस्येह समा चान्तर्दशा क्वचित् ।। ३ ।।

राज्य देने वाले अर्थात् योगकारक ग्रह की महादशा में सम्बन्ध करने वाले-अर्थात् योगकारक से सम्बन्धित शुभग्रह की अन्तर्दशा हो तो राजयोग का प्रारंभ होने पर तेज, सुख, यश तथा धन की वृद्धि होती है। यदि योगकारक ग्रह की महा-दशा में असम्बन्धित शुभ की अन्तर्दशा हो तो सम अर्थात् विशेष शुभ नहीं होती। इसी प्रकार यदि योगकारक ग्रह से असम्ब-न्धित खल की अन्तर्दशा हो तो वह विशेष हानि नहीं पहुंचाती।

यहाँ असम्बन्धी सम फल क्यों करेगा। शुभ का तो शुभ फल ही होना चाहिये, किन्तु योगकारक ग्रह से सम्बन्ध न करने के कारण वह विशिष्ट राजयोग-फल देने में असमर्थ है। और खल को पाप-फल ही देना चाहिये, फिर उसका समफल क्यों कहा ? क्योंकि योगकारक की महादशा वर्तमान है, इस कारण उत्कृष्ट महादशा चालू रहने पर, उसकी महादशा में दुष्ट ग्रह

भी पूर्ण दुष्ट फल नहीं कर सकते। इस कारण दुष्टता में कमी होने के कारण समफल कहा।

श्री विनायक शास्त्री के मतानुसार यह विवेचन योगकारक की महादशा में योगकारक से सम्बन्धित पापग्रह तथा मारक ग्रह की अन्तर्दशाओं का है। क्योंकि विना योगकारक से सम्बन्ध हुए मारक और पापग्रह राजयोगरूप सत्फल दे नहीं सकते। इसके अतिरिक्त पाराशरी का यह श्लोक आगे के श्लोक से सम्बन्धित है और इन दोनों श्लोकों में (दशाध्याय के श्लोक ५ और ६ में (i) योगकारक से सम्बन्धित मारक की अन्तर्दशा (ii) योगकारक से सम्बन्धित पाप की अन्तर्दशा (iii) योगकारक से सम्बन्धित शुभ की अन्तर्दशा (iv) तथा योगकारकसे असम्बन्धित शुभ की अन्तर्दशा — यह चार प्रकार की अन्तर्दशाओं का फल है, जिसका संकेत पाराशरी श्लोक ६ के पूर्वार्द्ध "तत्सम्बन्धि शुभानां च तथा पुनरसंयुजाम्" से मिलता है। इसलिये श्री विनायक शास्त्री का मत नीचे दिया जाता है।

योगकारक ग्रह की महादशा में योगकारक से सम्बन्धित मारक, पाप, तथा सम्बन्धित शुभ की अन्तर्दशा।

यहाँ योगकारक से सम्बन्धित तीन प्रकार के ग्रहों को अन्तर्दशा का विवेचन है--मारक, पाप और शुभ। इसलिये योगकारक ग्रह की महादशा में सम्बन्धित मारक की अन्तर्दशा हो तो राजयोग की संभावना है। (होगा ही, ऐसा नहीं कह सकते, संभावना-मात्र है)। इस राजयोग को मारक भुक्ति विस्तार करती है—मारक भुक्ति की अपेक्षा संबंधित पाप भुक्ति विशेष विस्तार करती है और पाप भुक्ति की अपेक्षा सम्बन्धित शुभ ग्रह की अन्तर्दशा और भी विस्तार करती है। इस प्रकार सम्बन्धित तीनों ग्रहों को (i) मारक, (ii) पाप, और (iii)

शुभ की तीन श्रेणियों में रखा—इन्हें क्रमशः (i) अधम, (ii) मध्यम और (iii) उत्तम भी कहते हैं। मारक से अधिक खराब कौन होगा ? वह संभवतः राजयोग विस्तार करे ? यदि करे, तो बहुत कम। पापग्रह-मारक—जितना खराब नहीं है, इसलिए मारक की अन्तर्दशा की अपेक्षा पाप की अन्तर्दशा विशेष राज-योग-विस्तार करेगी। और शुभ, जब योगकारक से सम्बन्धित हो तो उसके विषय में तो कहना ही क्या है ? वह तो अत्यधिक राजयोग-विस्तार करेगी।

यह तीन प्रकार के ग्रहों की अन्तर्दशाओं का जो फल बताया गया है, वह तीनों ग्रह योगकारक से सम्बन्धित हों, उसी स्थिति में है। अब योगकारक से असम्बन्धित-सम्बन्ध न करने वाले—शुभ ग्रह की अन्तर्दशा का योगकारक की महादशा में क्या फल होता है, यह बताते हैं।

योगकारक ग्रह की महादशा में असम्बधित शुभग्रह की अन्तर्दशा

योगकारक की महादशा में असम्बन्धित शुभ ग्रह की अन्त-र्दशा तथा असम्बन्धित शुभ ग्रह की महादशा में योगकारक की अन्तर्दशा "सम" अर्थात् सामान्य शुभ फल देने वाली है, जिसका अभिप्राय यह है कि योगफल देने वाली नहीं है। योग कारक की महादशा में योगकारक की अन्तर्दशा योगफल देने वाली होती है—क्योंकि दोनों का सम्बन्ध होता है और दोनों सधर्मी होते हैं।

जो समग्रह हैं—न शुभ हैं, न पाप हैं—उनकी अन्तर्दशा जब योगकारक दशा में होती है, वह समग्रह जिस राशि में बैठा है, जिस भाव में हो, जिस भाव का स्वामी हो इन सब गुणों के अनुसार उसकी अन्तर्दशा होगी। असम्बन्धी शुभ की अन्तर्दशा

'सम' ग्रह की अपेक्षा अधिक शुभ फल देगी। असम्बन्धित 'सम' ग्रह की अन्तर्दशा भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

योगकारक की दशा में असम्बन्धित, मारक और पाप की अन्तर्दशा

यह अपने-अपने स्थान (भाव), राशि तथा किन स्थानों के स्वामी हैं, इसके गुणानुसार मिश्र फल देंगी।

पंडित रामयत्न जी ओझा के मतानुसार, यदि योगकारक ग्रह की महादशा में उससे सम्बन्धित मारक की अन्तर्दशा हो तो प्रारम्भ में कुछ शुभ फल प्राप्त होता है। बाद को शुभ फल नाम मात्र का ही रहता है। इसी प्रकार यदि शुभ ग्रह की दशा में पाप फल पहले हो तो यह पाप फल थोड़े दिनों तक ही रहता है, बाद में शुभ ग्रह के स्वरूपानुरूप शुभ फल की ही प्राप्ति होती है।[1]

इसको उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं। मान लीजिये चतुर्थेश पंचमेश, सप्तमेश का सम्बन्ध है। चतुर्थेश. पंचमेश के सम्बन्ध से चतुर्थेश तथा पंचमेश योगकारक हुए। इनमें से किसी की महादशा में यदि सप्तमेश की अन्तर्दशा आई तो योगकारक से सम्बन्ध होने के कारण सप्तमेश प्रारम्भ में कुछ राजयोग-फल दिखावेगा। किन्तु सप्तमेश होने से बाद में अपना दुष्ट फल ही देगा।

योगकारक यदि चार ग्रह हों—चतुर्थेश-पंचमेश एक साथ और नवमेश-दशमेश एक साथ, और चतुर्थेश-पंचमेश का नवमेश-दशमेश से कोई सम्बन्ध न हो, तो चतुर्थेश की

---

१. देखिये, 'फलित-विकास'।

महादशा में नवमेश या नवमेश की अन्तर्दशा या पंचमेश की महादशा में नवमेश या दशमेश की अन्तर्दशा, या नवमेश की महादशा में चतुर्थेश या पंचमेश की अन्तर्दशा, या दशमेश की महादशा में चतुर्थेश या पंचमेश की अन्तर्दशा, कैसी होगी ? इस सम्बन्ध में कहते हैं कि महादशानाथ से सम्बन्ध करने वाले योगकारक की अन्तर्दशा-जैसा (अर्थात् शुभ) फल देती है, वैसा ही उससे (योगकारक से) असम्वन्धित योगकारक की अन्तर्दशा देती है।

योगकारकग्रह की महिमा

योगकारक ग्रह की वहुत महिमा है। जैसे पारस अपने स्पर्श-मात्र से लोहे को भी सोना बना देता है, दुष्ट ग्रह भी कभी-कभी योगकारक के सम्बन्ध से दुष्ट भाव कुछ अंश तक त्याग कर शुभ फल दिखा जाते हैं। इस सम्बन्ध में पाराशरी के निम्नलिखित दो श्लोक वहुत महत्वपूर्ण हैं—

दशास्वपि भवेद्योग: प्रायशो योगकारिणो:।
दशाद्वयी मध्यगतस्तदयुक् शुभ कारिणाम्॥

योगकारकसम्बन्धात् पापिनोऽपिग्रहा यतः।
तत्तत् भुक्त्यनुसारेण दिशेयुर्योगजं फलम्॥

उद्योतकार इसकी टीका करते हुए कहते हैं कि राजयोग-कारक केन्द्रेश और त्रिकोणेश की जो दशाएँ—अर्थात् कर्मेश और त्रिकोणेश की जो दशाएँ—उनमें—योगकारक के सम्बन्ध से रहित शुभग्रहों की अन्तर्दशा में भी राजयोग हो जाता है। सज्जनरञ्जनीकार कहते हैं कि योगकारकों की महादशा में

यदि सम्बन्धित शुभग्रह की अन्तर्दशा होगी तो विशेष शुभ फल होगा। यदि योगकारक की महादशा में उससे असम्बन्धित शुभ ग्रह की दशा होगी तो किंचित् न्यून फल होगा।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि योगकारक की महादशा में उससे असम्बन्धित शुभ की अन्तर्दशा प्रायः शुभ फल देती है। यदि सम्बन्ध हो तो कहना ही क्या! श्री रामयत्न जी ओझा कहते हैं: "मान लीजिए, नवमेश-दशमेश का सम्बन्ध है तो नवमेश-दशमेश योगकारक हुए। इसलिये नवमेश की महादशा में—नवमेश से असम्बन्धित पंचमेश की अन्तर्दशा, या दशमेश की महादशा में उससे असम्बन्धित भी पञ्चमेश को अन्तर्दशा में शुभ फल अर्थात् भाग्योदय होगा।

इसका एक अर्थ यह और होता है कि दो योगकारक ग्रहों में यदि एक योगकारक ग्रह की महादशा हो और दूसरे योगकारक ग्रह की अन्तर्दशा हो तो—इन दोनों से सम्बन्ध-रहित अन्य शुभ ग्रह की प्रत्यन्तर्दशा में प्रायः भाग्य-योग होता है।

योगकारक से सम्बन्धित पापग्रह

उद्योतकार कहते हैं कि स्वभाव से पापी (त्रि, षट् आयेश) का योगकारक से यदि सम्बन्ध हो तो योगकारक से सम्बन्धित ग्रह की अन्तर्दशा में योगज (शुभ) फल देते है। सज्जनरञ्जनीकार का कथन है कि पापी ग्रह भी यदि योगकारक से सम्बन्ध करते हों तो उनको दशा में जब योगकारक से सम्बन्धित ग्रह की अन्तर्दशा आती है तो योगकारक के सम्बन्ध से विशिष्ट जो अन्तर्दशाधीश है, उसकी अन्तर्दशा में शुभ फल देते हैं। या योगकारक की अन्तर्दशा में योगज (योगकारक का) फल देते हैं।

श्री रामयत्न जी ओझा के मतानुसार पहले बता चुके हैं किस प्रकार केन्द्रेश त्रिकोणेश का सम्वन्ध राजयोगकारक है और पाप (त्रि, षट् आय के स्वामियों) का सम्वन्ध राजयोग-नाशक है। यदि पाप और योगकारक के योगों का योग (धन, ऋण. करने के बाद) शेष रहे तो पाप की महादशा में जब शुभ ग्रह की अन्तर्दशा आती है तो अवशिष्ट शुभ फल होता है।

इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं। मान लीजिये, नवमेश, चतुर्थेश एकादशेश का संबन्ध है, तो

नवमेश का शुभ फल ४
चतुर्थेश का शुभ फल २
एकादशेश का अशुभ फल ३

शेष ३ शुभ फल

अब यहाँ एकादशेश योगकारकों से सम्बन्ध करता है। स्वयं पापी है फिर भी योगकारकों से सम्ब्रन्ध करने से शुभ फल अवशिष्ट रहा, इस कारण एकादशेश में जब पंचमेश की या चतुर्थेश या नवमेश की अन्तर्दशा होगी तो शुभ फल होगा।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं—"योगकारक ग्रह यदि पाप ग्रह से सम्बन्ध करता है तो यदि योगकारक पापग्रहों से सम्बन्ध नहीं करता, तो जैसा शोभन फल देता वैसा तो पाप-सम्बंधित होने पर योगकारक नहीं करता, फिर भी उसका योगकारकत्व सर्वथा नष्ट नहीं हो जाता; और, जैसा पहले कहा गया है, योग कारक से सम्बन्धित मारक और पाप ग्रह की दशा में भी राजयोग प्रकट होता है, इसलिये योगकारक ग्रह की दशा में उससे सम्बन्धित पाप ग्रह योगकारक से प्रभावित होकर फल देते हैं, अर्थात् सम्ब्रन्धित होने पर पापग्रह निश्चित रूप से-योगज फल देते हैं। यदि असम्बन्धित शुभ ग्रह की अन्तर्दशा हो तो

उसमें प्रायः योगज फल देते हैं, निश्चित रूप से नहीं। यहाँ सम्बन्ध की ही महिमा है, इससे यह भी परिणाम निकला कि यदि पाप ग्रह की महादशा हो तो उससे सम्बन्धित योगकारक की अन्तर्दशा में योगज फल होता है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतों का प्रदर्शन इसलिये किया गया है कि पाठकों को सब मतों की जानकारी हो। वे किसी एक ही अर्थ को शुद्ध और अन्य अर्थों को अशुद्ध न समझ बैठें। जिन ग्रंथकर्ताओं के अर्थ दिये गये हैं, वे सभी मान्य और ज्यौतिष के उद्भट विद्वान् थे। संस्कृत की शैली ही यह है कि गागर में सागर भरते हैं और अन्य शास्त्रों की बात तो छोड़िये, वेद की एक ही ऋचा के सायण-महीधर आदि विद्वानों ने भिन्न-भिन्न अर्थ किये हैं। 'ब्रह्मसूत्र' के विभिन्न भाष्य प्रचलित हैं। श्रीमद् भगवद्गीता का किसी ने भक्तिपरक, किसी ने सन्यास-परक और अन्य विद्वानों ने कर्मयोग परक या बुद्धि योगपरक अर्थ किया है। इसलिए संस्कृत के विद्वानों को भिन्न-भिन्न अर्थों में कोई असामञ्जस्य दृष्टिगोचर नहीं होता। जो संस्कृत शास्त्रों की व्याख्याओं से परिचित नहीं हैं, उन्हें अवश्य नवीनता प्रतीत होगी।

केन्द्रत्रिकोणगो राहुरसम्बन्धी सतोऽसतः।
शुभा चान्तर्दशा तस्य राज्यकीर्तिप्रदा नृणाम् ॥ ४ ॥

उद्योतकार कहते हैं कि राहु या केतु यदि केन्द्र या त्रिकोण में हों तो उसकी महादशा में जब योगकारक की अन्तर्दशा होती है तो योगज फल देते हैं। भाव यह है कि योगकारक से सम्बन्ध न होने पर भी, शुभ स्थान में स्थिति-मात्र से राहु-केतु शुभ फल, देते हैं; किन्तु जब शुभ की अन्तर्दशा हो तो उत्कृष्ट फल,

अशुभ अन्तर्दशा हो तो हीन फल देते हैं।

सज्जनरञ्जनीकार कहते हैं कि राहु, केतु केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों और कन्या या मिथुन राशि में हो और किसी भी ग्रह से सम्बन्ध न करते हों तो अन्तर्दशानाथ के शुभ या अशुभ गुण के अनुसार राजयोग-फल देने वाले होते हैं। इस सम्बन्ध में एक वचन उपस्थित करते हैं :—

अजकर्कालिकन्यैणयुग्मस्थः केन्द्रगः फणी
पराशरमुनिः प्राह राजयोगकरः स्वयम् ॥

अर्थात् मेष, कर्क, वृश्चिक, कन्या, मकर या मिथुन में केन्द्र में राहु हो तो पराशर मुनि ने कहा है कि वह स्वयं राजयोग-कारक है।

पंडित रामयत्न जी ओझा के अनुसार तमोग्रह यदि पंचम या नवम में हो तो योगकारक से सम्बन्ध न करने पर भी योग-कारक की महादशा में अपनी अन्तर्दशा में योगज (अर्थात्) शुभ फल प्रदान करते हैं।

श्री विनायक शास्त्री के मतानुसार, यदि राहु या केतु लग्न पंचम या नवम में हो और किसी ग्रह से सम्बन्ध न करता हो तो केन्द्रेश की महादशा में इसकी अन्तर्दशा होती है या इसकी महा दशा में केन्द्रेश की अन्तर्दशा होती है तो योगफल (शुभ फल) प्राप्त होता है। अपनी (राहु या केतु जो प्रथम, पंचम या नवम में हो) महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में भी शुभ फल होता है। त्रिकोणेश की महादशा में, इसकी अन्तर्दशा में भी शुभ फल होता है।

राहु या केतु यदि व्यय, द्वितीय या केन्द्र में हो, और किसी ग्रह से सम्बन्ध न करे तो इसे सम समझना चाहिये। ऐसी

स्थिति में इसकी महादशा में अन्तर्दशानाथ के शुभाशुभ-त्वानुसार फल होगा। इसी प्रकार अन्य सम ग्रह (जो न शुभ हैं, न पाप) उनकी महादशा में अन्य अन्तर्दशाओं का फल कहना चाहिए।

सर्वे ग्रहाः स्वकीयासु दशास्वन्तर्दशासु च।
स्वं फलं नैव यच्छन्ति स्वसंबन्धिफलप्रदः॥ ५॥

असम्बन्धे तु ते सर्वे स्थानानुगुणिनः सदा।
फलमेतन्मनुष्याणां पशूनां स्वदशाफलम्॥ ६॥

दशानाथस्य सम्बन्धी यः कश्चित्खेचरो भवेत्।
तदीयान्तर्दशामध्ये स्वं फलं यच्छतीह सः॥ ७॥

यादृशः स्याद्दशानाथस्तादृशो यो हि खेचरः।
दशेशस्य सधर्मी सः शुभो वा मलिनोऽथवा॥ ८॥

स्वकीयान्तर्दशायां वा दशानाथः सधर्मिणः।
फलं यच्छति निःशेषं निश्चितं कविसंमतम्॥ ९

अर्थात्, सब ग्रह अपनी दशा में जब अपनी ही अन्तर्दशा होती है, उस समय अपना फल प्रदान नहीं करते हैं। अपने सम्बन्धी की अन्तर्दशा में फल देते हैं। असम्बन्ध होने पर स्थान (जिस स्थान में अन्तर्दशानाथ बैठा हो या जिस स्थान का अन्तर्दशानाथ स्वामी हो) के अनुसार फल देते हैं यह चाहे मनुष्य की कुण्डली हो चाहे पशु की, दशा फल देने का प्रकार है।

जो महादशानाथ का सम्बन्धी ग्रह होता है, उस सम्बन्धी

की अन्तर्दशानाथ में महादशानाथ फल प्रदान करता है। जैसा महादशानाथ (अच्छा या खराब) उसी प्रकार का (अच्छा या खराब) जब अन्तर्दशानाथ का समय (अन्तर्दशा) आता है तब महादशानाथ का फल प्राप्त होता है।

यदि महादशानाथ शुभ होगा तो उसके सदृश शुभ ग्रह उसका सधर्मी होगा। यदि महादशानाथ मलिन, दुष्ट, पाप होगा तो उसके सदृश अन्य ग्रह जो मलिन, दुष्ट या पाप होगा, उसका सधर्मी होगा। अपने सदृश अर्थात् अपने सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशानाथ के काल में महादशानाथ का देय फल प्राप्त होता है।

मूल पाराशरी में वचन आया है कि सब ग्रह अपनी महादशा में अपनी ही अन्तर्दशा में 'आत्मभावानुरूप' फल नहीं देते, किन्तु अपनी महादशा में जब अपने सम्बन्धी या सधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा होती है, उसमें आत्मभावानुरूप फल प्रदान करते हैं। आत्मभावानुरूप शब्द का अभिप्राय है—जिस राशि, जिस भाव का वह स्वामी है, जिस भाव और जिस राशि में बैठा है, जिन ग्रहों के साथ वह सम्बन्ध करता है, जिन भावों को वह देखता है, जिन ग्रहों से वह दृष्ट है, जो उसका अपना निजी स्वभाव, प्रवृत्ति, गुण, दोष या कारकत्व है, उन सब गुण-दोषों का समवाय, आत्मभावानुरूप, इस शब्द में परिगणित है।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि अपनी महादशा में, अपना अन्तर्दशा-काल जब होगा, तब पूर्ण फल आत्मभावानुरूप नहीं देगा, किन्तु अल्प फल तो देगा ही।

अपने सम्बन्धी की व्याख्या की पुनः आवश्यकता नहीं है क्योंकि सम्बन्धी चार प्रकार के ग्रह होते हैं— (i) एक स्थान में बैठे हुए; (ii) अन्योन्य स्थानों में बैठे हुए; (iii) एक ग्रह दूसरे की राशि में बैठकर उसको देखता हो। और, (iv) पर-

पर पूर्ण दृष्टि हो ।

अब सधर्मी शब्द की व्याख्या करते हैं । सधर्मी का अर्थ होता है समान धर्म वाला । यह धर्म क्या है ? योगकारकत्व, शुभत्व, समत्व, पापत्व, मारकत्व आदि ।

त्रिषडायेश परस्पर सधर्मी हैं । त्रिकोणेश परस्पर सधर्मी हैं । भावाधीश--वश (i) लग्नेश, सप्तमेश (ii) द्वितीयेश, व्ययेश (iii) तृतीयेश, एकादशेश (iv) चतुर्थेश, दशमेश (v) नवमेश, पंचमेश, (vi) षष्ठेश, अष्टमेश– यह परस्पर सधर्मी हैं ।

> दशानाथो यदा पाप: शुभोऽस्यान्तर्दशापति: ।
> व्यत्यस्तेऽपि विरोध: स्यात्तयोरन्तर्दशाफलम् ।। २३ ।।

महादशानाथ यदि पाप हो और अन्तर्दशानाथ यदि शुभ हो या महादशानाथ यदि शुभ हो और अन्तर्दशानाथ यदि पाप हो तो इनके फल में विरोध होता है ।

उद्योतकार कहते हैं कि सधर्मी या सम्बन्धी जो ग्रह नहीं हों उनकी जब अन्तर्दशा होती है तो अन्तर्दशानाथ के अनुरूप ही महादशानाथ फल देता है । सज्जन रञ्जनीकार कहते हैं कि अन्तर्दशानाथ यदि महादशानाथ का सम्बन्धी या सधर्मी न हो और विरुद्ध धर्मवाला हो—मान लीजिये, महादशानाथ धन देने वाला हो और अन्तर्दशानाथ धन का अपहारक हो तो दोनों फल--धनलाभ और धनव्यय—होते हैं । यहाँ यह विशेष है कि महादशानाथ और अन्तर्दशानाथ में जो विशेष बली हो उसका फल विशेष होता है । यदि दोनों में से एक (महादशानाथ या अन्तर्दशानाथ) में भावयोगादि से धनदत्व-धनापहरत्व दोनों विरुद्ध लक्षण हों तो दोनों का गुण और अवगुण का, नाश हो जाता है और न वह धन देता है न धनापहरण करता है । यदि

एक ही ग्रह में दो हेतु से धनदत्व और उसी ग्रह में एक हेतु से धनापहरत्व हो तो. दो गुणों में से एक गुण (२ — १ = १) रह जाता है शेष १ शुभ फल। अब यह जो महादशानाथ और अन्तर्दशानाथ, इनमें पहिले किसका फल होगा? इसका उत्तर यह है, पहले महादशानाथ का, फिर अन्तर्दशानाथ का फल होगा।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि ग्रह सम्बन्धीं होते हैं या असम्बन्धी। यहाँ असम्बन्धित तथा जो असधर्मी हैं उन्हीं ग्रहों का प्रकरण है। ग्रह (i) सधर्मी होते हैं; (ii) या विरुद्ध धर्मी (iii) या जो न सधर्मी हैं, न विरुद्ध धर्मी। सम्बन्धी की अन्तर्दशा में तो मुख्य रूप से महादशानाथ का ही फल होता है। विरुद्ध धर्मी भी अन्तर्दशानाथ हो तो भी उसमें महादशानाथ का कुछ फल होता ही है। अर्थात् विरुद्ध धर्मी की अन्तर्दशा में पूर्ण फल न होकर अल्प फल होता है। वैसे भी सम्बन्धी की अपेक्षा सधर्मी की अन्तर्दशा में गौण फल होता है। यदि असम्बन्धी भी हो और विरुद्ध धर्मी भी हो तो उसकी अन्तर्दशा में मिश्र फल होगा। योगकारकों के योगकारक, शुभों के शुभ, समों के सम, पापों के पाप, मारकों के मारक सधर्मी होते हैं। योगकारक और पाप, शुभ और पाप, योगकारक और मारक, शुभ और मारक—ये विरुद्धधर्मी हुए। अनुभयधर्मी (न सधर्मी न विरुद्ध धर्मी) योगकारक और शुभ, योगकारक और सम, शुभ और सम हुए। इसी प्रकार मारक और पाप, पाप और सम, मारक और सम—ये अनुभयधर्मी हुए। इसलिए अन्तर्दशानाथ किस प्रकार का है—विरुद्धधर्मी या अनुभयधर्मी- इत्यादि का विचार करने के बाद ही फल कहना चाहिए।

पंडित रामयत्नजी ओझा के मतानुसार, यदि महादशानाथ और अन्तर्दशानाथ, दोनों शुभ हों तो शुभ फल; दोनों पाप

फलद हो तो पाप फल होता है। एक शुभ, एक पाप हो तो तारतम्य का विचार कर मिश्र फल कहना चाहिये।'

केन्द्रनाथस्य सम्बन्धी कोणेशान्तर्दशासु वै।
शुभं दत्ते विलोमेऽपि संबन्धेतरतोऽशुभम् ॥ २४ ॥

यदि केन्द्रेश और त्रिकोणेश का सम्बन्ध हो, तो केन्द्रेश अपनी महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभ फल देता है और त्रिकोणेश अपनी महादशा में केन्द्रेश की अन्तर्दशा में शुभ फल देता है,—किन्तु इन दोनों में—केन्द्रेश—त्रिकोणेशो में—परस्पर-सम्बन्ध नहीं हो तो एक की महादशा में जब दूसरे की अन्तर्दशा होती है तो अशुभ फल ही होता है।'उद्योतकार भी यही अर्थ करते हैं। पंडित रामयत्न जी ओझा का भी यही आशय है।

परन्तु सज्जनरञ्जनीकार कहते हैं कि यदि त्रिकोणेश—साथ ही पाप-स्थान का स्वामी न हो तो त्रिकोणेश की महादशा में केन्द्रपति की अन्तर्दशा शुभ होती है—कब? जब केन्द्रेश और त्रिकोणेश में सम्बन्ध न हो तब! सम्बन्ध हो तो विशेष फल होता है। सम्बन्ध का अभाव हो तो कम फल होता है। इसी प्रकार केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा शुभ होती है। किन्तु ऐसा तभी होगा जब महादशानाथ और अन्तर्दशानाथ में दोष न हो, अर्थात् केन्द्र त्रिकोण व्यतिरिक्त उनकी दूसरी राशि अष्टस आदि पाप-स्थान में न हो। पाप स्थान के स्वामी होने से शुभता नहीं रहेगी।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि पापकृत् केन्द्रपति अपनी

---

१. देखिए, 'फलित विकास, पृष्ठ ११४।

महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभ फल देता है, यदि त्रिकोणपति भी पापकृत् न हो। यदि त्रिकोणेश भी पापकृत् हो, तो पापकृत् केन्द्रेश की महादशा में पापकृत् त्रिकोणेश की अन्तर्दशा शुभ फल नहीं देती। पापकृत् केन्द्रेश कौन है? बृहस्पति, शुक्र, बुध, चन्द्र—जो केन्द्र के साथ-साथ त्रि, षट्, आय या अष्टम का स्वामी हो ऐसा शनि या त्रि, आय का स्वामी मंगल जो केन्द्र का स्वामी भी हो। इसलिये पापकृत् केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की (यदि पापकृत् न हो तो) अन्तर्दशा में शुभ फल की सम्भावना है, यदि दोनों में सम्बन्ध न हो, तो भी। त्रिकोणेश भी पापकृत हो सकता है। कैसे? त्रिकोण का स्वामी होने के साथ-साथ यदि पाप-स्थान का भी स्वामी हो। जैसे, सिंह-लग्न के लिये पंचमेश-अष्टमेश-बृहस्पति, कुम्भ लग्न के लिये पंचमेश-अष्टमेश बुध, कन्या लग्न के लिये पंचमेश-षष्ठेश शनि या मिथुन लग्न के लिये नवमेश-अष्टमेश शनि। ऐसी दशा में जब केन्द्रेश पापकृत् हो और त्रिकोणेश भी पापकृत हो, तो केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभ फल नहीं होगा। यदि दोनों पापकृत् न हों तो त्रिकोणेश की महादशा में केन्द्रेश की अन्तर्दशा में योगफल की संभावना है, यदि त्रिकोणेश-अष्टमेश न हो। अष्टमेश के सम्बन्ध से योग-कारकत्व नष्ट हो जाता है।

शुभग्रहस्य सम्बन्धी योगकर्त्ता हि यो ग्रहः।
अस्याप्यन्तर्दशामध्ये राज्यसौख्यं भवेत् ध्रुवम्॥ २५॥

अर्थात् शुभ ग्रह का सम्बन्धी, जो योगकारक ग्रह है, उसकी अन्तर्दशा में निश्चय राज्य-सौख्य प्राप्त होता है। यदि योग-

कारक और शुभ ग्रह का सम्बन्ध नहीं होगा तो सधर्मी होने के कारण शुभ ग्रह की महादशा में योगकारक का शुभ फल तो होगा, किन्तु उतना नहीं, जितना सम्बन्ध होने से होता।

अत्यन्ताशुभद: पाप: पापमध्ये यदा भवेत्।
सम्बन्धी तु शुभो मिश्रोऽसम्बन्धी त्वशुभप्रद: ।। २६।।

पापदशानाथों की महादशा में अन्तर्दशा

यदि महादशानाथ पाप हो तो (i) दशानाथ से असम्बन्धित शुभों की अन्तर्दशा पाप फल देने वाली होती है; (ii) दशानाथ से सम्बन्धित शुभ की अन्तर्दशा मिश्र फल अर्थात् मिला-जुला फल देती है। मिला-जुला क्यों ? क्योंकि दशानाथ और अंतर्दशानाथ विरुद्ध स्वभाव के हैं।

(iii) पापदशानाथ से असंबन्धित योगकारकों की अंतर्दशा अत्यन्त पाप-फल देने वाली होती हैं।

(iv) दशानाथ से संबंधित योग कारकों की दशा ऐसा मिश्रफल देती हैं—जिसमें शुभ अधिक हो, अशुभ न्यून।

(v) पापदशानाथ की दशा में जो सम (ग्रह है—अर्थात् न शुभ है न पाप) है उसकी दशा में पापफल होता है; किन्तु उतना पाप-फल नहीं अपितु किंचित न्यून पाप।

(vi) और पाप की दशा में पाप की अंतर्दशा—दोनों दशानाथ और अंतर्दशानाथ के सधर्मी—पाप, ही होने से पाप-फल ही करती है।

यहाँ एक शंका उठती है कि पाप की दशा में शुभ की अंतर्दशा पाप-फल क्यों करती है ? इसकी व्याख्या करते हुए

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि जैसे किसी पापी राजा के अधिकार में रहने वाला सज्जन भी राजा की आज्ञानुसार ही कार्य करता है, उसकी आज्ञा के विरुद्ध कार्य नहीं करता, क्योंकि राजा के प्रतिकूल कार्य करेगा तो स्वामी की आज्ञा-पालन-रूप धर्म का भंग होगा और अपनी प्रतिष्ठा-भंग का भी भय होगा। और जो अतिसज्जन होगा वह राजा का और भी अधिक आज्ञाकारी होगा तथा अपनी प्रतिष्ठा-भंग का उसे और भी अधिक भय होगा। इसलिए सज्जन की अपेक्षा अतिसज्जन और भी अधिक रूप से (पापी) राजा की मनोवांछित प्रवृत्ति को कार्य-रूप में परिणत करेगा। इस उदाहरण में सज्जन को शुभ (ग्रह) और अतिसज्जन को योगकारक (ग्रह) समझना चाहिये। इसीलिए पाप की दशा में, शुभ के असंबंधित होने से पाप-फल होता है और (असंबंधित) योगकारक और भी अधिक पाप-फल अपनी अंतर्दशा में देता है।

जैसे किसी सज्जन का राजा से संबंध हो तो उसमें निर्भयता आ जाती है और वह राजा की मनोवृत्ति के प्रतिकूल भी, अपनी इच्छा के अनुसार अपनी मनमानी कुछ अंशों तक कर लेता है, उसी प्रकार पाप-दशानाथ से संबंधित शुभ (ग्रह) अपनी अंतर्दशा में मिश्रफल कुछ राजा के स्वभाव-गुण के अनुरूप –अर्थात् कुछ अच्छा, कुछ बुरा– मिला-जुला फल देता है। संबंधित योगकारक, संबंधित शुभ की अपेक्षा अधिक बलवान् होता है, इस कारण दशानाथ पाप होने से कुछ पाप और स्वयं अधिक बली शुभ होने के कारण, अधिक शुभ ऐसा मिला-जुला फल देता है।

एक और शंका उठती है कि पाप की दशा में (असंबंधित) शुभ की अंतर्दशा को तो पाप फल देने वाला बतलाया और सम (जो न शुभ है, न पाप है, उस) को किंचित् न्यून पाप फल देने वाला कहा, यह क्यों ? इसका कारण यही है कि शुभ

(अंतर्दशानाथ) पाप (दशानाथ) का असधर्मी है; अर्थात् विरुद्ध धर्म या विरुद्ध स्वभाव और प्रकृति के हैं इसीलिए पाप की दशा में शुभ की अंतर्दशा अनिष्ट फल देती है और सम (अंतर्दशानाथ) पाप (दशानाथ) का उतना विरुद्ध धर्मी— प्रतिकूल प्रकृति-स्वभाव वाला नहीं है, इसलिये वह किंचित न्यून पाप फल देता है।

पाप की दशा में, पाप की अंतर्दशा पाप फल दे, यह तो सामान्य तर्क-सिद्ध है, इसलिये इसकी विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

पाप फल देने वाले अंतर्दशानाथ, यदि दशानाथ से छठे आठवें, बारहवें बैठे हों तो विशेष अनिष्ट फल दिखाते हैं, तथा नीच, शत्रुक्षेत्री, अस्त हों, तो कष्ट-फल में वृद्धि करते हैं, इस साधारण नियम को नहीं भूलना चाहिये।

मारकस्य दशायां तु शुभसम्बन्धिनो भवेत्।
अन्तर्दशा तदा नैव मृत्युः पाराशरं मतम् ॥ २७ ॥

असम्बन्धिखलस्यान्तर्दशेह मरणप्रदा।
सम्बन्धिनः पुनः किंस्यादिति निश्चयमीरितम् ॥ २८ ॥

पहले बता चुके हैं कि दशानाथ अपने सम्बन्धी ग्रह की अंतर्दशा में अपना फल देता है। इस सामान्य नियम के अपवाद-स्वरूप, अर्थात् जहाँ साधारण नियम लागू नहीं होता, एक विशेष नियम बताते हैं। मारक ग्रह की यदि दशा हो और उससे संबंध रखने वाले शुभ ग्रह की अन्तर्दशा हो तो दशानाथ और अंतर्दशानाथ में सम्बन्ध रहने पर भी, उस अंतर्दशाकाल में जातक की मृत्यु नहीं होती। और यदि मारक ग्रह की दशा

हो और पाप (ग्रह) की अंतर्दशा हो तो चाहे दशानाथ और अन्तर्दशानाथ में संबंध न भी हो तो भी जातक की मृत्यु हो सकती है।

ऊपर कहा गया है कि मारक की अंतर्दशा में शुभ की अंतर्दशा मृत्यु नहीं करती। योग कारक शुभ से भी शुभ है, इस कारण यह निष्कर्ष भी निकला कि मारक की दशा में योग कारक की अंतर्दशा भी मृत्यु नहीं करती। शुभ और योग कारक शुभतर होने से यह चाहे अन्य अनिष्ट कर दें (क्योंकि पहले कह चुके हैं कि पाप की दशा में असंबंधी शुभ पाप फल देता है और असंबंधी योगकारक अत्यन्त पाप फल देता है) परन्तु जीवन-हरण अथवा मृत्यु करना शुभ ग्रह या योगकारक ग्रह के धर्म के विरुद्ध है। पापी राजा का सज्जन नौकर पापी राजा की आज्ञा से अथवा उसकी अधीनता में होने के कारक प्रजा-पीड़न आदि करदे किन्तु अपनी स्वयं के नैसर्गिक गुण, प्रकृति, स्वभाव के कारण किसी का वध (जान से मारना) न करेगा।

मारक ग्रह की दशा में यदि सम (जो न शुभ है, न पाप) की अंतर्दशा हो तो वह मारक ग्रह के गुण के अनुसार ही फल करेगा। यदि मारक ग्रह की दशा में संबंधी पापग्रह की अन्तर्दशा हो तो मृत्यु करना स्वयंसिद्ध है अर्थात् प्राण हरण करना स्वाभाविक ही है। इस सामान्य सिद्धान्त के अतिरिक्त यह विशेष सिद्धान्त इन श्लोकों में बताया गया है कि यदि मारक दशानाथ से पाप अन्तर्दशानाथ का संबंध न भी हो, तो भी मारक की दशा में पाप की अंतर्दशा प्राण हरण कर सकती है।

इस पुस्तक में 'संबंधी' और 'सधर्मी' इन दो शब्दों पर विशेष ज़ोर दिया गया है। मारक ग्रह (दशानाथ) तथा पाप

(अंतर्दशानाथ) दोनों चाहे संबंधी न हों, किन्तु सधर्मी होने के कारण एक की दशा में, दूसरे की अन्तर्दशा होने से मृत्यु-फल होता है।

शुक्रमध्ये गतो मंदः शौक्रंशुक्रोऽपि मंदगः
मांदं शुभाशुभं दत्ते विशेषेण न संशयः ।। २६ ।।

शुक्र की महादशा में जब शनि की अन्तर्दशा होती है तो शनि, शुक्र का ही फल प्रदान करता है। इसी प्रकार शनि की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा होती है तो शुक्र शनि का ही फल प्रदान करता है।

इसमें हेतु यह है कि न केवल शुक्र और शनि मित्र हैं अपितु शुक्र के दोनों लग्न—वृषभ में शनि नवमेश, पञ्चमेश होकर और तुला में चतुर्देश, पंचमेश होकर योगकारक होता है और शनि के दोनों लग्नों में—मकर में शुक्र पञ्चमेश, दशमेश होकर और कुम्भ में चतुर्थेश, नवमेश होकर योगकारक होता है। इस प्रकार एक के लग्न में दूसरा योगकारक होने से इन दोनों में विशेष सम्बन्ध है।

'उत्तरकालामृत' नामक ज्योतिष-ग्रंथ में शुक्र और शनि इन दोनों में से एक की दशा हो और दूसरे की अन्तर्दशा हो तो अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग फल का निर्देश किया है। पाठकों के लाभार्थ इस सम्बन्ध के दोनों मूलश्लोक और उनका हिन्दी में सरल अर्थ नीचे दिया जाता है :

भृग्वार्की यदि तुंगभे स्वभवने वर्गोत्तमादौ स्थितौ
तुल्यौ योगकरौ तथैव बलिनौ तौ चेन्मिथौः पाकदौ ।

भूपालो धनदोपमोऽपि सततं भिक्षाशनो निष्कल:
तत्रैकस्तु बली परस्तु विबलश्चेद्वीर्यवान् योगद: ।।

तौ द्वाप्यबलौ व्ययाष्टरिपुगौ तद्भावपौ बाऽपि तत्
तद् भावेशयुतौ तदा शुभकरौ सौख्यप्रदौ भोगदौ ।
एक: सद्भवनाधिपस्तदपरचेद्दुष्ट भावेश्वर-
स्तावप्यत्र सुयोगदावति खलौ तौ चेन्महासौख्यदौ ।।

अर्थात् शुक्र और शनि यदि अपनी उच्चराशि, स्वराशि, वर्गोत्तम आदि में हों और योग उत्पन्न करने में बली हों और इनमें एक की दशा में दूसरे की अन्तर्दशा हो तो ऐसे समय में मनुष्य चाहे राजा या कुबेर के सदृश भी हो, भिक्षुक के समान निष्क्रिय और दरिद्र हो जावेगा। किन्तु यदि शुक्र और शनि, इन दोनों में एक वीर्यवान् (बली) और दूसरा बलहीन हो तो अच्छा योग होता है।

यदि दोनों निर्बल हों, एक-दूसरे से छठे, आठवें, बारहवें हों या छठे, आठवें, बारहवें (जन्म-लग्न से) के मालिक हों, या छठे, आठवें, बारहवें के मालिक से युत हों, तो शुभ, सौख्य और भोग देने वाले होते हैं। इन दोनों में से एक अच्छे घर का मालिक हो और दूसरा दुष्ट भाव का स्वामी हो तो भी दोनों अच्छा योग देने वाले होते हैं और यदि दोनों—शुक्र और शनि—अतिखल (दु:स्थानों के स्वामी) हों तो महान् सुख देते हैं।

इत्थं तातादिभावं तु लग्नं तत्तत्प्रकल्प्य वै ।
सर्वं फलं वदेत्धीमान् मारकादि सुखादि च ।। ३० ।।

शुभ, सम, पाप, कारक, मारक आदि की व्याख्या करने के बाद कहते हैं कि भावाधीश-वश जातक के जन्म-लग्न से गणना करने पर. जातक के लिये जो शुभाशुभ विवेचन किया है, वह यदि जातक के पिता के लिये विचार करना हो तो जातक की जन्म-कुंडली में दशम स्थान को लग्न मानकर फल कहना चाहिये। माता का विचार करना हो तो चतुर्थ स्थान को लग्न मानकर यह देखना कि ग्रह किस भाव का स्वामी होता है। उदाहरण के लिये दशम स्थान पिता का हुआ तो दशम से द्वितीय और सप्तम (जन्म-लग्न से एकादश और चतुर्थ) के स्वामी पिता के लिये मारकेश हुए। यदि माता का विचार करना है तो चतुर्थ से द्वितीय और सप्तम (लग्न से पंचम और दशम) माता के लिये मारक स्थान हुए। पिता के भाई का विचार करना हो तो दशम से तृतीय, अर्थात् जन्म-लग्न से द्वादश से विचार करना उचित होगा।

पुत्र का विचार पंचम से होता है—पुत्र के भाग्य का विचार पंचम से नवम, अर्थात् जन्म-लग्न से करना। इसी प्रकार जिस रिश्तेदार—माता, पुत्र, पिता, भाई, पत्नी, साला आदि का विचार करना हो, उसका जिस भाव से विचार किया जाता है, उस भाव को लग्न मान कर उस राशि से द्वादश भाव-वश विविध विचार करने चाहियें। यह ज्योतिष की पद्धति है।

कामार्थपतिसम्बन्धी भुक्तौ परिणयं वदेत्।
शुक्रेन्दुलग्नतः कामनाथस्य च दशा यदा॥ ३१॥

सप्तमेश या द्वितीयेश की अन्तर्दशा में विवाह कहना चाहिये। सप्तम पति या पत्नी का स्थान है और द्वितीय कुटुम्ब

स्थान है, इसलिये सप्तमेश या द्वितीयेश की अन्तर्दशा में विवाह कहा। अथवा सप्तमेश या द्वितीयेश के सम्बन्धी की अन्तर्दशा में विवाह कहना चाहिये, परन्तु कब? जब लग्न से, चन्द्रमा से या शुक्र से सातवें घर के मालिक की दशा हो। हमारे अनुभव में आया है कि शुक्र की अन्तर्दशा में विवाह योग्य अवस्था हो और जातक कुमार या कुमारी हो तो विवाह हो जाता है।

कोणनाथस्य सम्बन्धी दशास्वन्तर्दशासु च।
पुत्रादीनां वदेज्जन्म सुधीर्मत्यनुसारतः॥ ३२॥

कोणनाथ अर्थात् त्रिकोण (पंचम, नवम और लग्न भी) के स्वामी से सम्बन्धित या स्वयं त्रिकोण की दशा—अन्तर्दशा में पुत्र आदि का जन्म बुद्धिमान् ज्योतिषी अपनी मति के अनुसार कहे। अर्थात् पंचम स्थान साक्षात् संतान का स्थान है। नवम स्थान पंचम से पंचम होने के कारण 'भावात् भावः'—भाव से भाव विचार करने के कारण, पुत्र-स्थान हुआ। नवम स्थान पंचम से पंचम होने के कारण पुत्र की संतान या कन्या की संतान का भी स्थान है। लग्न को क्यों लिया? क्योंकि विचारणीय भाव से षष्ठाष्टम व्यय भावाधीश उस भाव की हानि करते हैं और बिचारणीय भाव से त्रिकोण के स्वामी उस भाव की वृद्धि करते हैं। 'मति के अनुसार कहे!' इसका क्या अभिप्राय है? अर्थात् यदि जन्म-कुण्डली के अनुसार पुत्र-सन्तति विशेष मालूम होती है और यदि त्रिकोणेश जिसकी अन्तर्दशा आदि में सन्तति-प्रसव का फल कहना है, पुरुष ग्रह है तो पुत्र कहना चाहिए। यदि जन्म-कुण्डली को देखने से कन्या संतति की विशेष सम्भावना प्रतीत होती है और अन्तर्दशानाथ

स्त्री ग्रह है तो कन्या संतति कहनी चाहिए। इसके अतिरिक्त जातक की आयु का विचार कर भी इसका विचार करना चाहिये कि इसके स्वयं के संतान होगी या पौत्र-पौत्री, दौहित्र-दौहित्री के जन्म का समय प्राप्त है। मति के अनुसार यह भी विचारणीय है कि जो अविवाहित हो, विधवा या विधुर हो, जिसका पति प्रवासी हो, जिसकी स्त्री वन्ध्या या काकवन्ध्या हो, जिसका रजो-दर्शन बन्द हो चुका हो, उसकी सन्तान होना नहीं कहना।

हमारे विचार से बृहस्पति से पंचम स्थान के स्वामी या स्वयं बृहस्पति की अन्तर्दशा में भी पुत्र होता है। गोचर में भी चन्द्रमा से पंचम, नवम, यदि बृहस्पति हो या जन्म-लग्न से प्रथम, पंचम, नवम या एकादश में बृहस्पति जा रहा हो तो वह सन्तान उत्पन्न होने में सहायक होता है। यही सब-अपनी बुद्धि के अनुसार ज्योतिषी फलादेश करे, यह कहने का आशय है।

अन्तर्दशा अध्याय (गणित)

भानुचन्द्राररात्ह्वीज्यमंदवित्केतुभार्गवाः ।
जन्मर्क्षे नवशेषे तु द्विहीने स्युर्दशाधिपाः ॥ १ ॥

इन श्लोकों की बहुत संक्षेप में व्याख्या कर रहे हैं क्योंकि इस अध्याय में केवल दशा, अन्तर्दशा निकालना बताया गया है जो बहुत से ज्योतिषियों को प्रायः ज्ञात है । नवीन विषय कोई नहीं है । जिनको ज्ञात न हो वे कृपया सुगम ज्योतिष प्रवेशिका का अवलोकन करें ।

अश्विनी से जन्म नक्षत्र तक गिनना । ९ का भाग देने से जो शेष रहे उसमें से २ घटाना । शेष जो बचे उसके अनुसार ग्रह की महादशा में जन्म कहना । १ से ९ तक महादशाधिप होने का ग्रहों का क्रम निम्नलिखित है:—

१ सूर्य, २ चन्द्र, ३ मंगल, ४ राहु, ५ बृहस्पति, ६ शनि ७ बुध, ८ केतु ९ शुक्र,

रसाशानगधृत्यष्टिसमा अतिधृतिस्तथा ।
अत्यष्टिशैल कृत्यब्दाः क्रमेण कथिता बुधैः ॥ २ ॥

सूर्य के ६ वर्ष, चन्द्रमा के १०, मंगल के ७, राहु के १८, बृहस्पति के १६, शनि के १९, बुध के १७, केतु के ७ तथा

शुक्र के २० वर्ष महादशा के होते हैं।

भभुक्तं स्वदशाभ्यस्तं भभोगाप्तं समादिकम्।
गतं भोग्यं समाशुद्धं यद्वा भोग्यं समाहृतम् ।। ३ ।।

कृत्वा तु सावनं भुक्तं स्वदशाताडितं पुनः।
षष्ट्युद्धृतं समाद्यं स्याद् गतमेव न संशयः ।।४।।

इस श्लोक में जन्म के समय नक्षत्र कितना बीत चुका था और कितना शेष था, इसके आधार पर भुक्त-भोग्य महादशा निकालने का प्रकार बताया गया है। (इसके लिए 'सुगम ज्योतिष-प्रवेशिका' देखिये।)

सुश्लोकशतककार महादशा का सावन वर्ष मानते हैं। प्रचलित परिपाटी सौर वर्ष की है। सावन वर्ष ३६० दिन का होता है जबकि सौर वर्ष ३६५ दिन, ६ घन्टे ६ मिनट और ६.७ सैकेण्ड का। दक्षिण भारत में भी कुछ स्थलों में सावन वर्ष ही महादशा-अन्तर्दशा में लगाते हैं, विशेषकर केरल में। इस प्रकार साठ वर्ष की आयु में करीब ३१५ दिन या करीब साढ़े दस मास का अन्तर पड़ जाता है।

षट्त्रिंशत् दिवसं भानुर्मासयुग्मं निशाकरः।
भौमः करयुगान्घस्रान्बुधो मासत्रयं तथा ।। ५ ।।

द्वादशाढ्यं दिनं जीवः षष्ठाधिकदिनं तथा।
भृगुर्मासचतुष्कं च शनिः षड्भिर्दिनैर्विना ।। ६ ।।

राहुर्द्वादशघस्रैस्तु केतुर्भौमस्य भोगवत्।
प्रतिदण्डं ग्रहो भुंक्ते नक्षत्रं स्वं न संशयः।। ७ ।।

षड्दिनं वा ध्रुवं प्रोक्तं प्रतिदण्डं विचक्षणैः ।
स्वसमा निहतं यातं स्वं स्वं भुक्तं न संशयः ।। ८ ।।

यदि ६० घड़ी नक्षत्रमान हो तो ग्रहों की प्रति-घड़ी के हिसाब से निम्नलिखित महादशा होती है:—

सूर्य ३६ दिन; चन्द्रमा २ मास: मंगल १ मास १२ दिन; राहु ३ मास १८ दिन; बृहस्पति ३ मास ६ दिन; शनि ३ मास २४ दिन; बुध ३ मास १२ दिन; केतु १ मास १२ दिन; शुक्र ४ मास। अथवा यह कहिये कि ध्रुवा ६ दिन का है। जितने वर्ष की जिस ग्रह की महादशा हो, उन वर्षों की संख्या से गुणा करने से १ घटी के परिमाण के अनुसार महादशा आ जाती है। उदाहरण के लिए—

ध्रुवा ६×६ वर्ष, सूर्य की महादशा = ३६ दिन
६० घड़ी × ३६ दिन = २१६० दिन = ६ वर्ष ।
इसी प्रकार अन्यत्र समझना चाहिए ।

दशा दशाहता कार्या परमायुविभाजिता ।
अन्तर्दशादिकं प्रोक्तं विदुषा सर्वतः सदा ।। ९ ।।

दशा (महादशानाथ की) को दशा (अन्तर्दशानाथ की) से गुणा करें और १२० का भाग दें तो अन्तर्दशाकाल निकल आता है। उदाहरण के लिए सूर्य में चन्द्रमा की अन्तर्दशा निकालनी है। सूर्य की महादशा के ६ वर्ष होते हैं। और चन्द्रमा की महादशा के १० वर्ष होते हैं।

तो सूर्य में चन्द्र $\frac{६ \times १०}{१२०} = \frac{१}{२}$ वर्ष = छ मास है ।

दशा दशाहता यद्वा पुना रामाहता च या ।
द्युगणोऽन्तर्दशायास्तु विनायासेन जायते ।। १० ।।

दशा (महादशानाथ की) को दशा (अन्तर्दशानाथ की) से गुणा कीजिये । फिर इसको ३ से गुणा कीजिए । जो परिणाम आवे, वह अन्तर्दशा के दिन होंगे । उदाहरण के लिए सूर्य को महादशा में मंगल की अन्तर्दशा निकालनी है । सूर्य की महादशा के ६ वर्ष होते हैं, मंगल की महादशा के ७ वर्ष होते हैं, तो सूर्य में मंगल ६ × ७ × ३ = १२६ दिन = ४ महीने ६ दिन

दशा दशहता यद्वा चोद्ध्वं मासगणो भवेत् ।
अधोऽङ्कं द्युगणं त्रिघ्नं भवेदन्तर्दशाफलम् ।। ११ ।।

अथवा, दशा को दशा से गुणा कीजिये । अर्थात् महादशानाथ के वर्षों को अन्तर्दशानाथ के वर्षों से गुणा कीजिये। अन्तिम संख्या को तीन से गुणा करने पर दिन । पहले की संख्या मास । उदाहरण—राहु में बृहस्पति की अन्तर्दशा निकालनी है राहु की महादशा १८ वर्ष की होती है, बृहस्पति की १६ वर्ष । तो राहु में बृहस्पति की अन्तर्दशा—

१८ × १६ = २८८ अन्तिम संख्या ८ को ३ से गुणा किया = २४ दिन । पहली संख्या २८ मास = कुल २८ मास २४ दिन अथवा २ वर्ष ४ मास २४ दिन ।

समाध्रुवा रामहता यद्ध्रुवा तत्समाहता ।
तन्मध्येऽन्तर्दशा तस्य विनायासेन जायते ।। १२ ।।

अर्थात्, महादशानाथ और अन्तर्दशानाथ के गुणनफल को ३ से गुणा कीजिये । जो गुणनफल आवे वह अन्तर्दशा के दिन

होंगे। उदाहरण के लिये—शनि की महादशा में केतु की अन्तर्दशा निकालनी है। शनि की महादशा १९ वर्ष की होती है। केतु की ७ वर्ष। तो शनि में केतु—

=१९×७×३=३९९ दिन

३९९ में ३६० को भाग दिया क्योंकि इनमें ३६० दिन का वर्ष माना है तो १ वर्ष ३९ दिन, अर्थात् १ वर्ष १ मास ९ दिन।

कृत्वा चान्तर्दशापिण्डं परमायुविभाजितम्।
ध्रुवं समाहतं यस्य तस्य स्याद्विदशाफलम् ॥ १६॥

इसमें प्रत्यन्तर्दशा निकालने का प्रकार बताया गया है। मान लीजिये, शुक्र की महादशा में, सूर्य की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर निकालना है। तो सर्वप्रथम ऊपर कहे गये प्रकारों में से किसी भी प्रकार से शुक्र की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा निकालिये। यह आई १ वर्ष की। इसका नाम हुआ अन्तर्दशापिण्ड=१२ मास। इसको जिस ग्रह की प्रत्यन्तर्दशा निकालनी है उसके वर्षों से (महादशा वर्षों से) गुणा कर १२० का भाग दीजिये— $\frac{१२(मास)\times १०}{१२०}$ = १ मास। चन्द्रमा की प्रत्यन्तर्दशा का एक अन्य उदाहरण लीजिये। सूर्य की दशा में, चन्द्रमा की अन्तर्दशा में राहु की प्रत्यन्तर्दशा निकालनी है। सूर्य में चन्द्रमा की अन्तर्दशा=६ मास। राहु की महादशा १८ वर्ष की होती है। इसलिये ६ को १८ से गुणा कर १२० का भाग दीजिये—

$\frac{६\times १८}{१२०}$ मास=२७ दिन, यह सूर्य की महा-

दशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा में राहु की प्रत्यन्तर्दशा हुई। यदि पूरे दिन के बाद कुछ भिन्न बच जावे तो ६० घड़ी से गुणा कर घड़ी बना लीजिये।

हम प्रत्यन्तर्दशा निकालने का एक अन्य सुगम उपाय बताते हैं। सूर्य की महादशा ६ वर्ष, चन्द्रमा की महादशा १० वर्ष, राहुकी महादशा १८ वर्ष। ६, १०, १८ को गुणा कर ४० का भाग दीजिये $= \frac{६ \times १० \times १८}{४०} =$ २७ दिन

यह सूर्य की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा में राहु की प्रत्यन्तर्दशा हुई।

> **कवेरन्तर्दशा खेटवर्षषष्ठांशमुच्यते।**
> **दशानाथदिनैरूना शने राहोर्विदो गुरुः॥ १४॥**
>
> **इन्दोरर्धितशौक्री स्याद्राहुत्र्यंशो रवेर्भवेत्।**
> **दशानाथदिनैर्युक्तमिदं केतोः कुजस्य च॥ १५॥**
>
> **घट्या शुद्धं भभोगं तु भयातं गुणयेत्तत्।**
> **पलानि तैर्युतोनं तत्स्पष्टमूनेऽधिकेऽखिले॥ १६॥**
>
> **पुनस्तस्यैव कृत्वा तु पलैः स्वर्णं विलोमतः।**
> **इदं तु सावनं ज्ञेयं विनायासेन जायते॥ १७॥**
>
> **खाङ्गनिघ्नं भयातं च भभोगोद्धृतमेव तत्।**
> **सावनं तेन भुक्ताद्यं दशायाः परिकल्पयेत्॥ १८॥**

इसमें प्रथम अन्तर्दशा निकालना बताया गया है। मान लीजिये, चन्द्रमा की महादशा में अन्तर्दशा निकालनी है तो चन्द्रमा की महादशा का छठा हिस्सा अर्थात् १० वर्ष का छठा

हिस्सा=१ वर्ष ८ मास शुक्र की अन्तर्दशा हुई। चन्द्रमा के दस वर्ष होते हैं। १० को ३ से गुणा किया=३० दिन, शुक्र की अन्तर्दशा में से कम किये तो १ वर्ष ७ मास यह शनि की अन्तर्दशा हुई। शनि की अन्तर्दशा में से १ मास कम किया तो १ वर्ष ६ मास राहु की अन्तर्दशा हुई। राहु की अन्तर्दशा में से १ मास कम किया तो बुध की अन्तर्दशा १ वर्ष ५ मास हुई। इसमें से १ मास कम किया तो १ वर्ष ४ मास बृहस्पति की अन्तर्दशा हुई। चन्द्रमा की अन्तर्दशा शुक्र की आधी अर्थात् १ वर्ष ८ मास की आधी=१० मास हुई। सूर्य की अन्तर्दशा राहु की अन्तर्दशा १ वर्ष ६ मास की तिहाई=६ मास। मंगल की अन्तर्दशा के लिये सूर्य की अन्तर्दशा में एक मास जोड़े=७ मास। जो मंगल की अन्त- र्दशा वही केतु की=७ मास।

यहां १ मास स्थान-स्थान पर क्यों घटाये-जोड़े क्योंकि चन्द्रमा की महादशा १० वर्ष को ३ से गुणा करने पर ३० दिन= १ मास आया।

शुक्र की महादशा में २०×३=६० दिन =२ मास घटावेंगे। इसी प्रकार अन्यत्र समझना चाहिये।

इसके बाद भभोग-भयात से जन्म के समय भोग्य निकालने का प्रकार बताया है—जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है।

आयुर्दायाध्यायः

आदन्तवर्षमल्पायुरावेदाङ्गैस्तु मध्यमम् ।
ऊर्ध्वं तदस्तु दीर्घायुरिति केऽपि जगुर्बुधाः ।। १ ।।

चत्वारिंशत्समाऽशीतिपूर्णाब्दैरायुषो भवेत् ।
अल्पं मध्यं तदा दीर्घं पाराशर्यं जगुर्बुधाः ।।२।।

वर्गाष्टकभवं चायुर्होरापाराशरीयकम् ।
तत्रारिष्टं तथा चेष्टं विलोक्य प्रबलं वदेत् ।।३।।

रणे रोगे तथोत्पाते यदारिष्टदशा भवेत् ।
तदा मृत्युर्न सन्देहोऽरिष्टायां तत्र येऽपि च ।।४।।

जन्मकाले ग्रहो यादृक् दशावेशेऽपि तादृशः ।
यथोक्तं तत्फलं ज्ञेयं मिश्रैर्मिश्रफलं वदेत् ।।५।।

पंचतिथ्यः कुरामाश्च खगुणाश्च दिनादयः ।।
समाहता समायुक्तास्तैस्ततः स्याद्दशाभवः ।।६।।

तत्काले ग्रहभावादि साधयेच्चाष्टवर्गकम् ।
द्विरुत्तमे वरं बोध्यं द्विः पापेऽरिष्टकृत् भवेत् ।।७।।

देशकालानुसारेण कुलजात्यनुसारतः ।
निमित्तादिवशाच्चापि ह्रासवृद्धी फले वदेत् ।।८।।

कलौ पापफलं पूर्णं शुभोत्थं पादतो वदेत् ।
पापीयसामपि तथा चेतरेषां विलोमतः ॥६॥

कुछ लोगों के मत से, ३२ वर्ष तक अल्पायु, ६४ वर्ष तक मध्यायु और उसके बाद पूर्णायु है, परन्तु पाराशरी ज्योतिष के विद्वानों के अनुसार ४० वर्ष तक अल्पायु ८० वर्ष तक मध्यायु और उसके ऊपर दीर्घायु होती है। दशा अन्तर्दशा के अतिरिक्त अष्टक वर्ग भी बनाना चाहिये और उसके अनुसार भी शुभ तथा अशुभ काल देखकर फल कहना उचित है। रण, रोग, उत्पात के समय यदि अरिष्ट दशा हो तो ऐसे समय मृत्यु की संभावना रहती है। जन्म-काल में यदि ग्रह बलवान् है और दशा (या अन्तर्दशा) प्रवेश के समय, या जब दशा-अन्तर्दशा उपस्थित है, बलवान् हो तो अच्छा फल होता है। किन्तु जन्म-कुण्डली में ग्रह बलहीन और दुष्ट आदि दोषों से युक्त हो तो पूर्ण अशुभ फल करता है। यदि जन्म-कुण्डली की स्थिति और दशा-प्रवेश के समय—इन दोनों स्थितियों में एक में अच्छा और दूसरे में खराब, इस प्रकार भिन्न स्थिति हो तो मिश्रित फल होता है। दशा-प्रवेश के समय भी अष्टकवर्ग बनाकर देखना चाहिये। फलादेश कहते समय देश, काल, कुल जाति के अनुसार तथा निमित्त (शकुन, किसी वस्तु पर अन्य वस्तु का निर्भर होना) आदि के कारण फल में ह्रास वृद्धि होती है। कलियुग में पाप-फल पूर्ण होता है और शुभ फल एक चौथाई। १-६ ॥

सावन वर्ष को सौर वर्ष में परिवर्तित करना बताते हैं। सावन वर्ष ३६० दिन का होता है। इसमें पांच दिन (पंच) पन्द्रह घड़ी (तिथ्यः) इकत्तीस पल (कुरामा) तीस विपल (खगुण) जोड़ने से सौर वर्ष हो जाता है अर्थात् सौर वर्ष ३६५ दिन १५ घड़ी ३१ पल ३० विपल का होता है। यह सौर वर्ष

का मान सूर्य सिद्धांत के अनुसार है। वर्तमान दृक् गणितानुसार ३६५ दिन ६ घण्टे ९ मिनिट ९.७ सेकेण्ड का सौर वर्ष मानते हैं। सावन वर्ष को सौर कर महादशा अन्तर्दशा कितनी होगी इस का प्रकार बताया है।

ग्रंथोऽयं ख्यातिमायातु यशस्वी चास्य पाठकः।
श्रियं हि जगतामीशो दद्यात्गौरीसुतस्तयोः ॥१०॥

भारद्वाजकुले वामदेवो देव इवापरः।
होलस्तत्कुलजो जातः तत्सुतौ द्वौ बभूवतुः ॥११॥

उदयी भैरवश्चापि तदग्र्यस्य सुतास्त्रयः।
दऊश्च तिलकश्चापि गोवर्धन इति स्मृताः ॥१२॥

तिलकस्य कुले शुक्लः शिवगुलामेति विश्रुतः।
तत्सुतो मिट्ठनो येन कृतं पाराशरं स्फुटम् ॥१३॥

इसमें ग्रंथकार (सुश्लोकशतककार) का परिचय है। भारद्वाज-कुल में वामदेव नाम (वामदेव भगवान् शंकर को भी कहते हैं इसलिये मानों दूसरे साक्षात् शंकर ही) के उत्पन्न हुए। उनके कुल में होल हुए। उनके दो पुत्र हुए। उदयी और भैरव। उनमें बड़े (भाई) के तीन पुत्र हुए। दऊ, तिलक और गोवर्द्धन। तिलक के कुल में शिवगुलाम शुक्ल हुए। इनके पुत्र मिट्ठन ने यह पाराशरी फलित ज्योतिष के सिद्धान्तों को स्पष्टता से वर्णन किया।

इस सुश्लोकशतक में फलित का निर्णय (शुभ या अशुभ दशा या अन्तर्दशा कैसी जावेंगी इसका निर्णय) भावेश की शुभता या अशुभता पर किया गया है। पिछले अध्यायों में इसकी विशद व्याख्याएँ की जा चुकी हैं, जिससे पाठकों क

विभिन्न मतों से परिचय हो जावे। अब उनका ही सारांश—क्या-क्या मत हैं—नीचे दिया जाता है।

विभिन्न मत

लग्नेश

* (१) लग्नेश सदैव शुभ होता है।

*(२) लानेश यदि अष्टमेश हो तो भी शुभ होता है।

(३) लग्नेश यदि षष्ठेश हो तो किंचित् दोष उसमें आ जाता है।

(४) लग्नेश यदि द्वादशेश हो तो किंचित दोषयुक्त हो जाता है।

(५) लग्नेश चाहे शुभ ग्रह हो किन्तु निकृष्ट स्थान का भी स्वामी हो तो कुछ पाप-फल उसमें आ जाता है।

लग्नेश के विषय में यह पाँच मत हैं। नं० (१) और (२)-सर्वमान्य हैं।

द्वितीयेश तथा व्ययेश

* (१) यह स्वयं न शुभ होते हैं, न पाप। जैसी इनकी अन्य राशि (सूर्य-चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य ग्रहों की दो-दो राशियाँ होती हैं) उनके स्वामित्व के अनुसार—तथा जैसे ग्रह (शुभ या पाप, स्थानाधीशवश) के अनुसार ये बैठे हों वैसा फल देते हैं किन्तु द्वितीयेश तथा व्ययेश —मारक भी होते हैं इसमें मत विभिन्नता नहीं है।

त्रिकोणेश

* (१) त्रिकोणेश सदैव शुभ होते हैं।

* (२) त्रिकोणेश यदि अष्टमेश भी हो तो दोष-युक्त हो

जाता है ।

*(३) त्रिकोणेश यदि अष्टमेश भी हो और पंचम में बैठा हो तो पाप नहीं होता ।

*(४) त्रिकोणेश यदि व्ययेश भी हो तो शुभ ही रहता है ।

*(५) त्रिकोणेश यदि द्वितीयेश हो तो मारक भी हो जाता है, किन्तु भाग्योदयकारकता भी उसमें रहती है ।

*(६) त्रिकोणेश यदि केन्द्रेश भी हो तो योगकारक हो जाता है ।

*(७) त्रिकोणेश यदि षष्ठेश भी हो तो दोषयुक्त हो जाता है किन्तु यदि पंचम में बैठा हो तो दोषयुक्त नहीं होता । ये सात सिद्धांत हैं । नं० १ और ६ सर्वमान्य हैं अन्य मतों में विभिन्नता है ।

केन्द्रेश

(१) शुभ ग्रह केन्द्र के स्वामी हों तो शुभ, पाप ग्रह केन्द्र के स्वामी हों तो पाप । किंतु सप्तमेश सदैव मारक ।

*(२) शुभ ग्रह यदि केन्द्र के स्वामी हों तो शुभ नहीं होते; पाप ग्रह केन्द्र के स्वामी हों तो अशुभ नहीं होते किन्तु सप्तमेश मारक होता है ।

(३) शुभ ग्रह यदि केन्द्र के स्वामी हों तो पाप-फल देते हैं पाप ग्रह केन्द्र के स्वामी हों तो शुभ फल देते हैं किंतु सप्तमेश मारक होता है ।

केन्द्रेश के सम्बन्ध में यह विभिन्न तीन मत हैं ।

अष्टमेश

*(१) अष्टमेश घोर पापी होता है, किन्तु अष्टमेश यदि लग्नेश हो तो पापी नहीं होता ।

(२) सूर्य और चन्द्रमा यदि अष्टमेश हों तो उनको अष्टमेश

होने का दोष नहीं होता।

(३) सूर्य या चन्द्रमा अष्टमेश होकर अष्टम में बैठे हों तो दोष नहीं होता।

(४) सूर्य या चन्द्रमा यदि अष्टमेश हों तो पूर्ण रूप से दोषयुक्त नहीं होते, न पूर्ण रूप से दोषहीन होते हैं। किंचित दोषयुक्त होते हैं।

(५) यदि त्रिकोणेश अष्टमेश भी हो और अष्टम में बैठा हो तो दोषयुक्त नहीं होता, किन्तु शुभ होता है। ये पाँच मत हैं। नं० १ सर्वमान्य है, अन्य मतों में विभिन्नता है।

त्रिषडायाधीश

१. तीसरे, छठे तथा ग्यारहवें के मालिक पापी होते हैं।

२. तीसरे छठे या ग्यारहवें का मालिक शुभ ग्रह हो तो शुभ पाप ग्रह हो तो पाप।

३. तृतीय का मालिक तृतीय में हो तो शभ षष्ठ का मालिक षष्ठ में हो तो शुभ, ग्यारहवें का मालिक ग्यारहवें में हो तो शुभ। चाहे वह शुभ ग्रह हो या पाप ग्रह।

ये तीन मत हैं।

ऊपर जो विभिन्न मत दिये गये हैं सभी उद्‌भट विद्वानों के मत हैं। इन विद्वानों में कौन किस से बढ़कर है, यह कहना कठिन है। फिर भी जो मत हमें ग्राह्य हैं उनमें हमने * का चिह्न लगा दिया है।

शतमंजरी राजयोग

लग्नात्सप्तमगे चन्द्रे चन्द्रादष्टमगे रवौ ।
गुरुणा स्थीयते लग्ने कुसुमो योग ईरितः ॥

कुसुमे योगसंजातो भूपालो बन्धुरक्षकः ।
विनीतस्वग्रामतनुतः विंशत्यात्परमं तु षट् ॥१॥

"अर्थात् यदि लग्न से सप्तम चन्द्रमा हो, चन्द्रमा से अष्टम (अर्थात् जन्म-लग्न से द्वितीय) सूर्य हो और लग्न में बृहस्पति हो तो २६ वें वर्ष में भाग्योदय होता है । इसका नाम 'कुसुम योग' है ।" राजयोग का विचार करते समय अन्य ग्रहों की स्थिति भी देख लेनी चाहिये । यदि कर्क लग्न हो और लग्न में बृहस्पति, सप्तम में चन्द्र हो तो भाग्येश लग्नेश का सम्बन्ध होगा । भाग्येश उच्च होगा तथा सूर्य भी स्वगृही होगा । इसलिये कर्क लग्न वाले को यह ग्रह स्थिति जितनी फलद होगी, उतनी अन्य लग्न वाले को नहीं, ऐसा हमारा विचार है ।

बन्धुकर्मगृहाधीशैरन्योन्यक्षेत्रमाश्रितैः ।
लग्नेशे स्वोच्चराशिस्थे चापयोग इतीरितः ॥

नृपः स वीरो विख्यातो सेनाधिक्यो धनाधिपः ।
कुरुते कार्मुके जातो द्वादशाब्दात् परं मुनिः ॥२॥ ।

इस श्लोक के दो दो अर्थ हो सकते हैं। (१) "यदि चतुर्थ और दशम स्थानों के स्वामी एक-दूसरे के स्थान में हों, अर्थात् चतुर्थेश दशम में और दशमेश चतुर्थ में तथा लग्नेश अपनी उच्च राशि मे तो 'चाप योग' होता है। ऐसा व्यक्ति वीर, विख्यात, सेनानी होता है और १९ वें वर्ष के बाद उसका भाग्योदय होता है। दूसरा अर्थ एक टीकाकार ने किया है (२) "यदि धनु लग्न में जन्म हो और उपयुंक्त ग्रह-स्थिति हो तो ऐसा होता है"। चतुर्थ पंक्ति में कार्मुके जातो शब्द आया है इसका अर्थ उन्होंने किया है, "यदि धनु लग्न में जन्म हो" हमारे विचार से 'कार्मुके जातो का एतावन्मात्र अर्थ है, "यदि चाप योग में जन्म हो"। क्योंकि 'चाप' और 'कार्मुक' का एक ही अर्थ है।

कर्मेशस्थानगते राहुः कर्मेशे लग्नसंयुते।
लग्नेशे भाग्यराशिस्थे योगश्चक्रमुदीरितः॥

बहुदेशाधिनाथस्य सेनानी नृपवन्दितः।
चक्रयोगे तु संजात एकविंशतिवत्सरात्॥ ३॥

अर्थात् "दशम स्थान में राहु हो, दशमेश लग्न में हो। लग्नेश नवम में हो तो चक्र नाम का योग होता है। ऐसा जातक नृप द्वारा सत्कृत सेनानी, उच्चपदाधीश होता है।" यह योग मीनलग्न, या कन्या लग्न में घटित नहीं हो सकता क्योंकि लग्नेश और कर्मेश एक ही ग्रह हो जावेगा। वह दशम में बैठ सकता है या नवम में। दोनों स्थानों पर नहीं बैठ सकता। सिंह लग्न में भी कर्मेश शुक्र लग्न में और लग्नेश सूर्य नवम में बैठे, यह नहीं हो सकता, क्योंकि शुक्र सूर्य से ४८ अंश से अधिक दूरी पर नहीं जा सकता।

कर्मेशस्थांशराशीशे कर्मस्थानसमाश्रिते ।
लग्नाधिपेन संयुक्ते नागयोग इतीरितः ॥

विद्याविनयसम्पन्नो नृपपूज्यो धनाधिप : ।
नागयोगे तु संजातो षोडशाब्दात् परत्रयम् ॥४॥

अर्थात्—' दशमेश जिस नवांश में हो, उस नवांश का स्वामी लग्नेश के साथ यदि दशम स्थान में हो, तो जातक विद्या एवं विनय से सम्पन्न नृप-पूज्य तथा धनी होता है । यह 'नाग-योग' कहलाता है । १९ वें वर्ष के बाद भाग्य-योग होता है ।" एक टीकाकार अर्थ करते हैं—"दशमस्थान का स्वामी जिस राशि में हो उसका स्वामी यदि दशम स्थान में लग्नेश के साथ हो तो 'नाग-योग' होता है ।" किन्तु मूल संस्कृत मे 'कर्मेशस्थ अंश 'राशीशे' शब्द आया है । 'अंश' का अर्थ ज्योतिष-परिभाषा में 'नवांश' किया जाता है ।

लग्नाद्भाग्यगते जीवे तल्लाभे तदधीश्वरे ।
शुभचन्द्रेण संयुक्ते नाभियोग इतीरितः ॥

नाभियोगे तु संजातो विद्यावान्धनवान्सुखी ।
राजपूज्योऽभिमानी च एकविंशत्सुवत्सरे ॥५॥

अर्थात्—"यदि लग्न-स्थान से नवम में बृहस्पति हो, और उससे ग्यारहवें (अर्थात् लग्न से सप्तम) स्थान में नवमेश, शुभ चन्द्र से युक्त हो, तो 'नाभियोग' होता है। इस योग में उत्पन्न जातक विद्यावान्, धनवान्, सुखी, राज-पूज्य और अभिमानी होता है और २१ वें वर्ष में उसका भाग्योदय होता है ।"

हमारे विचार से कन्या लग्न की कुण्डली में यह योग विशेष फलद होगा, क्योंकि नवमेश सप्तम में उच्च राशि में स्थित होगा। मेष और कर्क लग्न में यह घटित नहीं हो सकता, क्योंकि स्वयं बृहस्पति के नवम में बैठने के कारण, नवमेश सप्तम में नहीं बैठ सकता।

लाभेशे परमोच्चस्थे धनराशिसमन्विते।
राज्यनाथेन संदृष्टे भेरियोगमुदाहृतः॥

भेरियोगे वाद्यघोर्षमत्तेभानां समन्वितः।
वाजीनां सहघौषैश्च सतां संघाश्रितः सदा॥

त्रिंशद्वर्षात्परं वेद संख्याब्दं च इदं फलम्॥ ६॥

अर्थात् "यदि लाभेश परमोच्च होकर द्वितीय स्थान में हो और दशमेश से दृष्ट हो तो 'भेरियोग' होता है। ऐसे जातक के अनेक हाथी-घोड़े होते हैं। सज्जन उसके आश्रित रहते हैं। ३४ वें वर्ष से उसका भाग्योदय होता है।"

केवल सिंह लग्न की कुण्डली में लाभेश उच्च होकर द्वितीय स्थान में बैठ सकता है। यहाँ लिखा है कि लाभेश परमोच्च में होना चाहिये। बुध कन्या राशि के १५ अंश पर परमोच्च होता है। सिंह लग्न होने से दशमेश शुक्र होगा, शुक्र कभी बुध से सप्तम नहीं हो सकता। शुक्र केवल द्वादश में बैठकर तृतीय दृष्टि से बुध को देख सकता है।

लग्नाद् भाग्याधिपो ऽयस्य चन्द्रभाग्यं गतो यदि।
भाग्यस्थानगते शुक्रे पद्मयोग उदीरितः॥

परनृपवन्दितपादो भूपालः पुण्यकृत्सदा ।
श्रीपद्मयोगे संजातः पञ्चाब्दात्परतस्तथा ।।७।।

अर्थात् "लग्न से नवम स्थान का स्वामी यदि चन्द्रमा से नवम स्थान पर हो और शुक्र जन्म लग्न से नवम में हो तो पद्म योग होता है । ऐसा मनुष्य बहुत प्रतिष्ठित पद प्राप्त करता है । ऐसे जातक की ५ वर्ष की अवस्था बाद ही भाग्योदय का समय प्रारम्भ हो जाता है ।

विलग्ननाथस्थितराशिनाथः केन्द्रत्रिकोणोपगतो यदि स्यात् ।
मूलत्रिकोणे अथवा स्वगेहे योगो भवेत्पर्वतनाम पूर्वम् ।।

ग्रामपुराणामीशो लोके श्रुतवान्युगान्तकीर्तिः स्यात् ।
पर्वतयोगे जातो पञ्चत्रिंशत्परं दशाधिक्यम् ।। ८।।

अर्थात् "जिस राशि में लग्नेश बैठा हो, उस राशि का स्वामी यदि अपनी राशि या अपनी मूल त्रिकोण राशि में बैठकर केन्द्र या त्रिकोण में बैठा हो, तो 'पर्वत' नाम का योग होता है । इस योग का फल है कि ४५ वें वर्ष में भाग्योदय होता है । जातक भू-सम्पत्ति प्राप्त करता है; इस समय मनुष्य विशेष अधिकार-सम्पन्न होकर यश प्राप्त करता है ।"

स्वराशि, मूलत्रिकोण राशि आदि समझने के लिये हमारी लिखी 'सुगमज्योतिषप्रवेशिका' देखिये ।

विलग्ननाथस्थितराशिनाथस्तद्राशिनाथो यदि तुंगयुक्तः ।
निशाकरात्केन्द्रगतो यदि स्यात् योगो महाकालसुसौख्ययुक्तः॥९॥

अर्थात् "लग्नेश जिस राशि में हो; उस राशि का स्वामी जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी यदि अपनी उच्च राशि में स्थित होकर चन्द्रमा से केन्द्र में हो तो 'महाकाल योग' होता है। ऐसा जातक अच्छा सुख प्राप्त करता है।" एक टीकाकार इसे दो पृथक् योगों में बाँटते हैं। उनके अनुसार, लग्नेश जिस राशि में हो, उसका स्वामी जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी (I) अपनी उच्च राशि में हो तो एक योग; (II) यदि चन्द्रमा से केन्द्र में हो तो दूसरा योग।" दोनों का फल एक ही है। इनके अनुसार, "महाकाल योग वाले व्यक्ति का २८ वें वर्ष में भाग्योदय होना है।"

लग्नभाग्याधिपे केन्द्रे राज्यनाथेन संयुते ।
सुरार्चितेन संदृष्टे स श्रीयोग इतिश्रुतः ॥१०॥

अर्थात् "लग्न से नवम स्थान के स्वामी, लग्न से दशम स्थान के स्वामी के साथ यदि केन्द्र में हो और उन पर यदि बृहस्पति की पूर्ण दृष्टि हो तो 'श्रीयोग' होता है।" इस योग वाला जातक ६४ वें वर्ष में बहुत उच्च अधिकार-पद को प्राप्त करता है। हमारे विचार से नवमेश या दशमेश की महादशा बहुत उत्तम जावेगी। और अन्य ग्रहों की महादशा में नवमेश या दशमेश की अन्तर्दशा भी शुभ फल दिखलायेगी। किन्तु यदि अष्टमेश और एकादशेश, दोनों का नवमेश-दशमेश से योग हो तो यह योग अत्यधिक निर्बल हो जावेगा।

लाभेशे परमोच्चस्थे भृगुपुत्रेण संयुते ।
तदीशे केन्द्रभावस्थे मृदंगो नाम सञ्ज्ञितः ॥११॥

अर्थात् "लाभेश यदि परमोच्च हो (जिस राशि, जिस अंश पर परम उच्च होता है, (उस अंश पर) और शुक्र के साथ हो, तथा लाभेश और शुक्र जिस राशि में हों, उसका स्वामी लग्न से केन्द्र में हो तो 'मृदंग' योग होता है।" ऐसे जातक का भाग्योदय ४० वर्ष की अवस्था के बाद होता है।

वर्गोत्तमगते लग्ने नाथे शुभसमन्विते ।
लाभाधिपेन संदृष्टे योगः शारदसंज्ञकः ॥१२॥

इस श्लोक के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) "यदि लग्न वर्गोत्तम हो, लग्नेश लग्न में शुभग्रह के साथ हो और लाभाधिप से संदृष्ट हो (देखा जाता हो);" (२) यदि लग्न वर्गोत्तम हो और लग्नेश शुभग्रह से युक्त हो तथा लाभेश से देखा जाता हो। ऐसा योग 'शारद' कहलाता है।" इस योग में जन्म लेने वाले व्यक्ति का ५४ वें वर्ष में प्रबल भाग्योदय होता है।

एक टीकाकार ने अर्थ किया है—"यदि लग्न-स्वामी अपनी मूल त्रिकोण राशि में हो या अपनी उच्च राशि में शुभग्रह के साथ हो"···इत्यादि; परन्तु इस श्लोक में मूल त्रिकोण, या उच्च आदि कोई शब्द आया नहीं है। इसलिये इस अर्थ से हम सहमत नहीं हैं। ज्योतिष शास्त्र में वर्गोत्तम लग्न की बहुत प्रशंसा की गई है। वर्गोत्तम लग्न उसे कहते हैं जब राशि और नवांश एक ही हो—यथा मेष लग्न, मेष नवांश, वृषभ लग्न वृषभ नवांश इत्यादि।

लाभेशधर्मेशधनेश्वराणा—
मेकोऽपि चन्द्रग्रहकेन्द्रवर्ती ।
स्वपुत्रलाभाधिपतिर्गुरुश्चेद्
अखंडसाम्राज्यपतित्वमेति ॥
वर्षे षोडश सम्प्राप्ते
राजयोगं विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

अर्थात्—"यदि लाभेश, नवमेश या द्वितीयेश, इनमें से कोई भी ग्रह चन्द्रमा से केन्द्र में हो, और यदि बृहस्पति द्वितीय, नवम या लाभ का मालिक हो तो १६ वर्ष की अवस्था के बाद प्रबल भाग्योदय होता है।" यद्यपि श्लोक में यह नहीं कहा गया है, परन्तु हमारे विचार से, बृहस्पति द्वितीय, पंचम या लाभ का स्वामी होकर चन्द्रमा से केन्द्र में होगा, तभी यह योग-विशेष बलवान् होगा, क्योंकि 'गज-केसरी' योग भी बन जावेगा।

धर्मेशसंयुक्तनवांशनाथो
जीवेन युक्तो धनराशिसंस्थः ।
बन्धौ च भाग्याधिपतिर्गुरुश्चेद्
अखंडसाम्राज्यपतित्वमेति ॥१४॥

अर्थात्—"नवमेश जिस नवांश में हो, उस नवांश का स्वामी बृहस्पति-सहित यदि धन-स्थान में हो और चतुर्थ स्थान में यदि भाग्येश हो तो बहुत विशेष भाग्योदय योग है।" मूल श्लोक में बृहस्पति को धन-स्थान में कहा है और पुनः बृहस्पति को चतुर्थ स्थान में कहा है, यह हो नहीं सकता।

राहुस्थितस्याधिपतिस्त्रिकोणे
स्वोच्चंगते भूमिसुते बलाढ्ये ।
धर्माधिपे सप्तमभावसंस्थे
दुर्गाधिनाथो ननु भूमिनाथः ॥१५॥

अर्थात् --"राहु जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी यदि लग्न से त्रिकोण में हो, और मंगल उच्च राशि में स्थित होकर बलवान् हो, और नवम भाव का स्वामी यदि सप्तम में हो तो जातक भूमिनाथ और किले का अधिनाथ होता है।"

एक टीकाकार ने उपर्युक्त तीनों श्लोकों में धर्मेश या धर्माधिप का अर्थ दशमेश किया है, परन्तु 'धर्म' शब्द ज्योतिष शास्त्र में सदैव नवम स्थान के लिए आता है।

भाग्ये धनेशे सुखपेन युक्ते
कर्मेश्वरे वित्तगते बलाढ्ये ।
लाभे विलग्नाधिपतिस्तु तुंगे
योगेश्वरः शक्रसमो नृपालः ॥१६॥

अर्थात् --"यदि द्वितीयेश और चतुर्थेश दोनों नवम स्थान में हों दशमेश बलवान् होकर धन-स्थान (द्वितीय) में बैठा हो और लग्नेश उच्च होकर लाभ-स्थान में बैठा हो तो जातक इन्द्र के समान वैभवशाली होता है।"

विचार करने से प्रतीत होगा कि यह योग केवल वृषभ लग्न में लागू होगा, क्योंकि केवल यह लग्न होने से लग्नेश लाभ में अपनी उच्च राशि में स्थित हो सकता है।

सत्रहवें श्लोक का मूल संस्कृत प्राप्त नहीं है। इस कारण केवल हिन्दी अर्थ दिया जा रहा है। यदि स्थिर लग्न हो और

लग्न में शुक्र हो, या चर लग्न हो और लग्नेश से केन्द्र में बृहस्पति हो, या द्विस्वभाव लग्न हो और लग्न से त्रिकोण में मंगल हो,-तो जातक उच्च पदाधिकारी होता है ।।१७।।

बन्धुस्थानाधिपे तुंगे तदीशे कर्मराशिगे ।
लग्नेशे धर्मराशिस्थे योगश्चामरसंज्ञकः ।।१८।।

अर्थात्—"यदि चतुर्थेश अपनी उच्च राशि में हो, और इस उच्च राशि का स्वामी दशम स्थान में हो तथा लग्नेश नवम राशि में हो तो 'चामर' नामक योग होता है।" ऐसे योग वाले व्यक्ति का ५५ वें वर्ष में प्रबल भाग्योदय होता है।

पंचमाधिपतौ भाग्ये कर्मेशे पंचमे स्थिते ।
लाभेशे भाग्य राशिस्थे शिवयोग इतीरितः ।।१९।।

अर्थात्—"यदि पंचमेश नवम स्थान में हो, दशमेश पंचम में हो और लाभेश भाग्य में हो तो 'शिव योग' होता है। इस योग वाला व्यक्ति अत्यन्त पराक्रमी और वैभवशाली होता है।

भाग्यांशकगते कर्मनाथे धनसमन्विते ।
भाग्याधिपेन संयुक्ते विष्णुयोग इतीरित. ।।२०।।

अर्थात्—"यदि दशमेश, नवमेश के नवांश में हो और दशमेश तथा नवमेश दोनों धन-स्थान (लग्न से द्वितीय) में हों तो 'विष्णु योग' होता है ।" ऐसा व्यक्ति भगवान् विष्णु का भक्त और धन-समृद्ध तथा प्रभावशाली होता है।

भाग्यात्केन्द्रस्थिते जीवे
लाभात् केन्द्रस्थितो भृगुः
अन्योन्यक्षेत्रराशिस्थे
चतुर्मुख इतीरितः ।।२१।।

अर्थात्—"यदि भाग्य स्थान से केन्द्र में, अर्थात् लग्न से तीसरे छठे, नवें या बारहवें स्थान में बृहस्पति हो और लाभ स्थान से केन्द्र में. अर्थात् लग्न से एकादश, द्वितीय, पंचम या अष्टम स्थान में शुक्र हो, और शुक्र की राशि में बृहस्पति तथा बृहस्पति की राशि में शुक्र हो, तो 'चतुर्मुख' योग होता है।" ऐसा व्यक्ति लोक-मान्य, राज-सत्कृत, विजयी और दीर्घायु होता है।

यह योग सबसे सुन्दर कुंभ लग्न वाले जातक को हो सकता है-यदि बृहस्पति नवम में तुला का हो और शुक्र धनु का लाभ में हो। सिंह लग्न में, तुला में बृहस्पति, धनु में शुक्र होने से योग होगा। वृष लग्न में मीन का शुक्र और तुला का बृहस्पति तथा कुंभ लग्न में तुला का बृहस्पति तथा मीन का शुक्र सुन्दर योग करेगा। यद्यपि षष्ठ और द्वादश स्थान भी भाग्य स्थान से केन्द्र में है तथापि बृहस्पति इन स्थानों में उतना अच्छा नहीं होता। इसी प्रकार अष्टम स्थान में भी एकादश से केन्द्र में होगा, किन्तु उच्चस्थ शुक्र सबसे अधिक धनदाता द्वितीय स्थान में होगा, ऐसा हमारा विचार है।

कर्मेशस्य नवांशेशस्वोच्चकर्मणि संस्थिते।
लग्नाधिपेन संयुक्ते गौरीयोग इतीरितः ।।२२।।

अर्थात्—"दशमेश जिस नवांश में हो, उसका स्वामी अपनी

उच्च राशि में स्थित होकर लग्नेश के साथ, लग्न से दशम में हो, तो 'गौरीयोग' होता है।" इस योग से जातक का प्रबल भाग्योदय ४७ वें वर्ष में होता है।

भाग्येशस्य नवांशेशे स्वोच्चे भाग्यसमन्विते।
पुत्राधिपेन संयुक्ते लक्ष्मीयोग इतीरितः ॥२३॥

अर्थात्—"भाग्येश जिस नवांश में हो उसका स्वामी अपनी उच्च राशि में पंचमेश के साथ भाग्य-स्थान में हो तो 'लक्ष्मी योग' होता है।' इस योग वाला व्यक्ति समृद्ध और दीर्घायु होता है।

लाभेशस्य नवांशेशे स्वोच्चे लाभसमन्विते।
भाग्याधिपेन संयुक्ते भारती योग ईरितः ॥२४॥

अर्थात्—"ग्यारहवें घर का स्वामी जिस नवांश में हो, उसका स्वामी अपनी उच्च राशि में स्थित होकर नवमेश के साथ यदि लग्न से ग्यारहवें स्थान में हो तो 'भारतीयोग' होता है।" ऐसा व्यक्ति धार्मिक, श्रद्धालु, भाग्यवान्, भोगी और समृद्ध होता है।

तृतीयलाभाधिपतौ मदस्थे
मदेश्वरे रि : फगते च तुंगे
व्ययेश्वरे जीवयुते च भाग्ये ।
कलानिधिर्योगप्रसिद्धयुक्तम् ॥२५॥

अर्थात्—"यदि तृतीय और एकादश, दोनों स्थानों के स्वामी लग्न से सप्तम स्थान में हों, सप्तमेश उच्च होकर लग्न से द्वादश हो और द्वादशेश बृहस्पति के साथ भाग्य-स्थान में हो

तो 'कलानिधि' नामक योग होता है।" ऐसा जातक बहुत प्रसिद्धि प्राप्त करता है।

परन्तु हमारे विचार से यह योग किसी कुण्डली में घटित नहीं हो सकता, क्योंकि केवल मेष लग्न होने से सप्तमेश उच्च राशि में द्वादश में हो सकता है। तृतीयांधिप बुध सप्तम में हो हो शुक्र द्वादश में, यह नहीं हो सकता, क्योंकि बुध और शुक्र कभी एक-दूसरे से इतनी दूरी पर नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त मेष लग्न में व्ययेश स्वयं बृहस्पति हो जावेगा। तब व्ययेश बृहस्पति के साथ नवम में कैसे बैठ सकता है। इसलिए द्वितोय चरण का पाठांतर यदि यह किया जावे कि 'मदेश्वरे रिःफगते बलाढ्ये' कि सप्तमेश बलवान् होकर (नवांश आदि षड् वर्ग में बली) द्वादश में हो तो, योग घटित हो जावेगा।

लग्नाधिपे लग्नगते धनेशे
कर्मस्थिते राज्यपतौ धनस्थे।
लाभेश्वरे लग्नगते बलाढ्ये
देवेन्द्रयोगः स्थिरभे विलग्ने ॥२६॥

इसमें 'देवेन्द्र योग' बताया गया है। इस योग के लिए पांच बातें आवश्यक हैं—(i) लग्न स्थिर हो अर्थात् वृषभ, सिंह वृश्चिक या कुम्भ, (ii) लग्नेश लग्न में हो, (iii) धनेश (दूसरे स्थान का स्वामी) दशम में हो, (iv)दशमेश द्वितीय में हो, (iv) लाभेश बलवान् होकर लग्न में हो। किन्तु वृष लग्न वाले को लग्नेश शुक्र लग्न में और द्वितीयेश बुध दशम हो, यह स्थिति नहीं हो सकती। इसी प्रकार सिंह लग्न में लाभेश और धनेश एक ही ग्रह हो जाने से-बुध लाभेश लग्न में और बुध धनेश दशम में भी हो, यह हो नहीं सकता। कुम्भ लग्न में भी लाभेश और घनेश दोनों बृहस्पति ही होता है और वह

लग्न, तथा दशम दोनों स्थानों में नहीं बैठ सकता। इसलिये केवल वृश्चिक लग्न वाले जातक को लग्नेश मंगल के लग्न में होने से, धनेश बृहस्पति के दशम में होने से दशमेश सूर्य के द्वितीय स्थान धनु में स्थित होने पर तथा लाभेश बुध के लग्न में (कन्या या वृश्चिक नवांश में क्रमशः उच्चनवांश या वर्गोत्तम होने से 'बलाढ्यः' इस विशेषण के घटित होने पर) स्थित होने से देवेन्द्र योग संभव है।

ऐसा व्यक्ति भोग-सुख-सम्पन्न होता है और ४६ वें वर्ष में उसका भाग्योदय होता है।

राज्याधिनाथे लग्नस्थे भार्गवेण समन्विते।
लाभे लाभेश्वरे तुङ्गे योगो मदनसंज्ञकः ॥२७॥

अर्थात्—"यदि दशमेश लग्न में शुक्र के साथ हो और लाभेश लाभ में अपनी उच्च राशि में हो तो 'मदन योग' होता है।" एक टीकाकार लिखते हैं कि केवल वृश्चिक लग्न वाली कुण्डली में यह योग घटित हो सकता है और २८ वें वर्ष में भाग्योदय कारक होगा। किन्तु हमारे विचार से वृश्चिक लग्न वाली कुण्डलियों में भी यह योग घटित नहीं हो सकता, क्योंकि यदि दशमेश सूर्य वृश्चिक में हो तो बुध कन्या में नहीं हो सकता। सूर्य और बुध का पारस्परिक अन्तर २८ अंश से अधिक नहीं हो सकता।

लग्ने चरांशे यदि भाग्यनाथे
जीवेन युक्ते सुतपे सुतस्थे।
कर्मेश्वरे लाभगते बलाढ्ये
कलानिधिर्योग इति प्रसिद्धः ॥२८॥

अर्थात्—"लग्न में यदि चर नवांश हो (एक टीकाकार अर्थ

करते हैं कि यदि चर लग्न हो) और नवमेश बृहस्पति के साथ लग्न में हो, और पंचमेश पंचम में हो, तथा दशमेश बलवान् होकर लाभ स्थान में बैठा हो तो कलानिधि नामक योग होता है। एक २५ वें योग में भी कलानिधि नामक योग बताया है। यह उससे भिन्न है। इस योग में २३ वें वर्ष में राजयोग होता है।

जीवात् तृतीयगे शुक्रे शुक्राद् भाग्यगते विधौ।
कर्मेशे बन्धुराशिस्थे मेघयोग इति श्रुतः ॥२९॥

अर्थात् –"बृहस्पति जिस राशि में हो, उससे तृतीय राशि में शुक्र हो और शुक्र जिस राशि में हो, उससे नवम स्थान में चन्द्रमा हो तथा लग्न से दशम का स्वामी, लग्न से चतुर्थ स्थान में हो तो 'मेघ' नामक योग होता है।' इस योग से ३० वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

एक टीकाकार ने यह अर्थ किया है कि "दशमेश तृतीय स्थान में हो," किन्तु हम उनसे सहमत नहीं हैं, क्योंकि तृतीय भ्रातृ-स्थान कहलाता है और चतुर्थ बन्धुस्थान। इसके अतिरिक्त मंगल के अतिरिक्त अन्य ग्रह यदि दशमेश होकर तृतीय में बैठे तो दशम को पूर्ण दृष्टि से नहीं देखेगा। दशमेश केन्द्र में अधिक बलवान् होगा और चतुर्थ में बैठकर दशम को पूर्ण दृष्टि से देखेगा।

धनेशे धनराशिस्थे भाग्येशे भाग्यसंयुते।
लाभेशे लाभसंयुक्ते मालायोग इतीरितः ॥३०॥

अर्थात्—"यदि दूसरे स्थान का स्वामी दूसरे हो, नवम का स्वामी नवम में हो और एकादश का स्वामी एकादश में हो तो

'माला' नामक योग होता है।" ऐसा जातक, धनी, भाग्यवान्, उत्तम आय वाला होता है और उसका भाग्योदय ३८ वें वर्ष में होता है।

कर्मस्थिते भूमिसुते स्वगेहे
दिनेश स्वोच्चं गतगे धनस्थे।
सुरार्चिते भाग्ययुते च चन्द्रे
विभावसुर्योग इति प्रसिद्धः ॥३१॥

इस श्लोक का अर्थ है—"यदि मंगल दशमेश होकर दशम में हो और सूर्य उच्च राशि का होकर द्वितीय स्थान में हो तथा चन्द्रमा और बृहस्पति नवम स्थान में हो तो 'विभावसु योग' होता है।" इस योग में ३५ वें वर्ष में राजयोग होता है।

परन्तु यह योग जिस रूप में दिया गया है उसमें घटित नहीं हो सकता, क्योंकि यदि मेष या वृश्चिक में दशम में मंगल होगा तो उच्चस्थ सूर्य धन-स्थान में नहीं हो सकता। इसलिये 'धनस्थे' के बजाय 'नभस्थे' पाठ लिया जावे तो कर्क लग्न वाले जातक को दशमेश मंगल दशम में, मेष में सूर्य भी उच्च, तथा नवम में बृहस्पति, मीन में चन्द्रमा सहित लग्नेश भाग्येश के एकत्र नवम में होने से उत्तम राजयोग होगा। द्वितीय चरण में 'धनस्थे' की जगह 'धनेशे' पाठ पढ़ें तो उपर्युक्त कर्क लग्न के उदाहरण में धनेश सूर्य उच्च होकर दशम में दिग्बली भी होगा तथा मंगल के योगकारक होकर दशम में बैठने से लग्नेश-धनेश का उत्तम योग होगा।

यदि द्वितीय चरण का पाठान्तर 'दिनेश स्वोच्चांशगते धनस्थे' किया जावे तो कर्क लग्न के उपर्युक्त उदाहरण में सूर्य सिंह राशि में, मेष नवांश में हो तो उच्चांश में होने से विशेष

बलवान् हो जावेगा।

बहुत से प्राचीन ग्रन्थों में लिपिकर्ताओं के प्रमाद से अशुद्धियाँ आ गई हैं, उनका शोधन कर पाठ स्थिर करना चाहिए।

भाग्यनाथस्थितांशे तु नाथतुंगसमाश्रिते।
लग्नाधिपेन संयुक्ते नालयोग उदाहृतः ॥३२॥

अर्थात्—"लग्न से नवम का स्वामी जिस नवांश में हो (एक टीकाकार ने अर्थ किया है कि 'जिस राशि में हो') उसका स्वामी अपनी उच्च राशि में लग्नेश के साथ हो तो 'नालयोग' होता है।" ऐसा व्यक्ति गुरु-प्रिय और बलाढ्य होता है।

लग्नांशकस्थे कर्मेशे कर्मेशस्थे विलग्नपे।
जीवदृष्टियुते वापि योगः कार्मुकसंज्ञकः ॥३३॥

अर्थात्—"यदि दशमेश लग्न में हो और लग्नेश दशम स्थान में हो या उस पर वृहस्पति की दृष्टि हो तो 'कार्मुक' योग होता है।" ऐसा व्यक्ति ज्ञानी और उच्चपदस्थ होता है।

लाभेशे पञ्चमस्थाने लाभस्थे पंचमाधिपे।
सुखेशे चन्द्रसंयुक्ते चन्द्रयोग इतीरितः ॥३४॥

अर्थात्—"यदि ग्यारहवें घर का मालिक पाँचवें घर में हो और पाँचवें घर का मालिक ग्यारहवें घर में हो तथा चौथे घर का मालिक चन्द्रमा के साथ हो तो 'चन्द्र योग' होता है। इस योग से जातक यशस्वी होता है और २२ वें वर्ष बाद 'राजयोग' होता है।

धनराशिस्थिते चन्द्रे गुरुशुक्रसमन्विते ।
भाग्याधिपेन संदृष्टे गदायोग इतीरितः ॥३५॥

अर्थात्—"यदि लग्न से दूसरे स्थान में चन्द्रमा, बृहस्पति और शुक्र हों और उनको नवमेश देखता हो तो 'गदायोग' होता है।" इस योग से २६ वें तथा ५२ वें वर्ष में भाग्योदय होता है। यह बहुत उत्तम 'धनयोग' है। इस योग में तथा अन्य किसी भी योग में किसी ग्रह या किसी भाव के स्वामी से दृष्ट हो, यह उल्लेख होने से पूर्ण दृष्टि से दृष्ट हो यही अर्थ समझना चाहिए क्योंकि योग-प्रकरण में पूर्ण दृष्टि को ही सार्थक मानते हैं।

आज्ञास्थानं गते राहुस्तदीशे विक्रमस्थिते
रविपुत्रेण संयुक्ते चण्डयोग इतीरितः ॥३६॥

अर्थात्—"यदि राहु दशम स्थान में हो, दशमेश तृतीय में शनि के साथ हो तो 'चण्डयोग' होता है। इस योग में जातक के ५३ वें वर्ष में प्रबल राजयोग होता है।

भाग्याधिपस्थांशपतिस्थितांश-
स्तन्नाथराशीशतदुच्चनाथः ।
लग्नेश्वरो केन्द्रगतो यदि स्यात्
शुभेन युक्तो यदि पारिजातः ॥३७॥

अर्थात्—"जिस राशि में नवमेश हो उसका स्वामी जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी यदि उच्च हो और लग्न का स्वामी यदि लग्न से केन्द्र में शुभग्रह के साथ हो तो 'पारिजात' योग होता है।" ऐसा व्यक्ति विद्वान् और उच्चपदाधिकारी होता है। मूल श्लोक में अंश शब्द आया है उसका

अर्थ यदि नवांश किया जावे तो अर्थ होगा—"नवमेश जिस नवांश में हो"—उस नवांश का स्वामी जिस नवांश में हो, उसका स्वामी यदि उच्च हो और लग्नेश शुभ ग्रह के साथ केन्द्र में हो तो 'पारिजात' योग किया है। प्राचीन टीकाकार ने अंश का अर्थ राशि ही किया है। जैसे यहाँ उपर्युक्त योग नवमेश के आधार पर दिया गया है, उसी प्रकार लग्नेश के आधार पर 'काहल' और 'पर्वत' दो योग 'फलदीपिका' में दिये गए हैं। उनके लिये देखिये, 'फलदीपिका' (भावार्थ-बोधिनी) अध्याय ६।

रन्ध्रे गुरौ भृगुसुतेन युते यदि स्यात्
कामे बुधे शशिगृहे चरभे च जन्म।
स्त्रीपुत्रलाभभवनेषु रवीन्दुमन्द-
मन्दाकिनी प्रवहयोग विदुर्महान्तः ॥३८॥

अर्थात्—"यदि अष्टम स्थान में बृहस्पति और शुक्र हों, सप्तम में कर्क राशि में बुध हो, सूर्य लग्न से सप्तम, चन्द्रमा लग्न से पंचम और शनि लग्न से एकादश स्थान में हों तो 'मन्दाकिनी' योग होता है।" ऐसा व्यक्ति गुण-सम्पन्न एवं उच्चपदाधिकारी होता है।

भाग्यनाथस्थितांशस्य नाथे स्वोच्चं गते धने।
धनेशे नीचराशिस्थे शुभ योग इतीरितः ॥३९॥

अर्थात्—"भाग्यस्वामी जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी यदि अपनी उच्च राशि में स्थित होकर लग्न से दूसरे स्थान में हो और दूसरे घर का स्वामी अपनी उच्च राशि में

हो तो 'शुभ' योग होता है।" ऐसा जातक गुणी होता है और उच्च अधिकार प्राप्त करता है। प्राचीन टीकाकार ने अंश का अर्थ भाग या राशि लिया है। मान लीजिये धनु लग्न है। भाग्येश सूर्य मेष में है। मेष का स्वामी अपनी उच्चराशि में (मकर में) लग्न से द्वितीय स्थान में है और लग्न से दूसरे भाव का स्वामी शनि अपनी नीच राशि में है, इस प्रकार यह योग पूर्ण घटित होता है (यह कुण्डली) एक व्यक्ति की है जिसका जन्म १३ अप्रैल १९४१ को धनु लग्न में हुआ।

लाभेशो नवमाधीशो सचन्द्रो लाभसंस्थितः।
लग्नाधिपेन संदृष्टो गजयोग इतीरितः ।।४०।।

अर्थात्—"यदि ग्यारहवें घर का मालिक, नवम घर के मालिक तथा चन्द्रमा के साथ ग्यारहवें घर में हो और उसको लग्नेश पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो 'गज योग' होता है। यह योग होने से ३९ वें वर्ष में 'राजयोग' होता है।"

उदाहरण के लिए, मीन लग्न हो, लाभेश शनि तथा भाग्येश मंगल, चन्द्रमा के साथ एकादश स्थान में मकर राशि के हों और बृहस्पति लग्नेश होकर कर्क में बैठकर उनको पूर्ण दृष्टि से देखे तो बहुत सुन्दर 'राजयोग होगा।"

पंचमाधिपतौ भाग्ये धने चन्द्रसमन्विते।
लाभाधिपेन संयुक्ते नागयोगेति विश्रुतः ।।४१

अर्थात्—"यदि पंचम स्थान का स्वामी भाग्य-स्थान में हो और एकादश-स्थान का स्वामी चन्द्रमा के साथ धन स्थान में हो तो 'नाग योग' होता है।" यह उत्तम भाग्ययोग और धनकारक है।

लाभेशे परमोच्चस्थे भृगुपुत्रेण संयुते ।
लग्नेशे केन्द्रभावस्थे विद्युद्योग उदीरितः ॥४२॥

अर्थात्—"लाभेश अपने परमोच्च में हो (जिस राशि अंश में परम उच्च होता है, उस राशि तथा उस अंश में हो) और शुक्र के साथ हो तथा लग्नेश केन्द्र में हो तो 'विद्युत् योग' होता है।" इस योग वाले व्यक्ति का २२ वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

धने चन्द्रे गुरुयुते धनेशे लाभराशिगे ।
लग्नेशे शुभराशिस्थे शुभयोग इतीरितः ॥४३॥

अर्थात्—यदि लग्न से द्वितीय स्थान में चन्द्रमा और वृहस्पति हों तथा द्वितीय स्थान का स्वामी (धनेश), एकादश स्थान में हो और लग्नेश शुभग्रह की राशि में हो तो 'शुभ' नामक योग होता है।" इस योग से ३२ वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

लग्नेशस्थांशराशीशे राज्यस्थानसमाश्रिते ।
राज्याधिपेन संदृष्टे भूपयोग इतीरितः ॥४४॥

अर्थात्—"लग्नेश जिस राशि में हो उस राशि का स्वामी यदि दशम (लग्न से दशम) स्थान में हो, और दशमेश से पूर्ण दृष्टि से दृष्ट हो तो 'भूपयोग' होता है।" यह उत्तम राजयोग है और जातक के ४३ वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

भौमस्थितांशकधनत्रिकोणे बुधभार्गवौ ।
कर्मणि स्वोच्चगे मन्दे दीपयोग इतीरितः ॥४५॥

अर्थात्—"मंगल जिस राशि में स्थित हो उससे दूसरे,

पाँचवें या नवें स्थान में बुध और शुक्र हों तथा शनि तुला राशि का दशम में हो तो 'दीपयोग' होता है।" ऐसा व्यक्ति बलिष्ठ तथा उच्च पदाधिकारी होता है।

धर्मेशस्थांशराशीशे शुभर्क्षे शुभसंयुते ।
सुखेशे स्वोच्चराशिस्थे मृगयोग इतीरितः ।।४६।।

अर्थात् --"नवमेश जिस राशि में हो उसका स्वामी यदि शुभ ग्रह की राशि में शुभ ग्रह के साथ हो और चतुर्थ स्थान का स्वामी अपनी उच्च राशि में हो, तो जातक भूमि, जायदाद का मालिक, धार्मिक और भाग्यवान् होता है।

पापास्त्रिकोणे यदि राज्यनाथे
सुरार्चिते लग्नपसंयुते च ।
दिवाकरे तुंगगतु बलाढ्ये
गन्धर्वयोगे नवमे शशांके ।।४७।।

अर्थात्—"यदि लग्न से नवम और पंचम में पापग्रह हों, दशमेश बृहस्पति हो और लग्नेश के साथ हो, सूर्य बलवान् होकर अपनी उच्च राशि में हो और चन्द्रमा नवम में हो तो 'गन्धर्व' योग होता है।" ऐसे जातक का भाग्योदय १४ वें वर्ष से होता है।

उच्चग्रहविलग्नस्थे भूमिजेन निरीक्षिते ।
शौर्यभाग्याधिपे युक्ते चण्डयोग इतीरितः ।।४८।।

अर्थात्—"यदि लग्न में उच्चग्रह हो और तृतीय तथा

नोट—इस ग्रन्थ के प्राचीन टीकाकार ने अंश का अर्थ भाग या राशि लिया है।

नवम स्थान के स्वामियों के साथ हो तथा मंगल से पूर्ण दृष्टि से देखा जावे तो 'चण्ड योग' होता है। पहिले भी एक योग चण्ड कह चुके हैं (देखिये, योग ३६) यह उससे भिन्न है। इस योग वाले जातक को ६५ वें वर्ष में प्रबल राज योग होता है।

सप्तमात्भाग्यराशिस्थे लग्नाद् भाग्येश्वरो यदि।
सुरार्चितेन संदृष्टे नागयोग इतीरितः ॥४६॥

अर्थात्—"यदि लग्न से नवम का स्वामी सप्तम से नवम अर्थात् लग्न से तृतीय स्थान में हो और बृहस्पति से पूर्ण दृष्टि से दृष्ट हो तो 'नाग योग' होता है। ऐसे जातक का ८ वें वर्ष से भाग्योदय होता है।

भाग्यात्भाग्यगते जीवे तदीशे शुभसंयुते।
मन्दे कर्मणि संप्राप्ते योगो मुकुटसंज्ञकः ॥५०॥

अर्थात्—"यदि नवम से नवम, अर्थात लग्न से पंचम बृहस्पति हो और उस स्थान का स्वामी शुभग्रह से युक्त हो और दशम में शनि हो तो 'मुकुट' योग होता है। ऐसे जातक को ६३ वें वर्ष में प्रबल राजयोग होता है।

धनेशे भाग्यराशिस्थे भाग्येशे लाभसंयुते।
लग्नेशे परमोच्चस्थे चित्रयोग इतीरितः ॥५१॥

अर्थात्—"यदि दूसरे घर का मालिक, लग्न से नवम हो, भाग्येश (नवमेश) लाभ (एकादश) में हो और लग्नेश अपनी उच्च राशि में परमोच्च अंश में हो तो 'चित्र योग' होता है। इस योग से वृद्धावस्था में प्रबल भाग्योदय होता है। यह उत्तम

धा योग भी है। जातक साहसी और भाग्यवान् होता है।

कर्मांशकगते मन्दे तुंगे चन्द्रसमन्विते।
निशि जन्म चरे लग्ने वृष्टियोग इतीरितः ॥५२॥

चर लग्न हो, रात्रि में जन्म हो, शनि तुला राशि में चन्द्रमा के साथ दशम में हो तो 'वृष्टियोग' होता है। इस योग वाले जातक का ३० वें वर्ष में भाग्योदय होता है। क्योंकि इस योग में उच्च राशिस्थ शनि दशम में होता है, यह योग केवल मकर लग्न वाली कुण्डली में हो सकता है।

षष्ठेशसंयुक्त नवांशनाथे
भाग्यान्विते भास्करसंयुते च।
स्थिरे विलग्ने रिपुनाथदृष्टे
श्रीचंडिकायोग इति प्रसिद्धः ॥५३॥

अर्थात—"इस चण्डिका-योग में तीन बातें होनी चाहिये—(१) स्थिर लग्न हो; (२) लग्न पर षष्ठेश की दृष्टि हो; (३) षष्ठेश जिस नवांश में हो, उस नवमांश का स्वामी लग्न से नवम स्थान में सूर्य के साथ हो।" इस योग में उत्पन्न जातक का २१ वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

लग्नेश्वरे देवगुरुर्नभस्थे
चन्द्रात् धने सप्तमराशिनाथे।
विलग्नभावे शुभखेटयुक्ते
श्रीनाडिकायोग इति प्रसिद्धः ॥५४॥

अर्थात—"यदि लग्नेश बृहस्पति हो और वह दशम स्थान में स्थित हो, लग्न से सप्तम स्थान का स्वामी चन्द्रमा से दूसरे स्थान

में स्थित हो तथा लग्न में शुभ ग्रह हो तो 'नाडिका योग' होता है। इस योग के होने से बारहवें वर्ष में भाग्योदय होता है। यदि जन्मलग्न मीन हो तो लग्नेश बृहस्पति दशम में स्थित होकर स्वगृही होगा और महापुरुष योग करेगा। इसलिए धनु लग्न की अपेक्षा मीन लग्न वाली कुण्डलियों में यह योग विशेष प्रबल होगा। मीन लग्न वाली कुण्डली में भी सर्वोत्तम योग तब होगा जब चन्द्रमा वृष में हो और सप्तमेश बुध, चन्द्रमा से दूसरे अर्थात् मिथुन में हो।

राहुस्थितांशनाथस्य त्रिकोणे दिवसाधिपे
भूमिपुत्रेण संयुक्ते रूपयोग इतीरितः ॥५५॥

अर्थात्—"जन्म-कुण्डली में राहु जिस राशि में हो—उस राशि का स्वामी जिस राशि में हो,-वहाँ से नवम या पंचम स्थान में मंगल के साथ सूर्य बैठा हो तो 'रूपयोग' होता है।' इस योग में उत्पन्न जातक का १३ वें वर्ष से भाग्योदय होता है।

क्योंकि राहु जिस राशि में हो, उस राशि का स्वामी जहाँ हो, उससे त्रिकोण में सूर्य और मंगल की स्थिति बतलाई गई है। इसलिये राहु मेष, वृष, मिथुन, सिंह, कन्या, तुला या वृश्चिक में होने से यह योग नहीं हो सकता, क्योंकि यदि इन राशियों में से किसी में राहु होगा तो उसका अधिपति मंगल, शुक्र, बुध या सूर्य हो जावेंगे, और अधिपति से त्रिकोण में सूर्य, मंगल नहीं हो सकेंगे।

कर्मेशे भाग्यराशिस्थे धनेशे धनसंयुते ।
लग्नेशे वेश्मराशिस्थे योगः कन्दुकसंज्ञकः ।।५६।।

इस योग में तीन बातें बताई हैं—"(१) दशमेश भाग्य (नवम) में हो, (२) जन्म-लग्न से दूसरे घर का स्वामी-दूसरे (धन) स्थान में हो, (३) लग्नेश लग्न से चतुर्थ स्थान में हो यदि ये तीनों बातें हों तो 'कन्दुक' योग होता है।" कन्दुक-योग में उत्पन्न व्यक्ति, धनी, ज़मीन जायदाद का स्वामी एवं भाग्यवान् होता है और १६ वें वर्ष से उसका भाग्योदय प्रारम्भ हो जाता है ।

कर्मस्थानगतो राहुः कर्मेशे स्वोच्चराशिगे ।
रविपुत्रेण संदृष्टे योगो मुसलसंज्ञकः ।।५७।।

अर्थात् –"यदि दशम स्थान में राहु हो, दशमेश अपनी उच्चराशि में हो और उच्च राशिस्थ दशमेश शनि से दृष्ट हो तो 'मुसल योग' होता है।' मुसलयोग में उत्पन्न व्यक्ति धनिक और बड़ा व्यापारी (वाणिज्य करने वाला) होता है ।

भाग्यांशस्थेशराशीशो भाग्यपेन युतो यदि ।
लग्नात्पंचमगे भौमे चन्द्रिकायोगसंज्ञकः ।।५८।।

इस श्लोक के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) "नवम भाव का स्वामी जिस नवांश में हो, उस नवांश का स्वामी यदि भाग्येश के साथ बैठा हो और लग्न से पंचम में यदि मंगल हो।" (२) "नवांश कुण्डली में-जो नवम भाव मे राशि हो उसका स्वामी, लग्न कुण्डली में जो नवम स्थान है उसके स्वामी के साथ बैठा हो और लग्न से पंचम में यदि मंगल हो तो 'चन्द्रिका योग

होता है।'' इस योग में उत्पन्न व्यक्ति का २१ वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

हमारे विचार से मंगल यदि स्वराशि या उच्च राशि का न हो तो पंचम में सन्तान-कष्ट अवश्य करेगा। यदि मेष या वृश्चिक लग्न हो तो भी पंचम स्थान में बैठकर मंगल पंचम भाव को नहीं बिगाड़ेगा। देखिये, 'फलदीपिका (भावार्थबोधिनी अध्याय १५, श्लोक १०)।

विक्रमाधिपतिः स्वोच्चे विक्रमे गुरुसंयुते।
भृगुपुत्रेण संदृष्टे चण्डयोग इतीरितः ॥५६॥

अर्थात्—''यदि तृतीय स्थान का स्वामी उच्च हो, तृतीय स्थान में बृहस्पति हो और वह शुक्र से देखा जाता हो तो 'चंडयोग' होता है।'' इस योग के होने से १३ वे वर्ष से भाग्योदय होता है।

व्ययेशे परमोच्चस्थे व्ययस्थे भृगुनन्दने।
शुभाधिपेन संदृष्टे रसातल इतीरितः ॥६०॥

अर्थात्—यदि बाहरवें घर का स्वामी अपनी उच्च राशि में परमोच्च अंश में हो और शुक्र द्वादश स्थान में हो तथा उस पर शुभ स्थान के स्वामी की दृष्टि हो तो 'रसातल योग' होता है।'' इस योग से वृद्धावस्था में विशेष भायोदय होता है। यह योग मिथुन और वृश्चिक लग्न में नहीं हो सकता।

सुखेशे शुभराशिस्थे शोभनग्रहसंयुते ।
सुरार्चितेन संदृष्टे युगयोग इतीरितः ।।६१।।

अर्थात्—"यदि चौथे स्थान का स्वामी शुभ ग्रह की राशि में शुभ ग्रह के साथ बैठा हो और उसको वृहस्पति देखता हो तो युग योग होता है । यह योग जमीन-जायदाद, सवारी आदि का सुख प्रदान करता है ।

बुद्धिस्थितनवांशस्य नाथे तुंगसमन्विते ।
कर्माधिपेन संयुक्ते अंगुलीयोगसंज्ञकः ।।६२।।

अर्थात्—"नवांश कुण्डली में पंचम भाव में जो राशि हो उस राशि का स्वामी लग्न-कुण्डली में उच्च राशि में स्थित हो और लग्न से दशम स्थान के स्वामी के साथ हो तो अंगुली योग होता है ।" इस योग में उत्पन्न जातक का १२ वें वर्ष से भाग्योदय होता है ।

राज्यस्थानगते चन्द्रे तदीशे स्वोच्चसंयुते ।
भाग्येशे धनराशिस्थे भूपयोग इतीरितः ।।६३।।

अर्थात्—"यदि चन्द्रमा लग्न से दशम स्थान में हो, दशमेश (लग्न से दशम स्थान का स्वामी) अपनी उच्चराशि में हो तथा भाग्येश लग्न से द्वितीय स्थान में हो तो भूपयोग होता । इस योग से मनुष्य धनिक, भाग्यवान्, उच्च पदाधिकारी होता है ।

भाग्याधिपस्य द्रेष्काणे राज्यनाथे स्थिते यदि ।
राज्यं गते सुराचार्ये भोगयोग इतीरितः ।।६४ ।।

अर्थात्—"यदि दशम भाव का स्वामी – नवम स्थान के

स्वामी के द्रेष्काण में हो और बृहस्पति दशम में हो तो 'भोग योग' होता है। उदाहरण के लिए, कर्क लग्न की कुण्डली है। दशमेश मंगल हुआ। नवमेश बृहस्पति हुआ। अब यदि द्रेष्काण कुण्डली में मंगल धनु या मीन द्रेष्काण में हो तो दशमेश, भाग्येश के द्रेष्काण में होगा। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति का ४५ वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

चन्द्रस्थितनवांशस्य नाथे शुभसमन्विते ।
पूर्वपक्षे दिवाजन्म योगोऽयं गरुडो भवेत् ॥६५॥

चन्द्रमा जिस नवांश में हो-उस नवांश का स्वामी यदि लग्न कुण्डली में शुभ ग्रह के साथ हो और शुक्ल पक्ष में दिन में जन्म हो तो गरुड योग होता है। इस योग से २७ वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

लग्नाधिपस्य द्रेष्काणे भाग्येशस्थे नवांशपे ।
तिष्ठति चेद्यदा जन्म देवयोग इतीरितः ॥६६॥

यदि द्रेष्काण कुंडली में लग्न द्रेष्काण का स्वामी-जन्म-लग्नेश हो और नवांश कुंडली में नवांश कुंडली का स्वामी—जन्म कुँडली का भाग्येश हो, तो "देवयोग" होता है।

उदाहरण के लिए, यदि वृश्चिक लग्न के २ अंश हैं तो वृश्चिक लग्न का प्रथम द्रेष्काण वृश्चिक ही हुआ और लग्न द्रेष्काण वृश्चिक होने से जन्म लग्नेश का द्रेष्काण हुआ। लग्न के २ अंश उदित होने से प्रथम नवांश कर्क हुआ। यह जन्म-लग्न (वृश्चिक) से नवम (कर्क) भाग्य के स्वामी चन्द्रमा के नवांश में हुआ, इस कारण देवयोग कारक हुआ। इस योग से ३२ वें वर्ष में विशेष भाग्योदय होता है।

सशुक्रजीवे भाग्यस्थे लाभनाथेन संयुते।
धनाधिपेन संदृष्टे वज्रयोग इतीरितः ॥६७॥

अर्थात्—"यदि जन्म-लग्न से नवम स्थान में बृहस्पति शुक्र और लाभेश (लग्न से एकादश का स्वामी) हों और उन पर धनाधिप (लग्न से द्वितीय के स्वामी) की दृष्टि हो तो 'वज्र-योग' होता है। इस योग से २८ वें वर्ष में प्रबल भाग्योदय होता है। मेष कर्क, कन्या, धनु में स्वयं शुक्र द्वितीयेश या लाभेश हो जावेगा। वृश्चिक, वृषभ, कुंभ में स्वयं बृहस्पति द्वितीयेश या लाभेश हो जावेगा। सिंह में धनाधिप बुध नवमस्थ शुक्र को पूर्ण दृष्टि से देख नहीं सकता क्योंकि बुध और शुक्र में सात राशि का अन्तर हो नहीं सकता। इस लिए मिथुन, तुला, मकर तथा मीन लग्न में ही यह योग हो सकता है।

लाभेशस्थित द्रेष्काणे सलाभे दिवसाधिपे।
भूम्यात्मजेन संदृष्टे चक्रयोग इतीरितः ॥६८॥

अर्थात्—"लाभेश जिस द्रेष्काण में हो, उस द्रेष्काण राशि से ग्यारहवीं राशि में सूर्य हो, और वह सूर्य मंगल से देखा जाता हो तो 'चक्रयोग' होता है। इस योग से ३९ वें वर्ष में राजयोग होता है।

भाग्याधिपे द्वादशांशे पंचमाधिपतौ स्थिते।
पूर्णचन्द्रेण संयुक्ते रज्जुयोग इतीरितः ॥६९॥

अर्थात्—"जन्म-लग्न से नवम का स्वामी जिस द्वादशांश राशि में हो, उस द्वादशांश राशि में यदि जन्म-लग्न से पंचम का स्वामी पूर्णचन्द्र के साथ हो तो 'रज्जु-योग' होता है।" इस

योग से १८ वे वर्ष में धन-योग होता है। क्योंकि इस योग में पूर्ण चन्द्र का उल्लेख किया गया है – पूर्णिमा को जन्म लेने वाले जातक की कुंडली में ही यह योग घटित हो सकता है।

सम्पूर्णचन्द्रे भाग्यस्थे गुरुशुक्रसमन्विते।
लग्नांशके बुधयुते गोलयोग इतीरितः ॥७०॥

अर्थात्—"लग्न से नवम स्थान में बृहस्पति, शुक्र और पूर्ण चन्द्र (पूर्णिमा का चन्द्रमा) हो और नवांश कुंडली में लग्न नवांश में बुध हो तो गोल योग होता है।" इस योग से बचपन (७ वर्ष की अवस्था) से ही भाग्योदय प्रारम्भ हो जाता है।

हमारे विचार से यह योग घटित नहीं हो सकता क्योंकि यदि सम्पूर्ण चन्द्र नवम में हो तो सूर्य का लग्न से तृतीय में होना आवश्यक है और लग्न से तृतीय में सूर्य होगा तो लग्न से नवम में शुक्र नहीं हो सकता, क्योंकि सूर्य और शुक्र का सात राशि का अन्तर नहीं हो सकता।

वर्गोत्तमगते लग्नेनाथे भाग्यसमन्विते।
चन्द्रात् भाग्यगते जीवे योगः केदारसंज्ञकः ॥७१॥

अर्थात्—"यदि वर्गोत्तम लग्न हो (लग्न में जो राशि हो वही नवांश लग्न हो) लग्नेश जन्म-लग्न से नवम स्थान में हो, तथा चन्द्रमा जिस राशि में हो उससे नवम स्थान में बृहस्पति हो तो 'केदार' योग होता है।" यह उत्तम भाग्य योग है। स्वयं वर्गोत्तम लग्न की प्रशंसा है; लग्नेश का भाग्य स्थान में बैठना उत्तम है और चन्द्र कुण्डली में चन्द्रमा से नवम बृहस्पति का बैठना भी भाग्य योग कारक है। इस प्रकार, उपर्युक्त तीन योगों के समवाय से केदार योग होता है।

मूलत्रिकोणे दारेशे धनेशेन समन्विते।
लग्नेशे स्वोच्चराशिस्थे गोयोग इति विश्रुतः ।।७२।।

अर्थात्—"यदि सप्तम स्थान का स्वामी अपनी मूल त्रिकोण राशि में हो, धनेश (लग्न से द्वितीय के स्वामी) के साथ हो और लग्नेश अपनी उच्च राशि में हो तो 'गो योग' होता है।" यह योग होने से उच्च कुल में विवाह होता है और १८वें वर्ष से भाग्योदय होता है।

विक्रमाधिपतौ भाग्ये शुक्रे निधनसंयुते।
रविस्थाने शुभयुते पाशयोग इतीरितः ।। ७३ ।।

अर्थात्—"यदि तृतीय स्थान का स्वामी, लग्न से नवम स्थान में हो, लग्न से अष्टम में शुक्र हो तथा सूर्य जिस राशि में हो, उसमें शुभ ग्रह हो तो 'पाश-योग होता है। इस योग से २३वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

लग्ने लग्नांशके जीवे भृगुपुत्रेण वीक्षिते।
भाग्येशे परमोच्चस्थे दामयोग इतीरितः ।।७४।।

अर्थात्—"यदि जन्म लग्न और नवांश लग्न में बृहस्पति हो और लग्न कुण्डली में बृहस्पति शुक्र से देखा जाता हो, तथा भाग्येश परमोच्चस्थ हो (जिस राशि अंश में परमोच्च होता हो उस राशि तथा अंश में हो) तो 'दाम-योग होता है। यह भाग्य-योग तया धन-योग है और २८वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

वधरिःफधिपतौ स्वोच्चे जन्मे लग्ने तृतीयके ।
लाभेशे धनराशिस्थे वीणायोग इतीरितः ।।७५।

अर्थात् —"यदि अष्टम और बारहवें के मालिक जन्म राशि और लग्न से तृतीय में, अपनी उच्च राशि में हों और जन्म लग्न से एकादश का स्वामी जन्म-लग्न से द्वितीय स्थान में बैठा हो तो 'वीणा-योग' होता है।" इस योग से १५वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

यहां दो ग्रहों के उच्च होने का उल्लेख किया गया है—अष्टमेश तथा व्ययेश का। दोनों ग्रह किसी भी एक राशि में उच्च हो नहीं सकते। इसलिये दोनों के दो उच्च स्थान बता दियें गए हैं। जन्म-लग्न से तृतीय या जन्म-राशि से तृतीय।

वृषभ लग्न में अष्टमेश बृहस्पति लग्न से तृतीय-कर्क राशि में उच्च हो सकता है किन्तु ऐसी स्थिति में लाभेश बृहस्पति द्वितीय स्थान में नहीं हो सकता।

चन्द्रात्केन्द्रगते भौमे लाभस्थे भृगुनन्दने ।
चन्द्रात् भाग्यगते जीवे वृषयोग इतीरितः ।।७६।।

अर्थात्—"चन्द्रमा जिस राशि में हो उससे केन्द्र में मंगल हो, चन्द्रमा से एकादश में शुक्र हो और चन्द्रमा से नवम में बृहस्पति हो तो 'वृष योग' होता है।" इस योग से ३६वें वर्ष में राजयोग होता है।

जयेशे रिपुराशिस्थे रन्ध्रात्कोणे तदीश्वरे ।
भाग्याधिपेन संदृष्टे मृगयोग इतीरितः ।।७७।।

नवम स्थान को जय-स्थान कहते हैं। यही धर्म-स्थान है।

धर्म प्रबल होने ये जय होती है। इसीलिये कहा गया है "यतो धर्मस्ततो जयः"—जहाँ धर्म है, वहीं जय है।

अर्थात् —"यदि लग्न से नवम का स्वामी, लग्न से षष्ठ स्थान में हो और लग्न से अष्टम का स्वामी—उस स्थान से (अष्टम से) त्रिकोण (अर्थात् लग्न से द्वादश या चतुर्थ) में हो और नवमेश से दृष्ट हो तो 'मृग योग' होता है।" इस योग से ४३वें वर्ष में राजयोग' होता है। (केवल द्वादश में अष्टमेश होने से षष्ठस्थ नवमेश से दृष्ट हो सकता है।)

धर्मस्थानाधिपे लग्ने वाहनेशेन संयुते ।
विक्रमाधिपतौ स्वोच्चे योगो लावण्यसंज्ञकः ॥७८

अर्थात्—"यदि नवमेश चतुर्थेश के साथ लग्न में हो और तृतीयेश अपनी उच्च राशि में हो तो लावण्य योग होता है। इस योग से ३२वें वर्ष में भाग्योदय होता है।

चेत्कण्टके पणफरे च खगाः समस्ताः
स्यादिक्कबाल इति राज्यसुखाप्तिहेतुः ॥७९॥

अर्थात्—"यदि सब ग्रह केन्द्र (लग्न से १ले, ४थे, ७वें, १०वें स्थानों में) तथा पणफर (लग्न से २रे, ५वें, ८वें, ११वें) स्थानों में हो तो राज्य-सुख अथवा राज्य और सुख-प्राप्ति का हेतु होता है। इसे 'इकबाल योग' होता है। यह योग ताजिक से लिया गया है।

सप्तराशिगतैः खेटैर्लग्नात्सप्तग्रहैरपि ।
मालायोगस्त्वयं प्रोक्तो देवतेभ्यः पुरातनैः ॥८०॥

अर्थात्—"यदि लग्न से सातवीं राशि तक सात ग्रह—प्रत्येक

एक-एक राशि में—हो तो इसे 'माला योग' कहते हैं। यह उत्तम राजयोग है। इसी प्रकार यदि मेष राशि से तुला राशि तक प्रत्येक राशि में एक-एक ग्रह हो तो 'माला योग' होता है।" यह भी उत्तम भाग्य-योग है। इस माला योग में राहु तथा केतु नहीं लेने चाहिये।

पंचराशिगतैः खेटैर्लग्नात्पंचग्रहैरपि।
कीर्तिमाला इति प्रोक्ता निम्नगो यदि नास्तिचेत् ॥८१॥

अर्थात्—"यदि मेष राशि से सिंह राशि तक, या जन्मलग्न से पंचम स्थान तक सब राशियों में ग्रह हों तो 'कीर्तिमाला' योग होता है।" यह भी भाग्य योगकारक है। यह योग तभी होता है जब कोई ग्रह अपनी नीच राशि में न हो। यहाँ राहु-केतु को नहीं लेना चाहिये। लग्न से पंचम राशि तक सब राशियाँ ग्रहयुत होनी चाहिये।

तथाभूतैः सर्वग्रहै द्वितीयाद्यस्य जन्मनि।
योगो रत्नावलीमाला निम्नगो यदि नास्तिचेत् ॥८२॥

अर्थात्—"इसी प्रकार, यदि वृषभ से कन्या राशि तक प्रत्येक राशि में ग्रह हों या द्वितीय स्थान से षष्ठ स्थान तक, प्रत्येक स्थान में ग्रह हों और कोई ग्रह अपनी नीच राशि में न हो तो 'रत्नावली' योग होता है। इसका भी ऊपर ८१ में कहे गये योग के समान शुभ फल है।

विक्रमादिगतैः सर्वैः खेचरेन्द्रैर्यदा तदा।
योगो विक्रममालाख्यो द्वौ शुभौ केन्द्रसंयुत ॥८३॥

अर्थात्—"यदि सब ग्रह तृतीय स्थान से नवम स्थान तक

हों और दोनों केन्द्रों में (तृतीय से नवम स्थान तक गिनने से बीच में दो केन्द्र (चतुर्थ और सप्तम) शुभग्रह पड़े हों तो 'विक्रममाला' योग होता है।' यह भी शुभ माला-योग है।

एक टीकाकार के मत से यदि सब ग्रह मिथुन से धनु तक हों और बीच के केन्द्रों में शुभग्रह हों तो भी 'विक्रममाला' योग होता है। इन मालायोगों में कोई बीच वाली राशि खाली नहीं होनी चाहिये। राहु-केतु मालायोग में नहीं लिये जाते।

रसातलात् व्योमचराः स्वतुंगगाश्चानस्तगाः।
नीचखेटा बन्धुमाला नामयोगस्त्वयं भवेत् ॥८४॥

सब ग्रह यदि चतुर्थ स्थान से लेकर दशम स्थान तक सब राशियों में हों—चाहे उच्च हों अथवा नीच—किन्तु अस्त नहीं होने चाहिये, तो 'बन्धुमाला' योग होता है।'

एक टीकाकार के मत से, "यदि कर्क से लेकर मकर तक प्रत्येक राशि में ग्रह हो, तब भी 'बन्धुमाला' योग होता है।" किन्तु कोई ग्रह अस्त न हो। राहु, केतु मालायोग में नहीं लिये जाते।

एवं सुतादिगैः सर्वैः खेचरेन्द्रैर्यदा तदा।
अनस्तगैर्नीचखेटैं मन्त्रिमालाख्यसंज्ञकः ॥८५॥

षष्ठभादिन्द्रमाला स्यात्सप्तमात्काम मालिका।
रन्ध्राग्निधनमालाख्यो नवमाच्छुभमालिका ॥८६॥

दशमात्कीर्तिमाला स्याल्लाभाच्चेद् विजयाभिधः।
रिफात्पतनमालाख्यः फलं वक्ष्ये पृथक् पृथक् ॥८७॥

इसी प्रकार, "सब ग्रह सात राशियों में—पंचम से एकादश तक हों तो 'मंत्रिमाला', षष्ठ से द्वादश तक हों तो 'इन्द्रमाला', सप्तम से लग्न तक हों तो 'काम मालिका', अष्टम से द्वितीय तक हों तो 'निधनमाला', नवम से तृतीय तक हों तो 'शुभ-मालिका'; दशम से चतुर्थ तक 'कीर्तिमाला'; एकादश से पंचम तक 'विजयमाला' और द्वादश से षष्ठ तक हों तो 'पतनमाला' योग होता है।" ये सभी राजयोग हैं।

एक टीकाकार, सिंह से कुम्भ तक सातों राशियों में ग्रह हों तो 'मंत्रिमाला'; कन्या से मीन तक प्रत्येक राशि सग्रह हो तो 'इन्द्रमाला'; तुला से मेष तक 'काममाला'; वृश्चिक से वृष तक 'निधनमाला'; धनु से मिथुन तक 'शुभ मालिका', मकर से कर्क तक 'कीर्तिमाला', कुम्भ से सिंह तक 'विजयमाला', तथा मीन से से कन्या तक 'पतनमाला' मानते हैं।

इस मालायोग में कोई ग्रह अस्त नहीं होना चाहिये और सातों घर ग्रहों से भरे होने चाहिये। बीच में कोई राशि ग्रहहीन (बिना ग्रह के) नहीं होनी चाहिये। इस मालायोग में सात ग्रहों—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र तथा शनि का विचार ही है। मालायोगों में राहु-केतु नहीं लेने चाहिये। इनसे कोई योग बनता नहीं या बिगड़ता नहीं, अर्थात् राहु-केतु इनमें न साधक होते हैं, न बाधक।

इस ग्रन्थ का नाम 'शतयोगराजमंजरी' है। इसलिये इसमें एक सौ राजयोग होने चाहियें, परन्तु हैं केवल ८७ राजयोग ही। इसकी व्याख्या करते हुए हमने यत्र-तत्र यह भी लिखा है कि अमुक योग किसी कुण्डली में घटित नहीं हो सकता, क्योंकि बुध और शुक्र किंवा सूर्य और शुक्र का इतना अन्तर नहीं हो सकता जितना दृष्टि के लिए आवश्यक है। अब प्रश्न होता है कि ग्रंथकार ने यह योग लिखा ही क्यों ?

इस प्रकार के योग वराहमिहिर-कृत 'बृहज्जातक' में भी मिलते हैं। बृहज्जातक (अध्याय १२, श्लोक ६ में) वराहमिहिर ने लिखा है कि पूर्व (प्राचीनकाल से चले आये) शास्त्रों के आधार पर मैंने वज्र-आदि योग लिखे हैं किन्तु सूर्य जिस राशि में हो, उससे चतुर्थ में बुध और शुक्र किस प्रकार हो सकते हैं ?

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार के कोई-कोई घटित न हो सकने वाले योग 'शतयोग राजमंजरी' में दिये गए हैं—वैसे कुछ योग वराहमिहिर आदि आचार्यों ने भी दिये हैं।

इसके अतिरिक्त लिपिकर्ताओं के दोष से पदों में हेर-फेर हो गया है। जहाँ तक हमें ज्ञात है, इस फलित ग्रंथ का, हिन्दी व्याख्या सहित कोई प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। बंगलौर की 'एस्ट्रोलाजिकल मैगज़ीन' के संस्थापक स्वर्गीय श्री बी० सूर्य नारायण राव ने बहुत काल पूर्व—इस ग्रंथ को फलित ग्रंथों में सम्मान्य समझकर इसका एक अनुवाद अंग्रेजी में प्रकाशित किया था, परन्तु यह भी अब उपलब्ध नहीं है। 'शतयोग राज मंजरी' के योगों से दक्षिण भारत का दैवज्ञ मंडल तो परिचित है, परन्तु देवनागरी में हिन्दी-व्याख्या सहित यह उपलब्ध नहीं था। इस कारण उत्तर भारत के हिन्दी पाठकों के लिये यह सर्वथा नवीन है। किसी योग में एक से अधिक श्लोक हैं, योग १, २, ३, ४, ५, ७, और ८ में दो-दो श्लोक है। योग ६ में ढाई श्लोक हैं, योग १३ में डेढ श्लोक। इस प्रकार इस ग्रंथ में कुल श्लोक संख्या करीब एक सौ है।

शतमंजरी राजयोग नामक जो संस्कृत पुस्तक उपलब्ध है, उसमें एक सौ पूरे योग नहीं दिये हैं। कम हैं। एक दूसरी पुस्तक जातक योगावली संस्कृत में है। इस जातक योगावली नामक पुस्तक के लेखक थे वेंकटेश शर्मा। बहुत परिश्रम और अन्वेषण करने पर भी इस पुस्तक की संस्कृत प्रति प्राप्त न हो सकी। इसका अंग्रेजी में अनुवाद एक स्थान पर दृष्टिगोचर हो सका।

अनुवादक ने अपनी पुस्तक में टिप्पणी दी है कि इसके लेखक वेंकटेश शर्मा वही वेंकटेश दैवज्ञ हैं, जो सर्वार्थ चिन्तामणि के प्रणेता हैं। सर्वाथ चिन्तामणि संस्कृत का ज्योतिष विषयक प्राचीन यथा मान्य ग्रंथ है।

अस्तु, इस जातक योगावली के लेखक वेंकटेश दैवज्ञ हों, अथवा वेंकटेश शर्मा नामक कोई अन्य विद्वान, शतमंजरी राजयोग के बहुत से योग जातक योगावली में दिये गये हैं, या यह कहिये कि जातक योगावली के बहुत से योग शतमंजरी राजयोग में दिये गए हैं। दोनों पुस्तक एक ही है केवल नाम का भेद है। कुछ योग जो जातक योगावली में हैं, और शतमंजरी राजयोग में नहीं हैं नीचे दिये जाते हैं। मूल संस्कृत प्राप्त न हो सकने के कारण श्लोक नहीं दिये जा रहे हैं। इससे सरसता में तो अवश्य न्यूनता हो जावेगी किन्तु मूल पुस्तक के अभाव में किया ही क्या जा सकता है?

वसुमतीयोग : यदि नवम या दशम से दशम का स्वामी, लग्न से दशमेश के साथ अपनी उच्चराशि मेंनवम में बैठें तो वसुमती योग होता है। यह उत्तम राजयोग है। ४० वें वर्ष से भाग्योदय प्रारम्भ होता है और ४९ वें वर्ष से पूर्ण भाग्योदय, धन, अधिकार आदि की वृद्धि होती है।

सुखयोग : यदि द्वितीयेश या भाग्येश चन्द्रमा से केन्द्र में हो तो सुख योग होता है। जातक चिन्ता से मुक्त और सुखी होता है। वह सत्कर्म करता है। १६ वर्ष की अवस्था से ही इसका सुप्रभाव प्रारम्भ हो जाता है।

साम्राज्ययोग : यदि बृहस्पति द्वितीय या नवम का स्वामी हो और नवमेश जिस नवांश में हो उसका स्वामी बृहस्पति से युक्त हो और दोनों लग्न से द्वितीय स्थान में हों तो साम्राज्य योग होता है। ऐसा जातक भाग्यशाली और उच्च

पदाधिकारी होता है।

दुर्गेशयोग : (i) राहु जिस नवांश का स्वामी है वह लग्न से पंचम या नवम स्थान में अपनीं उच्च राशि का हो (ii) भाग्येश लग्न से सप्तम स्थान में हो तथा (iii) मंगल वलवान् हो। यदि यह तीनों बातें घटित हों तो दुर्गेश योग होता है। ऐसा जातक भूमि, मकान, जंगल, किले आदि का अधिपति होता है।

अर्थयोग : (i) लग्न से द्वितीय तथा चतुर्थ के स्वामा लग्न से नवम में हों (ii) लग्नेश अपनी उच्चराशि का एकादश में हो (iii) नवमेश बली होकर लग्न से द्वितीय स्थान में हो—यह तीनों योग घटित हों तो अर्थ योग होता है। जातक अत्यन्त धनी होता है। मूल श्लोक में लिखा है कि करोड़पति होता है। यह योग केवल वृष लग्न वाले जातक को हो सकता है क्योंकि अन्य लग्नों में लग्नेश अपनी उच्चस्थ राशि में एकादश में नहीं हो सकता। वृष लग्न होने पर नवमेश शनि लग्न से दूसरे स्थान में मिथुन में होगा। मिथुन राशि के प्रथम नवांश तुला में अपने उच्च नवांश में होगा और अन्तिम नवांश में वर्गोत्तम होने से बली होगा।

त्रिकूट योग : (i) लग्न में स्थिर राशि और लग्न में शुक्र हो अथवा लग्न चर राशि हो और लग्न में बृहस्पति हो अथवा द्विस्वभाव राशि लग्न में हो और उसमें (लग्न में) बुध हो तो त्रिकूट योग होता है। ऐसा व्यक्ति किले या भूमि का अधिपति होता है या बहुत से आदमी उसके नीचे काम करते हैं।

रवियोग : सूर्य यदि लग्न से दशम हो और लग्न से दशम का स्वामी लग्न से तृतीय हो तो रवि योग होता है ऐसा व्यक्ति बुद्धिमान् विद्वान्. उच्च पदाधिकारी, भूमि का स्वामी और कामी होता है।

कामिनीयोग : बृहस्पति द्वितीय स्थान में हो, शुक्र चतुर्थ में, चन्द्रमा सप्तम, मंगल दशम में हो और लग्नेश शुभग्रह से युत हो तो कामिनी योग होता है। ऐसा व्यक्ति दीर्घायु और भाग्यशाली होता है।

अमरकयोग : यदि सप्तमेश और नवमेश बली होकर अन्योन्य स्थान में हों तो अमरक योग होता है। ऐसे जातक को स्त्री सुख अच्छा प्राप्त होता है और भाग्यशाली होता है। ५० वें वर्ष की अवस्था के बाद विशेष भाग्योदय होता है।

नालीकयोग : यदि लग्न से पंचम का स्वामी नवम में हो और लाभेश तथा चन्द्रमा लग्न से द्वितीय स्थान में हों तो नालीक योग होता है। ऐसा जातक अत्यधिक सम्मान प्राप्त करता है और दानशील होता है। ५० वें वर्ष की अवस्था के बाद विशेष समृद्धि होती है।

भद्रयोग : चन्द्रमा और बृहस्पति लग्न से द्वितीय में हों, लग्न से दूसरे स्थान का स्वामी लग्न से एकादश में हो और लग्नेश शुभ ग्रह से युत हो तो भद्र योग होता है। ऐसा जातक बुद्धिमान्, अपने कार्य में कुशल और सफल उच्च पदाधिकारी होता है। वैसे तो इस योग का सुप्रभाव समस्त जीवन काल में रहता है किन्तु विशेष प्रभाव ५० और ५३ वर्ष की अवस्था के बीच होता है।

धमयोग : यदि शनि अपनी उच्चराशि में लग्न से दशम स्थान में हो और मंगल जिस नवांश में हो उसका स्वामी, लग्न से नवम या पंचम में हो हो तो धूम योग होता है। यह उत्तम भाग्य योग है—इसका विशेष प्रभाव ५८ से ६७ वर्ष की अवस्था में होता है।

धर्मयोग : यदि बृहस्पति शुक्र और लाभेश नवम स्थान में हों और उनको द्वितीयेश पूर्ण दृष्टि से देखे तो धर्म योग होता

है। ऐसा व्यक्ति, दानी, संग्राम में रूचि रखने वाला और जयी होता है।

क्रोध योग : लग्न से एकादश स्थान के स्वामी की राशि वाले द्रेष्काण में यदि पंचमेश और राहु द्रेष्काण कुंडली में हों तो क्रोध योग होता है। ऐसा व्यक्ति क्रूर, बदला लेने वाला, साहसी, धनी और दानशील होता है।

गोलयोग : यदि पूर्ण चन्द्र, बृहस्पति और शुक्र नवम में हों, बुध लग्नेश के साथ हो या लग्नेश को पूर्ण दृष्टि से देखता हो या वर्ग कुंडली (नवांश आदि में) में लग्न में हो तो गोल योग होता है। ऐसा जातक विद्वान्, विनयान्वित, धनी और भू संपत्ति आदि से समृद्ध होता है।

मरुत् योग : यदि लग्न में शुभ ग्रह हो और लग्न से तृतीय षष्ठ या एकादश में राहु हो तो मरुत् योग होता है। ऐसा जातक पाप कर्म नहीं करता और उसको कभी विपत्ति नहीं होती।

श्रीमती योग : नवमेश और दशमेश का परस्पर स्थान विनिमय हो और लग्नेश नवमेश या दशमेश के साथ बैठा हो और उसपर बृहस्पति की दृष्टि हो तो श्रीमती योग होता है ऐसा जातक दीर्घायु, भाग्य शाली तथा उच्चाधिकारी होता है।

राजपद योग : यदि लग्न और चन्द्र दोनों वर्गोत्तम हों और उन्हें चार ग्रह देखते हों तो राजपद योग होता है। ऐसा जातक भाग्यवान् राजा के समान वैभव युक्त होता है।

शृंगाटक योग : यदि लग्न, नवम और पंचम में शुभ ग्रह हो तो शृंगाटक योग होता है। ऐसे जातक के जीवन काल को यदि ३ भागों में बाँटा जावे तो जीवन का पहला भाग कठिनाइयों में बीतता है, द्वितीय और तृतीत भागों में समृद्धि होती है।

त्रिलोचन योग : यदि सूर्य, चन्द्र और मंगल—तीनों पूर्ण बली होकर त्रिकोण में हों तो त्रिलोचन योग होता है। ऐसा जातक बुद्धिमान्, विद्वान्, धनी, समृद्ध और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला होता है।

क्षेम योग : यदि लग्न, अष्टम, नवम तथा दशम के स्वामी अपने-अपने स्थान में हों तो क्षेम योग होता है। ऐसा जातक दीर्घायु और भाग्यशाली होता है।

आयु योग : यदि लग्नेश, बृहस्पति और शुक्र केन्द्र में हो तो जातक दीर्घायु होता है।

धनाकर्षण योग : यदि लाभेश नवम में, नवमेश सप्तम में, सप्तमेश पंचम में और पंचमेश तृतीय हो तो धनाकर्षण योग होता है। ऐसा जातक अनेक उपायों से धनोपार्जन करता है।

जय योग : षष्ठेश नीच राशि का हो और दशमेश उच्च-राशि का हो तो जय योग होता है। ऐसा जातक संग्राम और विवाद में विजयी होता है।

वेडा जातक

प्रथमकल्लोल

निषेकाध्याय

प्रणम्य स्वगुरुं भक्त्या चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
तत्तु जन्मसमुद्रस्य-वृत्तिवेडां करोम्यहम् ॥ १ ॥

आश्रयः श्रेयसां सारो वरो विश्वेश्वरो वशी ।
सुरेशो सुस्वरो वीरः सश्रीवीरः शिवः श्रिये ॥ २ ॥

अनन्तयोगरत्नानां निधिर्गंभीरतावधिः ।
सुधीवराभिगम्योऽयं जन्मांभोधिः समुल्लसेत् ॥ ३ ॥

इसमें ग्रंथकार ने गुरु और देवताओं की वन्दना कर मंगलाचरण किया है और ज्योतिषशास्त्र—रूपी गंभीर समुद्र में रत्न हैं, उनमें से कुछ रत्नों का इस ग्रंथ में, ज्योतिष के योगों का प्रदर्शन करने का संकल्प किया है—जो विद्वानों के समझने योग्य हैं ।

लग्नाद्वेन्दोश्च यो भावः स्वामिना वा शुभैर्युतः ।
दृष्टोऽथ तस्य तस्याप्ति प्राहुर्जन्मनि नाक्रमे ॥ ४ ॥

लग्न और चन्द्रमा से जो-जो भाव अपने स्वामी तथा शुभ ग्रहों से युत या वीक्षित हो, उन उनकी प्राप्ति होती है ।

यदि इससे उलटा हो तो उन भावों की प्राप्ति नहीं होती। इस श्लोक के अर्थ में दो बातों की ओर ध्यान दिलाया जाता है :

(i) जितना जन्म-लग्न को महत्व देना उतना ही चन्द्र लग्न को। यदि जन्म लग्न से भाग्य-स्थान निर्बल हो और चन्द्र लग्न से नवम स्थान बलवान् हो तो जातक निर्भाग्य नहीं होगा। इसी प्रकार लग्न और चन्द्रमा दोनों से बारहवों भाव का विचार करना।

(ii) चाहे शुभ ग्रह हो या पापग्रह हो, अपने स्थान में (स्वराशि) में बैठकर, जिस अपने भाव में वैठा है, उस भाव को पुष्ट करता है। वहुत सी कुण्डलियों में, जिनमें चन्द्र लग्न बलवान् है और जन्म-लग्न निर्बल, चन्द्र लग्न से ही विशेष फल मिलता है। कुछ ज्योतिषियों का यह भी विचार है कि ३२ वर्ष केवद चन्द्र-लग्न का विशेप प्रभाव होता है।

शुक्रार्कारेन्दुभिः स्वांशेऽथाभ्यां चेवक्रमाद् भवेत्।
पुंस्त्री भोपचयस्थाभ्यां गर्भो वेज्येग कोणगे।। ५॥

(१) यदि शुक्र और सूर्य पुरुष की कुंडली में उपचय में अथवा मंगल और चन्द्र स्त्री की कुंडली में उपचय में हों (निषेक के समय) तो गर्भ रहता है। यदि सूर्य और शुक्र उपचय में रहते हुए या मंगल और चन्द्रमा उपचय में रहते हुए-पुरुष राशि में हों तो गर्भ-स्थित शिशु पुत्र होता है और यदि स्त्री राशि में हो तो कन्या होती है।

(२) चाहे उपचय में न भी हों, यदि सूर्य, शुक्र चन्द्र और मंगल अपने-अपने नवांश में हों तो गर्भ रहता है।

(३) यदि बृहस्पति लग्न, पंचम, या नवम में हो (निषेक समय के लग्न से) तो भी गर्भ रहता है।

लग्नेन्दुगैः शुभैः पुष्टो द्वाभ्यां केन्द्रार्थकोणगै।
त्र्यायस्थैश्च परैर्गर्भो वांगे वाब्जे रवीक्षिते ॥७॥

अब गर्भ पुष्टि अर्थात गर्भस्थ बच्चा पुष्ट और सबल होगा इसका योग बताते हैं। "यदि लग्न में या चन्द्रमा के साथ शुभ ग्रह हो अथवा लग्न से या चन्द्रमा से केन्द्र और त्रिकोण में और द्वितीय स्थान में शुभ ग्रह हों और पाप ग्रह तृतीय तथा ग्यारह स्थान में हों या लग्न या चन्द्रमा को सूर्य देखता हो तो गर्भस्थ शिशु पुष्ट होता है।

सितारेज्यार्क चन्द्रार्की ज्ञांगनाथेन्द्विना क्रमात्।
मासेशाः यो बली वृद्ध्यै स्वमासेच्युतयेऽन्यथा ॥७॥

निषेक काल से लेकर जन्मकाल तक के दस मासों के—प्रति मास का स्वामी निम्न लिखित ग्रह है।

१. शुक्र, २. मंगल, ३. बृहस्पति, ४. सूर्य, ५ चन्द्रमा ६, शनि ७ बुध ८ लग्नेश, ९ चन्द्रमा, १० सूर्य।

जिस मास का स्वामी बलवान् हो उस मास में गर्भ स्थिति पुष्ट रहती है। जिस मास का स्वामी निर्बल हो, उसमें गर्भ-च्युति की संभावना होती है।

निषेक-लग्न में यदि गर्भच्युति को सभावना हो, तभी गर्भ-स्राव की संभावना रहती है। निषेक-लग्न प्रायः ज्ञात नहीं होता है। ऐसी स्थिति में प्रश्न-लग्न से विचार किया जाता है। जन्म-कुंडली में भी जो ग्रह सन्तान-प्रतिबन्धक हो—उस ग्रह का जो मास हो, उसमें गर्भस्राव की सम्भावना होती है।

चेन्दोः क्रूरे सुखे चारे रन्ध्रेस्यात् गर्भिणी मृतिः ।
वास्तेऽर्कंगे कुजे शस्त्राद्वारे केन्त्ये रवौ तथा ॥ ८॥

अब सगर्भा स्त्री के नाश का योग कहते हैं—

(१) चन्द्रमा से पाप ग्रह चौथे हो और मंगल अष्टम में हो ।

(२) यदि सप्तम में सूर्य और मंगल लग्न में हो तो गर्भिणी की शस्त्र से मृत्यु हो (अर्थात प्रसव न हो सकने के कारण जो ऑपरेशन किया जावे, उससे)।

(३) यदि चतुर्थ में मंगल, द्वादश में सूर्य हो तो जो ऊपर (२ में) में बताया गया है वही फल जानें ।

केन्द्वारेक्ष्ये यमे सांगे वेष्टादृष्टेन्त्यगैः खलैः ।
वांगेन्दू पापमध्यस्थौ सौम्यादृष्टौ समं पृथक् ॥ ९ ॥

इसमें गर्भिणी की मृत्यु के तीन योग बताये गए हैं—

(१) क्षीण चन्द्रमा और मंगल दृष्ट शनि लग्न में हो ।

(२)यदि शुभ ग्रह लग्न को न देखते हों और पापग्रह द्वादश में हों ।

(३) यदि चन्द्रमा और लग्न पाप मध्य हों, और शुभ ग्रहों की चन्द्रमा और मंगल पर दृष्टि न हों ।

सूर्यादस्ते यमे वारे पुंसोः रुग्वा विधोस्त्रियः ।
स्वान्त्ये तथा स्वमास्यन्तेऽर्केऽब्जेऽथैकान्य युग्दृशि ॥१० ॥

अब गर्भाधान से प्रसव काल तक गर्भस्थ बालक के माता पिता का शुभाशुभ बताते हैं । इसमें छः योग बताये गए हैं—

(१) आधान लग्न कुंडली में जिस राशि में सूर्य हो उससे सप्तम में मंगल और शनि हो तो पिता को कष्ट होता है।

(२) यदि चन्द्रमा से सप्तम मंगल और शनि हो तो माता को कष्ट हो।

(३) सूर्य से दूसरे, बारहवें मंगल, शनि हों तो जिस गर्भमास का अधिपति मंगल, शनि हों (अर्थात् द्वितीय और छठे मास में) उस मास में पिता को मृत्यु-तुल्य कष्ट हो।

(४) चन्द्रमा से बारहवें, दूसरे मंगल-शनि हों तो मंगल और शनि के मास में (द्वितीय तथा छठे मास में) माता को मृत्यु-तुल्य कष्ट हो।

(५) सूर्य-मंगल, शनि इन दोनों में से एक से युत हो और एक से दृष्ट हो तो पिता को मृत्यु-तुल्य कष्ट।

(६) चन्द्रमा यदि मंगल-शनि में से एक से युत और एक से दृष्ट हो, तो माता को मृत्यु-तुल्य कष्ट हो।

ओजेऽर्के द्युनिशोर्जातो भव्यः पितृपितृव्ययोः।
निशाह्योस्तयोश्चार्कौ समर्क्षे वाशुभस्तथा॥ ११॥

द्युनिशोः समभे शुक्रे मातुर्मातृष्वसुः शुभः।
विषमर्क्षे च जातः स्यादशुभः क्रमतस्तयोः॥ १२॥

रात्रावोजे विधौ मातुर्दिवा मातृष्वसुः खलः।
चन्द्रेऽथ समभे जातो भव्यो ज्ञेयस्तयो स्तथा॥ १३॥

यदि दिन में निषेक या जन्म हो तो पिता संज्ञक सूर्य, मातृ-संज्ञक शुक्र, चाचा का संज्ञक शनि, माँवसी का संज्ञक चन्द्रमा होता है। यदि रात्रि में जन्म हो तो पिता-संज्ञक शनि, मातृ-

संज्ञक चन्द्रमा, चाचा का संज्ञक सूर्य, माँवसी का संज्ञक शुक्र होता है। यदि दिन में जन्म हो,, सूर्य विषम राशि में हो तो पिता को शुभ है ; यदि रात्रि में जन्म हो, सूर्य विषम राशि में हो तो चाचा को शुभ है। दिन में जन्म हो, सूर्य सम राशि में हो तो पिता को नेष्ट है। रात्रि में जन्म हो, सूर्य सम राशि में हो चाचा को नेष्ट है।

दिन में जन्म हो, शनि विषम राशि में हो तो काका को शुभ है। रात्रि में जन्म हो, शनि विषम राशि में हो तो पिता को शुभ। रात्रि में जन्म हो, शनि सम राशि में हो, तो पिता को नेष्ट है दिन में जन्म हो, शनि समराशि में हो, तो काका को नेष्ट है।

दिन में जन्म होने पर—

(i) शुक्र विषम राशि में हो तो माता को नेष्ट।
(ii) शुक्र सम राशि में हो तो माता को शुभ।
(iii) चन्द्रमा विषम राशि में हो तो माँवसी को नेष्ट।
(iv) चन्द्रमा समराशि में हो तो माँवसी को शुभ।

रात्रि में जन्म होने पर—

(i) चन्द्रमा विषम राशि में हो तो माता को नेष्ट।
(ii) चन्द्रमा सम राशि में हो तो माता को शुभ।
(iii) शुक्र विषम राशि में हो तो माँवसी को नेष्ट।
(iv) शुक्र सम राशि में हो तो माँवसी को शुभ।

लग्नार्केज्येन्दुभिः पुष्टै रोजेंशे ना समेङ्गना।
ओजेऽर्केज्यौ सुतो वांशे शुक्रेन्द्वारा युगेऽबला॥ १४॥

इसमें तीन योग बताये गए हैं। आधान के समय—

(i) यदि लग्न, सूर्य, चन्द्र बृहस्पति बलवान् हों पुरुष राशि पुरुष नवांश में हों तो पुत्र; यदि स्त्री राशि और नवांश में हों तो कन्या।

यदि कुछ पुरुष राशि, पुरुष नवांश में हों, कुछ स्त्री-राशि-स्त्री नवांश में हो तो अधिक पुरुष राशि, नवांश में हो तो पुत्र, अधिक स्त्री राशि, नवांश में हो तो कन्या।

(ii) यदि बृहस्पति, सूर्य पुरुष राशि में हो तो पुत्र।

(iii) यदि चन्द्र, मंगल, शुक्र समनवांश में हों तो कन्या।

एक अन्य टीकाकार के मतानुसार यदि लग्न, सूर्य चन्द्र बृहस्पति सब ओज राशि ओज नवांश में न हों या सब (ये चारों) स्त्री राशि स्त्री नवांश में न हों तो विषम (१, ३, ५, ७, ९, ११) स्थानों में लग्नेश सूर्य, बृहस्पति हों, तो पुत्र होता है। अर्थात् मेषादि गणना से वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन राशिवश जो सम राशि में बृहस्पति या सूर्य हों वे भी लग्न, तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम, एकादश भावों में पुत्र ही उत्पन्न करेंगे। चन्द्रमा और शुक्र कन्या ही उत्पन्न करेंगे, यदि सम राशि में हों; किन्तु, मंगल यदि सम राशि, विषम भाव (लग्न से १, ३, ५, ७, ९, ११ में) हो तो पुत्र प्रद होगा।

उपर्युक्त आधान योगों को प्रश्न लग्न में लागू करना चाहिये, क्योंकि आधान लग्न प्रायः ज्ञात नहीं रहता है।

द्वयंगांशे तौ तु ज्ञेक्षेण स्वपक्षे युगहेतवे।
लग्नर्ते विषमे मन्दे नुर्जन्म समभे स्त्रियः ॥ १५ ॥

इसमें दो योग बताये गए हैं :—

(१) यदि मिथुन या धनु नवांश में सूर्य और बृहस्पति हों और बुध से दृष्ट हो तो दो पुत्र (जुड़वाँ) होते हैं।

(२) यदि कन्या तथा मीन नवांश में शुक्र, चन्द्र, मंगल हों और बुध से दृष्ट हों तो दो कन्या (जुड़वीं)।

(३) यदि लग्न को छोड़कर विषम स्थान में अर्थात् तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम या एकादश में शनि हो तो पुत्र, अन्य स्थान में कन्या।

क्लीबोऽर्केन्दू मिथो दृष्टावोजस्त्रीभस्थितौ यदि।
ज्ञार्की चेत्थं नृभस्थारः स्त्रीभस्थार्कं तु पश्यति।। १६ ।।

इसमें तीन योग बताये गए है :

(१) यदि चन्द्रमा समराशि में हो और सूर्य विषम राशि और एक दूसरे को देखते हों तो क्लीव का जन्म होता है। एक दूसरे को जब सूर्य और चन्द्र देखेंगे तो दोनों सम या दोनों विषम राशि में होंगे।

(२) यदि शनि समराशि में हो, बुध विषम राशि में और एक-दूसरे को देखते हों तो क्लीब होता है।

(३) यदि मंगल विषम राशि में हो और सूर्य समराशि में हो और परस्पर पूर्ण दृष्टि हो तो क्लीव होता है।

ये योग वराहमिहिर ने भी बृहज्जातक अध्याय ४, श्लोक १३ में दिये हैं, परन्तु चन्द्र, सूर्य एक सम में, एक विषम में या शनि-बुध एक समराशि में. एक विषम राशि में वा सूर्य-मंगल एक सम राशि में एक विषम राशि में, हों तो एक-दूसरे को पूर्ण दृष्टि से नहीं देख सकते। योगों में जहाँ भी दृष्टि का उल्लेख है पूण दृष्टि से हो योग घटित होता है। ऐसा शिष्ट सम्प्रदाय है। परन्तु यहाँ जिन दो-दो ग्रहों की दृष्टि का उल्लेख है, उनमें एक सम राशि, एक विषम राशि में होने से, पूर्ण

दृष्टि के अभाव में त्रिपाद या अर्ध दृष्टि से योग घटित मानना चाहिये ।

वांगेंन्दू ओजगौ स्त्रीभस्थारेक्ष्यौ वा समौजगौ ।
इन्दुज्ञौ कुजदृष्टौ वा नरांशेंग सितेन्दवः ।। १७ ।।

इसमें तीन योग बताये हैं । इन तीनों में उत्पन्न बालक क्लीव होता है ।

(१) लग्न या चन्द्रमा विषम राशि में हो और उसको सम राशि स्थित मंगल देखता हो ।

(२) चन्द्रमा सम राशि में हो, और बुध विषम राशि में हो और इनको मंगल देखता हो ।

(३) लग्न, चन्द्रमा और शुक्र तीनों पुरुष नवांश में हों ।

युग्मे सितेन्दू अंगेन्दू पुंग्रहेक्ष्यौ तु युग्मदौ ।
ज्ञांगारेज्यसिताः पुंस्त्री भस्थाः स्युः मिथुनप्रदाः ।। १८ ।।

इसम चार योग बताये गए हैं जिसमें युग्म—दो बच्चे (जुड़वाँ)—होते हैं ।—[1]

१. यदि चन्द्रमा और शुक्र सम राशि में हों और उनको पुरुष ग्रह देखता हो ।

२. यदि लग्न और चन्द्रमा सम राशि में हों और उनको पुरुष ग्रह देखता हो ।

---

१. हमारा अनुभव है कि जहाँ माता-पिता दोनों की कुंडली में मिथुन लग्न होता है या माता-पिता की कुण्डली में चन्द्रमा, सूर्य आदि कई ग्रह मिथुन में होते हैं (विशेषकर चन्द्रमा) उनके जुड़वाँ बच्चे होते हैं ।

३. यदि लग्न मंगल, बुध, बृहस्पति और शुक्र पुरुष राशि में हों तो दो पुत्र (यमल)।

४. यदि लग्न, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र स्त्री राशि में हों तो दो कन्या (यमल)।

ज्ञः पश्यन् मिथुनांशस्थो द्वयंगांशस्थान् ग्रहोदयान्।
गर्भे सुतैका पुत्रौ द्वौ वास्त्र्यंशस्थः सुतः सुते ॥ १६ ॥

१. यदि ग्रह (मंगल, बृहस्पति आदि) और लग्न द्विस्वभाव नवांश में हों और उनको मिथुन नवांश में स्थित बुध देखता हो तो दो पुत्र और एक कन्या—तीन बच्चे एक साथ (जुडवाँ) होते हैं।

२. यदि ग्रह (मंगल, बृहस्पति आदि) और लग्न द्विस्वभाव नवांश में हो और उनको कन्या नवांश स्थित बुध देखता हो तो दो कन्या, एक पुत्र (तीन बच्चे एक साथ जुड़वां) होते हैं।

नृयुग्मांशो वा नृयुग्मास्त्रांशगांश्च सुतत्रयम्।
स्त्र्यंशस्थो मीनकन्यांश गतांस्ताश्चांगनात्रयम् ॥ २० ॥

इसमें दो योग बताये गए हैं :—

१. यदि ऊपर जो ग्रह बताये गए हैं वे और लग्न मिथुन या धनु नवांश में हों और उनको मिथुन नवांश स्थित ग्रह बुध देखता हो, तो (जुड़वाँ) तीन पुत्र होते हैं।

२. यदि ऊपर जो ग्रह बताये गए हैं, वे और लग्न कन्या या मीन नवांश में हों और उनको कन्या नवांश का बुध देखता हो, तो तीन (जुड़वां) कन्याएँ हों।

चापस्याऽन्त्येंगगे वांशे बलिज्ञार्कीक्षिते ग्रहैः ।
चान्यैः ग्रहैस्तु कोशस्थाः पञ्च सप्त दशांगजाः ॥२१॥

पिछले श्लोक में तीन जुड़वां बच्चों के उत्पन्न होने का योग बताया गया है । अब तीन से अधिक बच्चों के उत्पन्न होने का योग बतलाया जाता है ।

यदि धनु राशि और धनु नवांश, लग्न में हो अर्थात् लग्न धनु हो और लग्न के अंश २६-४० से ३० तक हों, मंगल बृहस्पति धनु नवांश में हों और बली बुध तथा बली शनि लग्न को पूर्ण दृष्टि से देखें तो कई—तीन से अधिक जुड़वां बच्चे होते हैं ।

कोणस्थेज्ञेऽबलैरन्यैर्द्विगुणांघ्रिकराननाः ।
भसंधिस्थैः खलैरिन्दौ गोस्थे पापेक्षिते ह्यवाक् ॥ २२॥

इसमें दो योग बताये हैं—

(१) यदि पंचम या नवम में बुध हो और अन्य ग्रह निर्बल हों तो मुख, चरण, हस्त आदि दुगने होते हैं । पेट एक हो ।

(२) यदि पाप ग्रह भसंधि में हों अर्थात् कर्क, वृश्चिक तथा मीन के अन्तिम नवांश में हों और पपग्रहों से दृष्ट चन्द्र वृषभ राशि में हो, तो उत्पन्न बच्चा गूँगा होता है । हमारे विचार से, वृश्चिक के अन्तिम नवांश में स्थित पाप ग्रह ही वृषस्थ चन्द्र को पूर्ण दृष्टि से देख सकते हैं । कर्क-स्थित पाप ग्रह वृषस्थ चन्द्र को नहीं देख सकते । मीन राशिस्थ ग्रहों को भी वृषस्थ चन्द्र (केवल शनि की पूर्ण दृष्टि तृतीय पर हो सकती है) पर पूर्ण दृष्टि नहीं होगी । वृहज्जातक के मतानुसार वृष का चन्द्र तथा भसंधि में पाप ग्रहों की स्थिति मात्र से गूँगे बालक का जन्म

होता है। यदि चन्द्रमा पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो बच्चा देर से ३-४ वर्ष की अवस्था में बोलने लगता है।

ज्ञस्यभस्थौ तदंशस्थौ भौमार्की दंतसंयुतः।
स्वर्क्षे चन्द्रेंगगे दृष्टे वार्किणारेण कुब्जकः ॥२३॥

इसमें दो योग बताये हैं—

(१) यदि मंगल और शनि दोनों बुध की राशि, बुध के नवांश में हों, तो बच्चा दाँत-सहित जन्म लेता है। अर्थात् जब बालक उत्पन्न हो तो दाँत भी हों।

(२) यदि कर्क राशि का चन्द्रमा लग्न में हो और उसको मंगल तथा शनि दोनों पूर्ण दृष्टि से देखें तो कुब्ज (कुबड़ा) होवे।

मीनांगे शतिशश्यारैर्दृष्टे पंगुस्तु गर्भगः।
कर्कालि मीनांत्यांशस्थे पापे चेन्दौ सविश्रुतिः ॥२४॥

इसमें दो योग बताये हैं—

(१) यदि मीन लग्न हो और उसे चन्द्रमा, मंगल तथा शनि देखते हों तो गर्भस्थ शिशु पंगु (लंगड़ा) होता है।

(२) यदि कर्क, वृश्चिक और मीन इन राशियों के अन्तिम नवांश में पाप ग्रह हों और चन्द्रमा पाप ग्रह की राशि में हो तो गर्भस्थ शिशु बहरा होता है। 'बृहज्जातक' के अनुसार यदि सब पापग्रह और चन्द्रमा खण्डान्त कर्क वृश्चिक और मीन के अंतिम नवांश में हों तो गर्भस्थ शिशु बधिर होता है। किन्तु ऐसा तभी होगा जब शुभ ग्रहों की दृष्टि पापकर्ता ग्रहों पर न हो।

सिहांगेऽर्के कुजार्कीक्ष्ये चांत्यस्थे निरवामदृक् ।
एवं चेन्दौ विवामाक्षो द्वयोर्मिश्रेक्ष्ययोः कुदृक् ॥ .५॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं—

(१) यदि सिंह लग्न हो, लग्न में चन्द्रमा हो, उसे मंगल और शनि देखते हों तो गर्भस्थ शिशु दाहिनी आँख से अन्धा हो ।

(२। यदि सिंह लग्न हो, लग्न में चन्द्रमा हो, उसे मंगल और शनि दोनों देखते हों तो जो बालक पैदा हो वह वाम नेत्र (बाँई आँख) से काना हो '

(३) यदि सिंह लग्न हो, लग्न में सूर्य और चन्द्रमा हों और उनको मंगल तथा शनि दोनों देखते हों, तो गर्भस्थ शिशु दोनों नेत्रों से अन्धा हो ।

अन्य ग्रन्थों के अनुसार, विराट् पुरुष का दक्षिण नेत्र सूर्य है और वाम नेत्र चन्द्रमा है, इसलिये किसी कुंडली में सूर्य या द्वितीय स्थान जन्म-लग्न से द्वितीय) पाप-युक्त पाप-दृष्ट हो तो दक्षिण नेत्र को हानि करता है । चन्द्रमा और लग्न से द्वादश स्थान यदि पापयुक्त, पाप-दृष्ट हो तो वामनेत्र को बिगाड़ता है । यद्यपि दैत्य गुरु, शुक्र, शुभ ग्रह हैं किन्तु छठे, आठवें, दूसरे या द्वादश स्थान में नेत्र-विकार करते हैं ।

पापेन्द्वीक्ष्ये शुभा दृष्टे लग्नादि त्र्यंशगे कुजे ।
तत्काले विशिरो बाहुक्रमः स्यात् क्रमतो ध्रुवम् ॥२६॥

इसमें तीन योग बताये हैं—

(१) निषेक-काल में यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण उदित हो और उसमें मंगल हो तथा पाप ग्रह और चन्द्रमा उसे देखते हों

तो विना सिर का बच्चा होता है।

(२) निषेक-काल में यदि द्वितीय द्रेष्काण उदित हो और उसमें मंगल हो तथा पाप ग्रह और चन्द्रमा उसे देखें तो गर्भस्थ शिशु विना भुजा के हो।

(३) निषेक-काल में यदि तृतीय द्रेष्काण उदित हो और उसमें यदि मंगल हो और उसे पापग्रह और चन्द्रमा देखें तो पैर न हों।

इस प्रसंग में गार्गी का एक वचन उद्धृत करते हैं—

लग्नद्रेक्काणगो भौमः सौरसूर्येन्दुवीक्षितः।
कुर्यात् विशिरसं तद्वत् पंचमे भुजवर्जितम्।
विपादं नवमस्थाने यदि सौम्यैर्न वीक्षितः॥

अर्थात् यदि द्रेष्काण कुंडली में लग्न द्रेष्काण में मंगल हो और उसे सूर्य, चन्द्र और शनि देखते हों तो विना सिर का हो। इसी प्रकार यदि लग्न में द्वितीय द्रेष्काण उदित हो और पंचम में (लग्न में जो द्वितीय द्रेष्काण राशि होगी वह लग्न से पंचम राशि होगी) मंगल हो और उसे सूर्य, शनि तथा चन्द्रमा देखते हों तो जातक भुजाहीन हो। यदि लग्न में तृतीय द्रेष्काण और नवम में (लग्न में तृतीय द्रेष्काण वही राशि होगी जो लग्न से नवम राशि होगी) मंगल हो, उसको सूर्य, शनि तथा चन्द्र देखते हों तो बिना पैर का बालक होता है।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि पापग्रह बलवान् न हों तो बिना सिर का तो न होगा, किन्तु जातक विकृत सिर (सिर खराब प्रकार का या जड़, मूर्ख) हो सकता है; बिना भुजा के तो न होगा, लेकिन हाथों से कार्य करने में सक्षम न हो। भुज कार्य-हीन व्यक्ति को भी भुजा हीन कहते हैं। बिना पैर के तो न होगा,

लेकिन पैर सक्षम नहीं होंगे ।

मृगांत्यांशेंगगेर्केन्दु शनीक्ष्ये वामनो मतः ।
एतेप्युक्तफला योगाः यदि सौम्यैर्न वीक्षिताः ॥२७॥

यदि मकर का अन्तिम नवांश निषेक लग्न के समय उदित हो और उसे चन्द्रमा, सूर्य और शनि देखें तो जातक वामन (बौना) होता है। मूल संस्कृत श्लोक में 'मृगांशांत्य' शब्द आया है किन्तु वराहमिहिर ने 'मकरान्त्य' लिखा है जिसके दो अर्थ हो सकते हैं—मकर का अन्तिम नवांश तथा मकर या मीन लग्न ।

२२वें श्लोक से २७ वें श्लोक तक, हाथ-पैर दुगुने हों, गूँगा, दाँत सहित जन्म, कुब्ज पंगु, वधिर, नेत्र दोष वाला या अंधा, विकृत सिर, विकृत बाहु, चरणहीन, बौना आदि के योग बताए गए हैं। इन सब योगों के विषय में कहते हैं कि यदि दोषकारक ग्रहों के ऊपर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो, केवल तभी विकृत अंग वाले बालकों का जन्म होता है। यदि दोषकारक ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो विकृत अंग वाले बच्चों का जन्म नहीं होता ।

ये सब योग गर्भाधान की कुण्डली में लगाये जाते हैं. किन्तु गर्भाधान का ठीक समय, लग्न, द्रेष्काण आदि ज्ञात नहीं होता है। इसलिये इन योगों को प्रश्न-कुण्डली पर भी लागू करते हैं।

लग्नांशकाः स्युर्यावन्त स्तावन्तो गर्भमासकाः ।
सुताद्वांगाद्बली शुक्रो यावद् गेहोऽथ तन्मिताः ॥२८॥

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) यदि कोई यह प्रश्न करे कि अमुक स्त्री के पेट में कितने महोने का गर्भ है तो प्रश्न लग्न बनाकर, जितने नवांश बीत गये हों गर्भ के उतने मास व्यतीत हो चुके, यह कहना।

(२) लग्न वा पंचम से जितने घर बली शुक्र आगे हो, उतने मास गर्भ के बीत चुके, यह दूसरा प्रकार है।

यतमे द्वादशांशेब्जः सूतिस्ततमे संख्यभे विधौ।
यतमा द्युरात्रि लग्नांशास्तत्काले द्युनिशोर्भवेत् ॥२६॥

इसमें दो योग बताये हैं :—

(१) निषेक-काल या प्रश्न-काल में जिस द्वादशांश में चन्द्रमा हो, उस संख्या की राशि में जब गोचर वश चन्द्रमा आवे, तब जन्म होगा। अन्य अर्थ करते हैं कि चन्द्रमा जितनी संख्या के द्वादशांश में हो, उस राशि (चन्द्र स्थित राशि) से उतनी संख्या—(द्वादशांश-तुल्य संख्या राशि) में चन्द्रमा के आने पर जन्म होता है।

(२) निषेक या प्रश्न-लग्न दिवा-लग्न है या रात्रि-लग्न है, यह विचार करे। मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु तथा मकर रात्रि राशियाँ हैं। सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुंभ, मीन दिवा राशियाँ हैं। प्रश्न या निषेक लग्न के जितने अंश बीत चुके हों—यदि दिवा लग्न हो तो दिन में सूर्योदय के उतनी घड़ी के बाद—यदि रात्रि लग्न हो तो सूर्यास्त के उतनी घड़ी के बाद जन्म होगा। लग्न के ३० अंश होते हैं। दिनमान तीस घड़ो माना है। रात्रिमान भी ३० घड़ी माना है। दिनमान या रात्रि-मान ३० से कम या अधिक हो तो त्रैराशिक से घड़ी निकाल लेना चाहिए।

लग्ने यमांशे मन्देऽस्ते निषेकश्चेत् समात्त्रयात् ।
सूतिः कर्कांशकेंगस्थे चन्द्रेऽस्ते द्वादशाब्दके ।।३०।।

इसमें दो योग बताए हैं :—

१. यदि निषेक के समय मकर या कुंभ नवांश हो और लग्न से सप्तम स्थान में शनि हो तो गर्भाधान के तीन वर्ष बाद बच्चा उत्पन्न होता है।

२. यदि गर्भाधान के समय कर्क नवांश हो और चन्द्रमा लग्न से सप्तम हो तो गर्भाधान से बारह वर्ष बाद बच्चे का जन्म होता है।

वराहमिहिर ने लिखा है कि निषेकाध्याय जो योग दिए गए हैं–यथा शरीर के किसी अवयव का विकृत होना, उनको जन्म-कुंडली में भी युक्तिपूर्वक लागू करना चाहिए। युक्ति-पूर्वक से तात्पर्य यह है कि जुड़वा बच्चे आदि तो नहीं हो सकते—क्योंकि बालक जन्म ले चुका है—अकेला हो हुआ है किन्तु नेत्र-विकार, बधिरता बहरापन आदि दोष बालक में शीघ्र या बाद में उत्पन्न हो सकते है।

पितृतीर्यगधः स्वर्गात् सार्केन्दौ त्र्यंशपे क्रमात ।
शुक्रेन्द्वर्कारयोः ज्ञार्क्यो गुरावुच्चाद्य आगतः ।।३१।।

बली सूर्य या चन्द्रमा का द्रेष्काण स्वामी यदि चन्द्रमा या शुक्र हो तो जातक पितृलोक से आया है; यदि सूर्य या मंगल हों तो पशु, पक्षी योनि से आया है; यदि बुध या शनि हो तो नरक से आया है और यदि बृहस्पति हो तो स्वर्ग से आया है।

यदि उपर्युक्त ग्रह उच्च का हो तो उच्च कक्षा से, यदि नीच राशि में हो तो नीची कक्षा से आया है।

'फलदीपिका' (भावार्थ बोधिनी, अध्याय १४) में जीवन के पूर्ववृत्त और आयु-समाप्ति होने पर किस लोक को जावेगा, किस योनि (मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप) में जन्म होगा, इसका सविस्तर वर्णन किया गया है। पाठक अवलोकन करें।

इस प्रकार इस अध्याय में ६६ योग हैं।

द्वितीय कल्लोल

सूतिकाध्यायः

अपार्श्वस्थ पितुर्जन्म चन्द्रे लग्नमपश्यति ।
योगे यमेऽथवारेऽस्ते वेन्दौ मध्ये ज्ञशुक्रयाः ॥

इस सूतिकाध्याय में सर्वप्रथम उन योगों को देते हैं जिनसे यह निश्चय करना कि जहाँ बच्चे का जन्म हुआ, उस घर में, जन्म के समय जातक का पिता विद्यमान था या नहीं ।

नीचे इस सम्बन्ध में, पिता की अनुपस्थिति में जन्म होने के चार योग दिये जाते हैं—

(१) यदि चन्द्रमा जन्म-लग्न को न देखता हो ।

(२) शनि यदि लग्न में हो ।

(३) मंगल यदि सप्तम में हो ।

(४) चन्द्रमा यदि बुध और शुक्र के बीच में हो ।

परश्वदेशाध्वस्थस्य निखेऽर्के चरभादिगे ।
सूर्यात्पापक्षं कोणास्ते पापयोर्बंधनं पितुः ॥२॥

इसमें दो योग बताये हैं—

(१) ऊपर जो योग दिया है कि चन्द्रमा लग्न को न देखता

हो उसी सम्बन्ध में कहते हैं कि यदि सूर्य दशम स्थान को—लग्न से दशम भाव को पार कर गया हो (अर्थात् नवम, अष्टम आदि भाव में हो) और सूर्य चर राशि में तो यह कहे कि जन्म के समय पिता विदेश में था। यदि स्थिर राशि में सूर्य हो और दशम भाव को पार कर नवम आदि भाव में हो तो पिता स्वदेश (जन्म के देश) में था किन्तु घर पर नहीं था। यदि ऐसी स्थिति में सूर्य द्विस्वभाव राशि में हो तो पिता मार्गस्थ था।

(२) यदि सूर्य से पंचम, सप्तम या नवम में पाप राशि में पापग्रह हों तो जातक के जन्म के समय पिता बंधन में हो। सूर्य यदि भुजग, पाश या निगड़ द्रेष्काण में हो तो साक्षात् (कारागार, हवालात आदि में) बँधा हुआ हो। यदि अन्य द्रेष्काण में हो तो कार्य में फँसे रहने के कारण स्वातन्त्र्यहीन। निगड़, पाश, भुजग द्रेष्काण कौन-कौन से होते है, इसके विवरण के लिए देखिये अध्याय ४, श्लोक १६ की व्याख्या।

गोऽजसिंहांगगे मन्दे कुजे वा नालवेष्टितः।
कालपुंस्थोदयांशर्क्षे समगात्रेऽजनिष्ट सः ॥३॥

इसमें दो योग बताये हैं—

(१) (क) यदि लग्न में—मेष वृष या सिंह राशि में शनि या मंगल हो तो बच्चा जन्म के समय नालवेष्टित (नाल से लिपटा हुआ) होता है।

(२) लग्न में जो नवांश हो वह नवांश राशि काल पुरुष के जिस अंग में होती है (मेष शिर वृष मुख, मिथुन कंठ, बाहु कर्क वक्षस्थल आदि) उस अंग में नाल लिपटी होती है

यदि उपर्युक्त योग में शनि बलवान् हो तो जातक तंत्रानुष्ठानादि व्यापार-सहित, होता है; यदि शनि बलहीन हो तो

सेवा (मालिश) आदि करता है। यदि शूद्रादि में जन्म हो तो मछली पकड़ने के जाल आदि बनाना या सुतली, रस्सी आदि का कार्य करे। यदि मंगल बलवान् हो तो बिजली के तार, स्वर्ण-मेखला आदि के निर्माण का कार्य करे।

तिर्यगभेऽर्के परैद्व्यंगे यमलौ कोषवेष्टितौ।
चन्द्रे सेज्येऽन्यराशिस्थे वेज्यवर्गे न जारजः ॥४॥

अंगं चेन्दुद्वयं वेन्दुं सार्कं वेज्यो न वीक्षते।
वेन्द्वर्कौ सखलौ पश्येद्वा, न चेज्जार योगजः ॥५॥

इन दो श्लोकों में चार योग बताये हैं—

(१) यदि सूर्य चतुष्पद राशि में हो और अन्य ग्रह द्वितनु राशियों में केन्द्र में हों तो जुड़वाँ बच्चे एक हो कोष (थैली) मे होते हैं। सूर्य का केन्द्र में होना आवश्यक नहीं है अन्य ग्रह जो द्वितनु राशियों में हों उनका उभय (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) राशि स्थित होकर केन्द्र में होना आवश्यक है।

मेश, वृष, सिंह, धनु का उत्तरार्ध, मकर का पूर्वार्द्ध चतुष्पाद राशियां हैं। यदि ऐसा जातक जीवित रहता है तो धनी होता है।

(२) यदि लग्न को या चन्द्रमा को वृहस्पति न देखे चाहे लग्न में चन्द्रमा हो या लग्न के अतिरिक्त भाव में चन्द्रमा हो तो जातक जारज होता है अर्थात् अपने पिता के अतिरिक्त-अन्य पुरुष से उत्पन्न होता है। इस नियम के निम्नलिखित अपवाद हैं—

यदि लग्न स्पष्ट या चन्द्र स्वष्ट वृहस्पति की राशि, देष्काण नवांश द्वादशांश, त्रिशांश में न हों तभी बच्चा जारज होता है।

यदि गुरु (बृहस्पति) की राशि या वर्गों में हो तो जारज नहीं होता। गार्गि का वाक्य है—

गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वान्यराशिगे।
तद् द्रेक्काणे नवांशे वा न परैर्जात इष्यते ॥

अर्थात् चन्द्रमा यदि बृहस्पति की राशि में हो, बृहस्पति के साथ हो, बृहस्पति के द्रेष्काण या अंश हो तो जातक दूसरे से (अपने पिता के अतिरिक्त अन्य पुरुष से) उत्पन्न नहीं होता।

(ख) यदि चन्द्रमा और सूर्य एक राशि में हों तो जातक जारज नहीं होता।

(ग) यदि चन्द्रमा और सूर्य एक साथ हों किन्तु साथ में कोई पापग्रह भी हो तो उपर्युक्त नियम (ख) लागू नहीं होता। किन्तु यदि बृहस्पति इन्हें देखे तो जारज नहीं होता।

रुद्र भट्ट कहते हैं कि चन्द्रमा पापग्रह के साथ एकांश (उसी अंश-नवांश) में हो और सूर्य और चन्द्रमा एक राशि में हों तो जारज कहना, यदि बृहस्पति उनको देखे तो पति की अनुज्ञा से ऐसा हुआ है। यदि लग्न में सूर्य हो, चन्द्रमा पाप ग्रह सहित हो, बृहस्पति से न देखा जावे तो माता का ही दोष है, यह समझना। यदि पाप ग्रह अति बलवान् हो तो अपवाद मात्र समझना। किस प्रकार के जार से यह बालक उत्पन्न है इसका निश्चय लग्न से नवम स्थित ग्रह से, नवमेश से, सूर्य से—जो ग्रहों का स्वरूप, स्वभाव, जाति आदि दिये गये हैं उनसे निश्चय करना चाहिये। ग्रहों की जाति स्वभाव सूर्य आदि के लिये देखिये 'फलदीपिका' (भावार्थ बोधिनी)।

जारज बालक प्रायः दूसरों के कार्य, व्यापार आदि से आजीविका उपार्जन करता है।

पूर्णेन्दौ स्वगृहेंऽगे तुर्ये जीवे तरौ गतः ।
वाप्यंगेऽस्ते विधौ नौस्थे वात्र संवुन्ध्यथाजले ॥६॥

इसमें तीन योग बताये गये है—

१. यदि चन्द्रमा पूर्ण हो (पूर्णिमा का) और कर्क राशि में हो, बुध लग्न में हो, चतुर्थ में बृहस्पति हो तो नौका या जहाज में जन्म हो ; जलमध्य प्रदेश, टापू इत्यादि में जन्म हो सकता है।

२. यदि जलराशि लग्न में हो और सप्तम में चन्द्रमा हो तो भी जल मध्य प्रदेश या नौका में जन्म हो। कर्कट, मीन तथा मकर का उत्तरार्द्ध जलराशियाँ हैं।

३. चन्द्रमा जल राशि में चतुर्थ या दशम में हो तो जल के समीप जन्म हो।

इन योगों में उत्पन्न व्यक्तियों की समुद्र-पार यात्रा होती है।

आप्यांगे वाप्यंभस्थोऽब्जस्तत् तदगोवेक्षतेऽम्भसि ।
लग्ने चन्द्रे व्यये मन्दे पापेक्ष्ये गुप्तिमन्दिरे ॥७॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

१. यदि लग्न जलराशि में हो और चन्द्रमा जल राशि में स्थिर होकर लग्न को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो जल में (नौका, जहाज़, जलमध्य प्रदेश में) जन्म हो।

इस योग में उत्पन्न व्यक्ति जल-यात्रा करता है और सलिल द्रव्य सम्पादन (जल में उत्पन्न पदार्थ मोती, मूँगा, सीप, सिंघाड़ा, नौका या जहाज का कारबार, सलिल-पार देशों से

वस्तु का आयात-निर्यात, ज़लमय पदार्थ-सोडा वाटर, लेमोनेड, कोका कोला, बरफ शरबत आदि) नल (पानी वाहक आदि कार्यों) में कुशल होता है। कृषि-कार्य, वापी, कूप, तड़ाग आदि भी जल-कार्य के अन्तर्गत आते हैं।

२. यदि लग्न में चन्द्रमा ही, बारहवें घर में शनि हो और पापग्रह से वीक्षित हों तो बन्धनागार में या कार्यवश कहीं रुक जाने पर प्रसव हो।

कर्कालिमन्दगे लग्ने चन्द्रेक्ष्ये विवराश्रितः।
ज्ञार्केन्द्वीक्ष्येऽबुंभे चार्कौ क्रीडाचैत्यरजो भुवि ॥८॥

इसमें चार योग बताये हैं—

१. यदि कर्क या वृश्चिक लग्न हो, लग्न में शनि हो, चन्द्रमा उसको पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो गड्ढे या खाई में जन्म हो। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति कुँए, तालाब, बाग आदि के व्यापार से जीविका उपार्जन करता है।

२. यदि लग्न जल राशि में हो और लग्न में शनि हो।
(क) लग्न को सूर्य देखता हो तो मन्दिर में जन्म हो।
(ख) लग्न को बुध देखता हो तो क्रीड़ा-भवन में जन्म हो।
(ग) लग्न को चन्द्रमा देखता हो तो ऐसी भूमि में जन्म हो जहाँ खारी (लवण) भूमि में अधिक हो।

पुंलग्नगं यमं पश्येदर्कादिश्चैत्य गोकुले।
वरे श्मशाने शिल्पीये गृहे वह्नि गृहे वटे ॥६॥

इसमें छः योग बताये गये हैं—
यदि नृलग्न हो अर्थात् मिथुन, कन्या, तुला, धनु का पूर्वार्द्ध

या कुम्भ और लग्न में शनि हो और उसे—

१. सूर्य देखे तो राज-भवन, देवालय या गोशाला में जन्म हो ;

२. चन्द्रमा देखे तो रम्य प्रदेश में जन्म हो;

३. मंगल देखे तो श्मशान में जन्म हो;

४. बुध देखे तो शिल्पशाला में जन्म हो;

५. बृहस्पति देखे तो अग्निहोत्र के स्थान में या ब्राह्मण के घर में जन्म हो।

६. शुक्र देखे तो सुन्दर स्थान में, राज दरबार, मन्दिर में या गोशाला में प्रसव हो। यदि १ योग हो तो जातक राज के कार्यों में संलग्न रहता है; २ योग हो तो सुन्दर स्थान में रहता है; ३ योग हो तो अपने जीवन-काल में बहुत से शवों का दाह करता है; ४ योग हो तो शिल्प के कार्य यें रत रहता है और कल-कारखाने, फैक्टरी के पास निवास करता है; ५ योग हो तो अग्निहोत्रादि, धार्मिक कार्यों में संलग्न रहता है या बैंक आदि के कार्य से सम्बद्ध होता है (६) रमणीय प्रदेश में निवास करता है।

पितृमातृगृहेऽर्कार्क्यो र्बलिष्ठे चेन्दुशुक्रयोः ।
क्रमाज्जातः शुभैर्नीचैर्नदी कूपद्रुमादिषु ।।१०।।

यदि सूर्य और शनि बली हों तो पिता के घर जन्म; यदि चन्द्रमा और शुक्र बली हों तो माता के घर जन्म। यदि सौम्य ग्रह नीच हों तो वृक्ष के नोचे, नदी या कूप के पास जन्म कहना चाहिये।

सुखेऽब्जे चार्किभांशे वार्कीक्ष्ये सार्कौ तु वा झषे।
कर्के वाथ तदन्त्यांशे वार्कादृष्टे तमस्यपि ॥११॥

इसमें पाँच योग बताये हैं—

(१) यदि शनि की राशि और नवांश में चन्द्रमा हो, या

(२) यदि चतुर्थ में चन्द्रमा हो, या

(३) यदि शनि चन्द्रमा को देखता हो, या

(४) जल-राशि में चन्द्रमा हो या जल-राशि के नवांश में हो; या

(५) चन्द्र और शनि एक साथ हों, तों अन्धकार में जन्म हुआ।

अन्य विद्वान् इन पाँच योगों के स्थान में तीन योग ही मानते है—

(१) चन्द्रमा यदि चतुर्थ में शनि की राशि और नवांश में हो; या

(२) चन्द्रमा किसी भी भाव में हो, किन्तु जल-राशि में हो और शनि से दृष्ट हो; या

(३) चन्द्रमा और शनि एक साथ हों तो अन्धकार में जन्म होता है।

यवनेश्वर के मत से उपर्युक्त योगों में से कोई योग हो और सूर्य भी चन्द्रमा को देखता हो तो अन्धकार में जन्म नहीं होता।

जातस्तमिस्त्रे यति नार्क दृष्टे।

ज़ब चन्द्रमा को सूर्य देखे तो, जिस कमरे में रोशनी जल

---

१. यहाँ कर्क और मीन को जलराशि लिया गया है।

लग्नेन्दू एकगैर्दृष्टौ सजने विजनेऽदृशौ ।
नीचेंगगेंबुगें चन्द्रे नीचैस्त्र्याद्यैस्तु भूगतः ॥१२॥

इसमें चार योग बताये गये हैं—

(१) यदि सब ग्रह (चन्द्र के अतिरिक्त) एक राशि में हों और लग्न तथा चन्द्रमा को न देखें (न लग्न को देखें, न चन्द्रमा को देखें) तो विजन (निर्जन) स्थान में जन्म होता है ।

(२) यदि ग्रह लग्न या चन्द्रमा को देखता हो तो सजन (जहाँ अन्य व्यक्ति उपस्थित हों) स्थान में जन्म होता है ।

(३) यदि नीच राशि का चन्द्र लग्न या चतुर्थ स्थान में हो तो जमीन में जन्म ।

(४) यदि तीन या अधिक ग्रह नीच राशि के हों तो भूमि पर जन्म ।

यहां एक शंका उठती है कि यदि चन्द्रमा के साथ कोई ग्रह हो, या लग्न के साथ अर्थात् लग्न में कोई ग्रह हो तो—एक ही राशि में रहने से तो दृष्टि मानी नहीं जाती, इसलिये चन्द्रमा के साथ या लग्न में ग्रह होने से दृष्टि के अभाव में क्या उपयुक्तयोग (१) लागू होगा ? इस शंका का निवारण करते हुए कहते हैं—

"योगे दृष्टिफलं योज्यं दृष्टौ योगफलं तथा ।"

अर्थात्, जहाँ दो ग्रहों की परस्पर दृष्टि(पूर्ण दृष्टि)हो वहाँ युति का फल समझना चाहिते और जहाँ दो ग्रहों की युति हों, वहाँ उनकी दृष्टि का जो फल कहा गया है वह भी लागू करना चाहिये । इस सिद्धान्तानुसार यदि चन्द्रमा या लग्न ग्रह युत हो तो उपर्युक्त योग (१) लागू नहीं होगा ।

रुद्रभट्ट कहते हैं कि अन्धकार में जन्म, या भूमि पर जन्म के जो योग दिये गये हैं उन्हें भोजन, सुरत आदि के प्रश्नों पर

प्रश्न-कुण्डली में भी लागू करना चाहिये। यदि नीच राशि का चन्द्रमा लग्न में हो, सुरत का प्रश्न हो तो भूशयन कहना।

भूमि में जन्म होने के योग में जिसका जन्म होता है, उसको जीवन में शय्या-सौख्य नहीं होता।

आरेक्ष्येर्के बली दीपः कृतस्तार्णोऽबलैः परैः।
स्थाने गांशसमे स स्यात् चरे मार्गे स्थिरे गृहे ॥१३॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं—

(१) यदि बली सूर्य मंगल से दृष्ट हो तो जन्म-स्थान में दीपक हो।

(२) अन्य निर्बल ग्रह सूर्य को देखें तो तृण को जलाने से प्रकाश किया गया हो।

(३) यदि चर राशि चर नवांश हो तो मार्ग में प्रसूति। यदि स्थिर राशि स्थिर नवांश में हो तो घर में प्रसव। मार्ग से अपने घर के अतिरिक्त स्थान में—यह अर्थ लेना। द्विस्वभाव राशियों का पूर्वार्द्ध स्थिर और उत्तरार्द्ध चर होता है। यदि राशि बली हो तो राशि से विचार करना। यदि नवांश बली हो तो नवांश से विचार करना।

यदि लग्नेश या नवांशेश स्वगृही हों तो अपने घर में प्रसव, मित्र क्षेत्री हो तो मित्र या सम्बन्धी के घर में जन्म, यदि अन्य क्षेत्री हों (स्व या मित्र-ग्रह के अतिरिक्त) तो अन्य के घर में जन्म कहना।

शीर्षपृष्ठोभयोगेऽस्य शीर्षपादकरैः क्रमात्।
प्रसवः सुखमिष्टेक्ष्ये पापदृष्टे तु कष्टतः ॥१४॥

इसमें पाँच योग बताये गये हैं—

१ यदि शीर्षोदय लग्न हो तो माता के गर्भ से सिर पहले निकले।

२ यदि पृष्ठोदय लग्न हो तो पैर पहिले निकलें।

३ यदि उभयोदय लग्न हो तो हाथ पहिले बाहर आवें।

४ यदि शुभ ग्रह लग्न को देखें तो सुख पूर्वक प्रसव हो।

५ यदि पाप ग्रह लग्न को देखें तो कष्ट के साथ प्रसव हो।

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि अधिकतर बच्चों का जन्म के समय सिर ही पहिले निकलता है। मणित्थ का वाक्य है कि जन्म सिर पहिले निकल कर ही कहना चाहिये। केवल नीचे लिखे योग में पैर पहिले निकल कर जन्म कहना चाहिये—

> लग्नाधिपेंशकपतौ लग्नस्थे वक्रिते ग्रहे वापि।
> विपरीतमतो मोक्षो वाच्यो गर्भस्य स क्रमशः॥

अर्थात्, लग्नाधिप लग्न में हो या नवांशपति लग्न नवांश में हो या वक्री ग्रह लग्न में हो तो पाद जात (पैरों से पैदा होना) कहना।

'दैवज्ञ कामधेनु' नामक ग्रंथ (अध्याय १२, श्लोक ३४-३५) में लिखा है—

> निर्गच्छतो योनिमुखान्मूर्द्धा लग्नमिति स्मृतम्।
> ततः प्रभृति निर्देश्याः क्रमशोऽन्येपि राशयः॥
> शीर्षोदयस्य पुंसस्तु नियमोऽयं परिकल्पितः।
> पादोदयस्य तास्त्र्यादे विलोमेन प्रकल्पयेत्॥

अर्थात्, माता के गर्भ से जिन बच्चों का सिर पहिले निकले

उनका लग्न सिर और बाद की राशियों से अन्य शारीरक अवयवों का विचार करना। जो पादजात हों उनके शरीर के विविध अंगों का विचार विलोम से करना।

जीर्णं तार्णं नवं दग्धं विचित्रं दृढमुत्तमम्।
बलिष्ठ यमतो गेहं प्रतिवेश्मोपगैस्तथा ॥१५॥

इस श्लोक में सूतिका का घर—कमरा—कैसा होगा, यह बताया है। यदि जन्म-कुंण्ड़ली में चतुर्थेश या चतुर्थ स्थान में शनि बलवान् हो तो पुराना (जीर्णं) मकान हो, यदि सूर्य हो तो लकड़ी का मकान जो दृढ़ न हो; यदि चन्द्रमा हो तो नया मकान, यदि शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा हो तो ऐसा नया मकान जिसमें हाल में लिपाई और पुताई कराई गई हो, क्योंकि यवनेश्वर ने कहा है—"संवर्धता चन्द्रमसोपलिप्तम्"। यदि मंगल हो तो मकान का कोई भाग जल गया हो, यदि बुध हो तो अनेक शिल्पयुत, यदि बृहस्पति हो तो मजबूत (उत्तम लकड़ी साल आदि जिसमें लगी हो) ऐसा सुश्लिष्ट सन्धिबन्ध वाला गृह हो, यदि शुक्र हो तो सुन्दर अनेक चित्रयुक्त गृह हो। गृहकारक ग्रह के समीप जो अन्य ग्रह हों उनके बल-स्वरूप के अनुसार पास के कमरे कैसे हैं, यह कहना। गृह कारक ग्रह उच्च राशि, स्वराशि या नीच राशि मे है, इस तारतम्य से गृह उत्तम, मध्यम या निकृष्ट कोटि का है, यह फलादेश कहना।

द्वारं केन्द्रस्थ दिक् पात् वाङ्गभाद्वा द्वादशांशभात्।
यद्दिक्प सार्क्ष भाद्दीपश्चलादिश्चरभादिकात् ॥१६॥

इस श्लोक में पांच योग बताये गये हैं।

१ बली ग्रह केन्द्र में हो उसकी दिशा के अनुसार घर का दरवाज़ा कहना। सूर्य की पूर्व दिशा, शुक्र की आग्नेय, मंगल की दक्षिण, राहु की नैऋत्य, शनि की पश्चिम, चन्द्रमा की वायव्य, बुध की उत्तर तथा बृहस्पति की ईशान दिशा है। यदि केन्द्र में कई ग्रह हो तो बलवान् ग्रह की दिशा लेना अथवा घर के कई दिशाओं में दरवाजे होंगे। यदि केन्द्र में कोई ग्रह न हो तो बलवान् ग्रह की दिशा में द्वार कहना।

२ लग्न की राशि की दिशा में द्वार।

३ लग्न द्वादशांश जिस राशि में हो उसकी दिशा में।

४ घर को दिशाओं में बाँटे।

अब जिस कमरे में प्रसव हुआ उसमें दीपक किस स्थान में था, इसका निर्णय कहत हैं। जिस कमरे में बच्चे का जन्म हुआ—उसके पूर्व भाग को मेष, वृष, समझे; मिथुन को आग्नेय; कर्क, सिंह को दक्षिण; कन्या को नेऋत्य; तुला वृश्चिक को पश्चिम; धनु को वायव्य; मकर-कुम्भ को उत्तर; मीन को ईशान। सूर्य जिस राशि में हो, घर के अन्दर उसी दिशा में दीपक था। यदि चर राशि में दीप हो तो किसी स्त्री के हाथ में दीपक था, स्थिर राशि में हो तो किसी वस्तु या भूमि पर रक्खा हुआ था।

हमारे विचार से सूति का-गृह-सम्बन्धी जो नियम बताये हैं वे आधुनिक काल में उन स्थानों में लागू नहीं होंगे जहाँ बिजली की बत्ती किसी एक स्थान पर लगी होती है और जहां मकान में कोई एक ही कमरा जच्चागृह बनाया जाता है।

लग्नादिमध्यान्ते दग्धाङ्कं वर्णा वर्तिकाध्वना ।
सम्पूर्णादौ तु राश्यादौ चन्द्रमे तैलभृतादिकः ।।१७।।

इसमें दीपक-सम्बन्धी तीन योग बताये गये हैं। बत्ती कितनी दग्ध हो गई थी, बत्ती का रंग कैसा था और दीपक में तेल कितना था। यह उस काल का ग्रंथ है जब पुराने तरीके से दीपकों से प्रकाश किया जाता था।

(१) यदि चन्द्रमा स्वयं अपनी होरा में हो तो गाय, भैंस, बकरी आदि के घृत का दीपक समझना। यदि चन्द्रमा सूर्य की होरा में हो तो तिल या नारियल या अन्य बीजों का तेल समझना। इसमें विशेष विचार चन्द्रमा की राशि अंश, किन ग्रहों से युत है, किनसे दृष्ट है, इन सबसे करना। राशि या नवांश जो बली हो, उसका जितना गत हो गया, उस परिमाण से तेल जल चुका था, यह कहना। मान लीजिये, राशि बलवान् है, चन्द्रमा के साढ़े २२ अंश जा चुके हैं तो तीन—चौथाई तेल जल चुका था।

(२) उदय लग्न, लग्नस्थ ग्रह या लग्नेश के वर्णानुसार बत्ती का रंग कहना। यदि समान बल हो तो कई प्रकार के रंग की बत्ती कहना।

(३) लग्न का जितना भाग बीत चुका है—उतनी बत्ती जल चुकी है। उदाहरण के लिये, लग्न के ३ अंश बीत चुके हैं तो बत्ती का दशमांश जल चुका है।

यावन्तः शशिलग्नान्तर्ग्रहास्तत्संख्यप्रसूतिकाः ।
मध्येऽर्धे मध्यगा बाह्ये बाह्यास्तत्समलक्षणाः ।। १८।।

जहाँ प्रसव हुआ, वहां कितनी स्त्रियाँ थीं, यह बताते हैं।

(१) चन्द्रमा और लग्न के बीच जितने ग्रह हों उतनी उप-सूतिका हों। जो स्त्रियाँ प्रसव में सहायता देने या देख-भाल करने वाली होती हैं, उन्हें 'उपसूतिका' कहते हैं।

(२) लग्न से सप्तम तक जितने ग्रह हों—उतनी स्त्रियाँ कमरे के अन्दर हों।

(३) सप्तम से लग्न तक जितने ग्रह हों उतनी स्त्रियाँ बाहर हों।

यदि ग्रह उच्च या वक्री हो तो उस ग्रह से १ के स्थान में ३ स्त्रियाँ समझें। यदि कोई ग्रह उच्च नवांशगत हो तो १ के स्थान में दो समझे। कैसी स्त्रियाँ बाहर थो ? ग्रहों के अनुसार स्त्रियों की जाति, वय आदि समझें। चन्द्र, मंगल और बुध से कम उम्र की; सूर्य और बृहस्पति से मध्य वय की शुक्र से युवती; शनि से वृद्धा।

आपोक्लीमैः शय्यापादाः रम्या भग्नाशुभाऽशुभैः।
लग्नांशपाकृतिः पुत्रो वर्णो राश्यंशपोऽमः ॥१६॥

इसमें खट्वा (खाट या पलंग जिस पर प्रसव हुआ है) तथा पैदा हुए बच्चे का स्वरूप लक्षण बताते हैं।

(१) खाट का दाहिनी ओर का ऊपर का पाया तृतोय स्थान, बायीं ओर का ऊपर का पाया बारहवाँ स्थान, खाट का नोचे की ओर का दाहिना पाया षष्ठ स्थान और नोचे की ओर का बाँया पाया नवम स्थान। जहाँ शुभ ग्रह बैठे हों वह पाया मज-बूत और अच्छा, जहां पाप ग्रह बैठे हों वह दोष-युक्त। पाप ग्रह भी अपनी उच्च राशि, मूल त्रिकोण या मित्र क्षेत्रस्थ हो तो जिस स्थान में हो उसको नहीं बिगाड़ता।

(२) जातक की आकृति लग्न नवांशपति के समान होती है। जातक का वर्ण चन्द्र नवांशपति के समान होता है।

एकस्थार्क्यारयोः कोणेऽस्तेर्के चाब्जेत्यज्यतेऽबया ।
जीवेक्ष्येऽन्यकरस्थोऽपि जीवेन्नार्कारवीक्षिते ॥२०॥

इसमें दो योग बताये हैं—

(१) यदि मंगल और शनि दोनों एक स्थान में हों और उस स्थान से चन्द्रमा पंचम, सप्तम या नवम स्थान में हो तो बालक को माँ छोड़ देती है अर्थात् माता ऐसे बालक का परित्याग कर देती है।

(२) यदि उपर्युक्त योग (१) में चन्द्रमा को बृहस्पति देखता हो तो बालक दीर्घायु और सुखी होता है किन्तु यदि सूर्य और मंगल चन्द्रमा को देखें तो जीवित नहीं रहता।

यदि बलवान् बृहस्पति चन्द्रमा को देखें तो जातक दीर्घायु होता है। मध्यबली बृहस्पति चन्द्रमा को देखे तो राजत्व लक्षण युक्त हो। बलहीन भी बृहस्पति चन्द्रमा को देखे तो भाग्योदय कारक है।

लग्नेऽब्जेऽर्केण मन्देन वा दृष्टेऽस्ते कुजे मृतिः।
योगेऽस्तायगयो रार्क्यारयोस्त्यक्तो विनश्यति ॥२१॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) सूर्य और शनि लग्न में बैठे हुए चन्द्रमा को देखें और लग्न से सप्तम मंगल हो तो बालक अपनी माता से त्यक्त होता है और फिर स्वयं मृत्यु को प्राप्त होता है।

(२) यदि लग्नगत चन्द्रमा पाप ग्रह से वीक्षित हो और मंगल तथा शनि एकादश में हों तो भी वही फल होगा जो योग (१) के ऊपर दिया है।

यद्वर्णेश शुभेक्ष्येऽब्जे जीवेत् तद्वर्णहस्तगः ।
वेष्टेन चार्किणा दृष्टे नश्येत् तत्करतः स च ॥ ॥२२॥

इसमें तीन योग बताये हैं—

(१) ऊपर, जहां पापदृष्ट चन्द्रमा होने के कारण बालक अपनी माता के द्वारा छोड़ा जाये, यह योग बताये हैं, उनमें यदि शुभ ग्रह—बुध, बृहस्पति या शुक्र चन्द्रमा को देखें—यदि बुध देखे तो वैश्य के हाथ (किसी-किसी के मत से शूद्र के हाथ) बृहस्पति या शुक्र देखें तो ब्राह्मण के हाथ बालक (परित्यक्त बच्चा) पड़े और जीवित रहे ।

(२) यदि चन्द्रमा को सूर्य या मंगल देखे तो क्षत्रिय के हाथ बालक पड़े या शनि देखे तो शुद्र या पंचम वर्ण (शूद्र से नीची जातियों) के हाथ बालक पड़े । किन्तु इस योग (२) में क्रूर ग्रह-दृष्ट चन्द्रमा होने के कारण बालक जीवित नहीं रहता ।

'सारावली' में कहा है—

म्रियते च पापदृष्टे शशिनि विलग्ने कुजेऽस्तगे त्यक्तः ।
लग्नाच्च लाभगतयोर्वसुधासुतमन्दयोरेवम् ॥

पश्यति सौम्यो जातं यादृग्गृह्णाति तादृशो जातम् ।
शुभपापग्रहदृष्टे परै र्मृ तितोऽपि स म्रियते ॥

सर्वेष्वेतेषु यदा योगेषु शशी सुरेड्यसन्दृष्टः ।
भवति तदा दीर्घायु र्हस्तगतः सर्ववर्णेषु ॥

अर्थात् चन्द्रमा पाप-दृष्ट लग्न में हो तथा सप्तम में मंगल हो तो बालक अपनी माता द्वारा छोड़ दिया जाता है। यदि लग्न से एकादश में मंगल-शनि हों तब भी ऐसा ही होता

हैं। जैसा शुभ ग्रह चन्द्रमा को देखे, उसी शुभ ग्रह के (वर्ण, कुल, व्यवसाय वाले व्यक्ति के हाथ) अनुसार बालक अन्य व्यक्ति के हाथ में जाता है। यदि शुभ और पाप—दोनों प्रकार के ग्रह चन्द्रमा को देखें तो अन्य व्यक्ति के हाथ में पहुँच कर भी कुछ काल बाद जातक की मृत्यु हो जाती है। किन्तु यदि इन योगों में बृहस्पति चन्द्रमा को देखे तो जातक दीर्घायु होता है।

(३) यदि चन्द्रमा लग्न गत हो और उसे शुभ ग्रह तथा शनि दोनों देखें तो अन्य हस्त में जाने पर भी बालक की मृत्यु हो जाती है।

वेज्याद्दष्टे सितज्ञेक्ष्ये व्यसुर्मिश्रेक्षिते न च।
सेन्दुग्रेंऽस्ताम्बुगे बाया: वांगेऽब्जे स्ताष्टगाधमैः ॥२३॥

इसमें चार योग बताये हैं—

(१) यदि उपर्युक्त योग में बृहस्पति चन्द्रमा को न देखे और बुध तथा शुक्र देखें तो कुछ काल जीवित रहने पर मृत्यु को प्राप्त होता है।

(२) यदि उपर्युक्त (पिछले योगों में जहाँ माता से परित्यक्त होने के योग कहे हैं) योगों में शुभ और पाप दोनों ग्रह देखें (अर्थात् बृहस्पति भी देखे) तो प्राण-हानि नहीं होती।

(३) यदि चन्द्रमा पाप ग्रह के साथ चतुर्थ या सप्तम में हो तो जातक की माता को पीड़ा हो।

(४) यदि चन्द्रमा लग्न में हो और पापग्रह सप्तम तथा अष्टम में हो तो वही फल हो जो योग (३) में ऊपर बताया गया है।

काब्जेम्बा म्रियते सोग्रे पितार्के मिश्रिते सरुक् ।
कोणे वाब्जाद्यमे वार्के मातुले वा कुजे सितात् ॥२४॥

इस श्लोक में ६ योग बताये गये हैं—

(१) यदि पाप ग्रह चन्द्रमा के साथ हो तो माता की मृत्यु हो ।

(२) यदि पाप ग्रह सूर्य के साथ हो तो पिता की मृत्यु हो ।

(३) यदि शुभ एवं अशुभ दोनों प्रकार के ग्रह चन्द्रमा के साथ हों तो माता रोगिणी रहे ।

(४) यदि पाप तथा शुभ दोनों प्रकार के ग्रह सूर्य के साथ हो तो पिता रोगी रहे ।

(५) यदि चन्द्रमा से त्रिकोण में पापग्रह और सूर्य या पाप ग्रह और शनि हों तो माता को अरिष्ट हो ।

(६) यदि शुक्र से त्रिकोण में पाप-दृष्ट मंगल हो तो मामा को अरिष्ट ।

हमारे विचार से इन योगों में शुभ ग्रहों की दृष्टि तथा माता के लिये चन्द्र स्थान से एवं लग्न से चतुर्थ स्थान का तथा पिता के लिये लग्न से दशम स्थान तथा सूर्य स्थान से भी विचार कर लेना चाहिये ।

काक्षिकर्ण नसागल्लहन्वास्यान्युभयौ स्तनौ ।
कण्ठस्कंधभुजापार्श्वे हृदयकोड नाभयः ॥२५॥

बस्तिर्लिंग गुदाण्डारु जानु जङ्घक्रमः क्रमात् ।
द्रेष्काणै रस्य वाङ्गानि प्राहु र्दक्षिण वामयोः ॥२६॥

प्रत्येक राशि ३० अंश की होती है । इसे तीन विभागों में,

दस-दस अंशों में विभाजित करने से तीन द्रेष्काण होते हैं। ० से १० अंशतक प्रथम द्रेष्काण; दस से २० अंश तक द्वितीय द्रेष्काण, २० के बाद ३० अंश तक तृतीय द्रेष्काण।

शरीर को भी तीन भागों में विभाजित किया है।

(१) सिर से कंठ तक (२) कंठ से कमर तक (३) कमर से नीचे तक। इन तीनों भागों को फ़िर बारह-बारह भागों में बाँटा है—

क

१. भाव—सिर (जो हिस्सा लग्न का बाकी है वह दाहिना हिस्सा जो बीत गया वह सिर का बाँया हिस्सा); २ भाव—दाहिनी आँख; ३ भाव—दाहिना कान; ४ भाव—नाक का दाहिना हिस्सा; ५ भाव—दक्षिण कपोल; ६ भाव—ठोड़ो का दाहिना हिस्सा; ७ भाव—मुख—जो भाग व्यतीत हो चुका वह मुख का दाहिना भाग; जो अवशिष्ट है वह मुख का बाँया भाग; ८ भाव—ठोड़ी का बायाँ हिस्सा; ९ भाव—वांयाँ कपोल; १० भाव—नासिका का वाम भाग; ११ भाव—बाँयाँ कान; १२ भाव—वाम नेत्र।

ख

१ भाव—कंठ (जो हिस्सा लग्न का बाकी है वह कंठ का दाहिना भाग जो बीत चुका वह कंठ का वाम भाग); २ भाव—दाहिना कंधा; ३ भाव—दक्षिण बाहु; ४ भाव दक्षिण पार्श्व; ५ भाव—हृदय का दक्षिण भाग; ६ भाव—पेट का दक्षिण भाग; ७ भाव— (जो भाग व्यतीत हो चुका है वह नाभि का दक्षिण. भाग है, जो भाग बाकी है वह नाभि का वाम गाग); ८ भाव—पेट का वाम भाग; ९ भाव—हृदय का वाम भाग; १०

भाव—वाम पार्श्व; ११ भाव—वाम बाहु; १२ भाव—बांयाँ कंधा।

ग

१ भाव—बस्ति (लग्न का जो हिस्सा बाकी वह दाहिना भाग, जो बीत चुका वह वाम भाग। नाभि से लिंग मूल तक यदि दो भागों में विभाजित किया जावे तो ऊपर का आधा भाग बस्ति कहलाता है); २ भाव—शिश्न तथा गुदा का दक्षिण भाग; ३. भाव—दक्षिण वृषण (अण्ड कोष); ४ भाव—दाहिनी जांघ; ५, भाव—दक्षिण घुटना; ६ भाव—दाहिनी पिंडली; ७ भाव—गत भाग दाहिना पैर, गन्तव्य भाग बाँयाँ पैर; ८ भाव—बायीं पिंडली; ९ भाव—बाँयाँ घुटना; १० वाँ भाव—बायीं जाँघ; ११ वाँ भाव—वाम वृषण (अंड कोष); १२ वाँ भाव—शिश्न तथा गुदा का वाम भाग।

यदि लग्न प्रथम द्रेष्काण में हो और प्रथम द्रेष्काण गत कोई ग्रह किसी भाव में हो तो उस स्थान में शरीर में चिह्न, व्रण, मस्सा, लहसन, आघात आदि देता है। कौन सा ग्रह आघात, कौन सा कैसा चिह्न देता है, यह बाद में बताएँगे। अभी केवल लग्नगत द्रेष्काण के अनुसार शरीर के किस भाग में चिह्न आदि होता है, यही बताते हैं। यदि प्रथम द्रेष्काण-लग्न में हो तो प्रथम द्रेष्काण गत ग्रहों को 'क' में लागू कीजिये, यदि द्वितीय द्रेष्काण में ग्रह है तो 'ख' में लागू कीजिये, यदि तृतीय द्रेष्काण में ग्रह हो तो 'ग' में लागू कीजिए।

यदि द्वितीय द्रेष्काण में जन्म हुआ है अर्थात् लग्न स्पष्ट द्वितीय द्रेष्काण में है तो मध्य द्रेष्काण के ग्रह से 'क' भाग समझिये, अन्तिम द्रेष्काण गत ग्रह से 'ख' भाग और प्रथम द्रेष्काण गत ग्रह से 'ग' भाग।

यदि तृतीय द्रेष्काण में जन्म हो अर्थात् लग्न के अंश २० के बाद तीस तक हों तो तृतीय द्रेष्काण गत ग्रह से 'क' भाग प्रथम द्रेष्काण गत ग्रह से 'ख' भाग तथा मध्य द्रेष्काण गत ग्रह से 'ग' भाग समझिये।

यदि द्रेष्काण बलवान् हो तो द्रेष्काण वश चिह्न व्रण आदि कहना। लग्न बलवान् हो तो शीर्षोदय, पृष्ठोदय, उभयोदय, इस विचार से चिह्न कहना। यदि सूर्य बलवान् हो तो ऊर्ध्वमुख, अधोमुख, तिर्यक्मुख राशि के विचार से कहना।

शीर्षोदय राशियाँ कौन सी हैं–ऊर्ध्वमुख राशियाँ कौन-सी हैं–इन सब के विवरण के लिए देखिये 'फलदीपिका।

तत्रभागे स पापेऽस्य व्रणो राशिसमांगगः।
स्वर्क्षांशस्थिर भांशस्थे शुभे तु सहजोमषः ॥२७॥

काष्ठंश्रृंग्यस्त्रभूग्रावजोऽर्केन्द्वार बुधार्किभिः।
षष्ठे तत्र युते सद्भिर्वेक्ष्ये वा कृष्णबिन्दुकः ॥२८॥

ऊपर जो अंग-विभाग की प्रणाली बताई गई है, उसके अनुसार जिस स्थान में पाप ग्रह हो, तो शरीर के उस भाग में व्रण होता है। यदि शुभ-दृष्ट हो तो लक्ष्म (लहसन) आदि का चिह्न होता है; यदि ग्रह स्वराशि, स्वनवांश, स्थिर राशि में हो तो नैसर्गिक (जन्म से ही) होता है। यदि स्वराशि आदि या स्थिर राशि में न हो तो जन्म के बाद होता है। यदि शनि व्रणकारक हो तो पत्थर या वायुजनित होता है। यदि मंगल व्रणकारक हो तो अग्नि, शस्त्र या विष से होता है। बुध हो तो भूमि के आघात से, सूर्य हो तो लकड़ी या चौपाये (गाय, भैंस आदि) से, चन्द्रमा हो तो सींग से या जलचर (मछली) से। यदि शुभ चन्द्र, पापग्रह के योग से रहित बुध, बृहस्पति या शुक्र हों तो

शरीर का वह भाग सौष्ठव युक्त होता है और उस भाग में भूषरण आदि धारण करता है ।

यदि जन्म-लग्न से षष्ठ में पाप ग्रह हो तो शरीर में व्रण होता है। अन्य टीकाकारों ने षष्ठ का अर्थ षष्ठ राशि कन्या लिया है। यदि कन्या राशि सौम्य ग्रहों से दृष्ट हो तो तिल, मषक आदि होता है। सौम्य ग्रह से युत हो तो लहसन आदि। लग्न से जिस भाव में कन्या राशि पड़ती हो, शरीर के उसी स्थान में चिह्न-(शुभ ग्रहों से दृष्ट होने पर) या व्रण (पाप ग्रह-युत या दृष्ट होने पर) कहना ।

यदि षष्ठ का अर्थ लग्न से षष्ठ भाव लिया जावे तो छठे स्थान में जो राशि है-वह काल पुरुष के जिस अंग में हो, उस अंग में, यदि पाप ग्रह छठे में है तो, व्रण; यदि पापग्रह है किन्तु शुभ ग्रह से दृष्ट है तो तिल, मषक आदि और यदि केवल शुभ ग्रह छठे में हो, और भाव शुभ-दृष्ट हो तो लहसन आदि (शरीर के उस अंग में-जहाँ काल पुरुष के शरीर में छठे भाव की राशि पड़ती हो) कहना ।

इस प्रकार इस अध्याय में ८० से अधिक योग है ।

तृतीय कल्लोल

अरिष्टाध्याय

संध्यायां चन्द्रहोरायां पापै र्भान्त्यांश गैर्मृतिः ।
एतैः पृथक् चतुष्केन्द्र स्थितैः साब्जैस्तु मासतः ॥१॥

इसमें दो योग बताये हैं:—

(१) यदि संध्या काल में जन्म हो और जन्म के समय चन्द्रमा की होरा हो और पापग्रह राशियों के अन्तिम अंशों में हो तो ऐसे बच्चे की शीघ्र मृत्यु होती है। जब आधा सूर्य अस्त हो, तो जाय और तारे दिखाई न दें, उस बीच के काल को संध्या कहते हैं। यह सायं-संध्या कहलाती है। प्रातः-संध्या तब होती है जब तारे लुप्त हों और सूर्य जब तक आधा उदय हो।

'होरा' शब्द के तीन अर्थ हैं:—(१) लग्न, (२) कालहोरा एक-एक घंटे की एक-एक ग्रह की, (३) राशि का आधा भाग। यहाँ होरा शब्द से तृतीय अर्थ अभिप्रेत है। अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु तथा कुंभ का उत्तरार्द्ध और वृष, कर्क, कन्या वृश्चिक, मकर या मीन का पूर्वार्द्ध।

(२) यदि चन्द्रमा पापग्रह-सहित हो और सूर्य, मंगल, शनि तीनों केन्द्र में हों। अन्य विद्वानों के मत से चार—चन्द्र, सूर्य, शनि और मंगल—चारों एक-एक केन्द्र में हों तो बालक की सद्यः मृत्यु होती है।

उपर्युक्त दोनों योगों में से कोई सा एक हो तो एक मास में मृत्यु हो जाती है।

वाक्कीटाङ्के खलैः सौम्यैश्चक्रपूर्वान्यभागगैः।
धर्माष्टाङ्गान्त्यगैरर्कारिन्दुमन्दैः क्रमादरम् ॥२॥

इस श्लोक में दो योग बताये गए हैं—

(१) यदि वृश्चिक या कर्क लग्न हो, सब क्रूर ग्रह चक्र के पूर्वभाग में हों और दूसरे भाग में सब सौम्य ग्रह हों तो बालक की शीघ्र मृत्यु होती है। अब पूर्व भाग किसे कहते हैं और पश्चिम भाग किसे, यह बताते हैं। यदि वृश्चिक के १५ अंश उदित हों तो धनु, मकर, कुंभ के १५ अंश तक, तथा सिंह के १५ अंश से प्रारम्भ कर कन्या, तुला, वृश्चिक, यह १८० अंश पूर्वभाग हुआ। बाकी का—कुंभ के १५ अंश से प्रारम्भ कर मीन, मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह के १५ अंश तक दूसरा भाग।

इसी प्रकार कर्क लग्न के मान लीजिए ३ अंश उदित हों। अर्थात् लग्न स्पष्ट कर्क का तीसरा अंश हो) तो मेष के ३ अंश से तुला के ३ अंश तक १८० अंश पूर्वभाग और तुला के ३ अंश से मेष के ३ अंश तक पश्चिम भाग समझना चाहिए।

(२) यदि लग्न में चन्द्रमा, अष्टम में मंगल, नवम में सूर्य और द्वादश में शनि हो तो जातक की शीघ्र मृत्यु होती है। यद्यपि वेडा जातककार ने यह नहीं लिखा है किन्तु अन्य ग्रन्थों के मत से यदि बली बृहस्पति योगकर्ता ग्रहों को देखें तो प्राण-रक्षा हो जाती है।

बली बृहस्पति यदि पंचम में हो तो लग्नगत चन्द्रमा को नवम पूर्ण दृष्टि से देखेगा; नवम स्थित सूर्य को भी पंचम पूर्ण

दृष्टि से देखेगा। अष्टमस्थ मंगल तथा व्ययस्थ शनि पर चतुर्थ तथा अष्टम दृष्टि होने से तीन चरण दृष्टि बृहस्पति की होगी।

यदि बलहीन बृहस्पति की दृष्टि हो तो शीघ्र मरण नहीं होगा किन्तु कम अवस्था में मृत्यु होगी। बली बृहस्पति देखे तो आयु अच्छी होगी।

अंगेवास्ते खलांतर्वीत्यारिगैः स्वाष्टगैःखलैः ।
सोऽग्रे पापान्तरे वेन्दौ कोणाष्टास्तान्त्यकाङ्गके ॥३॥

इसमें तीन योग बताये हैं—

(१) यदि लग्न या सप्तम भाव पाप मध्य हों।

(२) यदि पाप ग्रह लग्न से द्वितीय, षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश में हों तो शीघ्र ही मृत्यु हो।

अध्याय ६ के श्लोक १३ में एक श्लोक बताया है कि लग्न से द्वितीय, षष्ठ, अष्टम, द्वादश में पापग्रह हों तो जातक अन्धा होता है और इस श्लोक में बताया है कि जातक की शीघ्र मृत्यु हो। ऐसी स्थिति में क्या दोनों योगों में विरोध नहीं होता? इसका परिहार करते हैं कि यदि लन्न या योगकर्ता ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो जीवन-रक्षा हो जाती है किन्तु अन्धत्व हो जाता है।

(३) यदि पापयुक्त चन्द्रमा, या पापमध्यगत चन्द्रमा लग्न से त्रिकोण (नवम, पंचम) अष्टम, सप्तम, व्यय या लग्न में हो तो शीघ्र मृत्यु होती है। वेडा जातककार ने यह लिखा है किन्तु यदि अन्य ग्रन्थकारों के मति से यदि बली बुध, बृहस्पति, शुक्र चन्द्रमा को देखें ती प्राण-रक्षा हो जाती है।

नेष्टेब्जे दुःखमिश्रेक्ष्येऽष्टारौ दृग् दिग् युगाब्दतः ।
नाऽदृष्टे वानसत्पक्षे निशिकृष्णेऽह्नि जन्म चेत् ॥४॥

इसमें चार योग बताए हैं—

(१) यदि राहुग्रस्त (ग्रहण के समय का) चन्द्रमा लग्न में हो और अष्टम में मंगल हो तो बालक तथा माता दोनों की मृत्यु हो।

(क) यदि चन्द्रमा केवल पाप-दृष्ट हो तो २ वष म मृत्यु हो।

(ख) यदि चन्द्रमा शुभ दृष्ट हो तो १० वर्ष में मृत्यु हो।

(ग) यदि शुभ और पाप दोनों प्रकार के ग्रहों की दृष्टि हो तो चार वर्ष में मृत्यु हो।

(२) यदि चन्द्रमा छठे या अष्टम में हो और पाप-दृष्ट हो, तो बालारिष्ट होता है। यदि शुभ ग्रहों से वीक्षित हो तो आठ वर्ष की आयु। यदि शुभ और पाप ग्रह दोनों से वीक्षित हो तो चार वर्ष की आयु।

किन्तु अन्य ग्रंथकारों के मत से, यदि चन्द्रमा शुभ राशि में हो, या शुभ ग्रह के साथ हो तो प्राण-रक्षा हो जाती है।

(३) यदि शुक्ल-पक्ष की रात्रि में जन्म हो या कृष्णपक्ष में दिन में जन्म हो तो षष्ठ या अष्टम स्थान में स्थित चन्द्रमा भी मरण नहीं करता।

ग्रस्तेंगे सयमेऽत्रारेऽष्टमे मात्राम्रियेत सः ।
राज्ञे चार्केस्त्रतो वात्र दुष्टैः कोणाष्टगैरिति ॥५॥

इसमें तीन योग बताए हैं—

(१) यदि लग्न में ग्रस्त (राहु) शनि के साथ हो और अष्टम

में मंगल हो तो जातक तथा उसकी माता की शीघ्र मृत्यु होती है।

(२) यदि उपर्युक्त योग में सूर्यबुध भी लग्न में हों तो शस्त्र से मृत्यु हो (अर्थात् असामान्य प्रसव होने के कारण शस्त्र-क्रिया द्वारा प्रसव हो जिसमें जातक और उसकी माता दोनों की मृत्यु हों)।

वेडाजातक में 'सज्ञे' पाठ है, जिसका अर्थ बुध-सहित सूर्य यदि लग्न में हो, यह व्याख्या की। किन्तु अन्य ग्रंथों में, बुध-सहित सूर्य होने से उपर्युक्त योग नहीं दिया गया है, किन्तु पाप-ग्रह-सहित सूर्य लग्न में होने से योग दिया है। वैसी स्थिति में 'सज्ञे' के स्थान में 'सोग्रे' पाठ विशेष उपयुक्त होगा।

(३) यदि लग्न में ग्रस्त सूर्य या ग्रस्त चन्द्र हो और त्रिकोण तथा अष्टम में पापग्रह हों तो भी बालक का शीघ्र विनाश होता है—यदि लग्न पर शुभ-ग्रहों की दृष्टि न हो। यहाँ ग्रस्त का अर्थ राहु या केतु के साथ होता है।

अंगे क्वब्जे खलैर्वास्ते दृष्टे वास्तेऽङ्गपे खलैः।
व्ययेऽब्जे वाष्टांगगैः पापैर्सौम्ये निष्कण्टकैर्द्रुतम् ।।६।।

इसमें तीन योग बताए गए हैं—

(१) यदि क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो और पाप-ग्रह (मंगल, शनि) सप्तम में हों,

(२) यदि लग्नेश सप्तम में हो और उसे पाप-ग्रह देखते हों, (३) यदि चन्द्रमा व्यय में हो, लग्न तथा अष्टम में पाप-ग्रह हो और इन तीनों योगों में सौम्य-ग्रह केन्द्रों में न हों तो बालक की शीघ्र मृत्यु होती है।

'सारावली' में इसी प्रकार का एक श्लोक दिया गया है—

व्ययाष्टसप्तोदयगेशशांके पापैः समेते शुभदृष्टिहीने ।
केन्द्रेषु सौम्यग्रह वर्जितेषु प्राणैर्वियोगं व्रजति प्रजातः ।।

अर्थात्, यदि व्यय, अष्टम, सप्तम या लग्न में पाप ग्रहों के साथ चन्द्रमा हो और ऐसे चन्द्रमा पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तथा सौम्य ग्रह केन्द्र में न हो तो जो बच्चा जन्म लेता है उसके प्राणों का शीघ्र वियोग हो जाता है ।

गार्गी का वचन है—

क्षीणे च चन्द्रे व्ययगे पापैरष्टमलग्नगैः ।
केन्द्रबाह्यस्थितैः सौम्यैर्जातस्य निधनं वदेत् ।।

अर्थात्, यदि क्षीण चन्द्र व्यय में हो, पाप-ग्रह अष्टम और लग्न में हों, सौम्य ग्रह केन्द्र में न हों, तो जातक का शीघ्र निधन (मृत्यु) होती है ।

भान्तगेऽब्जे शुभादृष्टे पापैः कोणगतैर्लघु ।
स्वभांग बलिभं प्राप्ते पापेक्ष्येऽब्जे समान्तरे ।।७।।

इसमें दो योग बताए हैं—

(१) यदि चन्द्रमा राशि के अन्त भाग में हो, शुभ ग्रह चन्द्रमा को न देखता हो—अशुभ (पाप-ग्रह) त्रिकोण में हो तो शिशु का शीघ्र (एक वर्ष में) मरण होता है ।

(२) एक वर्ष में चन्द्रमा लगभग १३ बार घूम जाता है । जिस भाव में बलवान पाप-ग्रह हो और जो भाव पाप-दृष्ट हो, वह चन्द्रमा से जितने भाव दूर हो, उतने ही मास पर मृत्यु होती है ।

रिष्टहाकेन्द्र सद्वीक्ष्यो बलीज्यो वाङ्गपोऽङ्गगः ।
केन्द्रगो वा भपः सद्वा सत्र्यंशेऽर्यंष्टगः शशो ।।८।।

ऊपर के ७वें श्लोक में बच्चे के शीघ्र मरण के योग बताए है। अब उनके अपवाद बताते हैं। अर्थात् किन शुभ योगों से अरिष्ट योगों का खण्डन हो जाता है और नवजात शिशु की प्राण-रक्षा हो जाती है।

निम्न-लिखित योग अरिष्टनाशक हैं—

(१) केन्द्र में शुभ ग्रह; (२) बली बृहस्पति; (३) लग्नेश लग्न में; (४) शुभ ग्रहों की लग्न पर दृष्टि; (५) लग्नेश का केन्द्र में होना; (६) चन्द्रमा षष्ठ या अष्टम में शुभ द्रेष्काण में हो (७) लग्नेश शुभग्रह होना और बलवान् होना।

पूर्णेन्दुः शुभभांशे वा सदवा शुभान्तरे ।
भेशात्तूर्यचयस्थोऽयं वेन्दोः सौम्यास्तुषट्त्रये ।।९।।

अन्य अरिष्टनाशक योग बताते हैं—

(१) पूर्ण चन्द्र शुभ राशि में हो; (२) या पूर्ण चन्द्र शुभ नवांश में हो; या (३) शुभ चन्द्र हो—बलवान् शुभ ग्रहों से युक्त या दृश्ट (४) या शुभ ग्रहों के मध्य में चन्द्र हो या (५) चन्द्र स्वामो से चतुर्थ चन्द्रमा हो (६) या चन्द्रमा से तृतीय और षष्ठ में शुभ ग्रह हों।

शुभवर्गैः खलाइष्टैर्दृष्टा इष्टांगवर्गगैः ।
षट्त्र्याये हिः शुभेक्ष्यो वा सर्वशीर्षोदये ग्रहाः ।।१०।।

अब अन्य अरिष्ट-नाशक योग बताते हैं—

(१) शुभ ग्रह शुभ वर्गों में बैठकर पाप ग्रहों को देखते हों

तथा पापग्रह शुभ ग्रहों के वर्ग में हों; (२) शुभ ग्रह-दृष्ट राहु, लग्न से तृतीय, षष्ठ या एकादश में हो; (३) सब ग्रह शीर्षोदय राशियों में हों। मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ शीर्षोदय राशियाँ हैं।

इस अध्याय में २८ योग बताए हैं।

चतुर्थ कल्लोल

नैर्याणिकाध्याय

सूर्याद्यैरष्टगै मृ त्युः वह्न्यम्भोऽस्त्रज्वरामतः ।
तृट्क्षुज्जोऽन्य स्वमार्गान्तिदेशे रन्ध्रे चरादिगे ॥१॥

निर्याण मृत्यु को कहते हैं । इस नैर्याणक अध्याय में ज्योतिष की दृष्टि से मृत्यु का विवेचन है । मृत्यु किस रोग या कारण से होगी; शरीर के किस अंग में रोग होगा; जातक लम्बे अरसे तक बीमार रहेगा या थोड़े काल तक; स्वदेश में मृत्यु होगी या परदेश में या मार्ग में—ये सब मृत्यु-सम्बन्धी विचार ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत 'निर्याण' में आते हैं ।

इस श्लोक में दो बातों का विवेंचन किया गया है—

(१) यदि जन्म-कुण्डली में अष्टम स्थान में सूर्य हो तो अग्नि के कारण मृत्यु होती है । यदि अष्टम में चन्द्रमा हो तो जल के कारण, मंगल हो तो अस्त्र से, बुध हो तो ज्वर से, बृहस्पति हो तो अज्ञात व्याधि (बीमारी) से, शुक्र हो तो तृषा से, शनि हो तो क्षुधा से मृत्यु होती है । अग्नि आदि का मोटा अर्थ. अग्नि से जलकर, यह नहीं लेना चाहिए । शरीर में अग्नि होती है । इसके मन्द या कुपित हो जाने से अनेक प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं । इसी प्रकार जल में डूबने से या जल-तत्व के असंतुलन से जो बीमारियाँ हों, वे चन्द्रमा से लेनी चाहिये । शस्त्र से

लड़ाई में मारा जाना या डाक्टर के ऑपरेशन द्वारा या ऐसी बीमारी, जिसमें शस्त्र-चिकित्सा की आवश्यकता हो वे सब मंगल के अन्तर्गत आते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र समझना चाहिये।

(२) यदि अष्टम में चर राशि हो तो परदेश में मृत्यु हो; यदि स्थिर राशि हो तो स्वदेश में (अपने घर में); यदि द्विस्वभाव राशि हो तो मार्ग में या दूसरे के घर में।

पित्ताद्वातकफात् पित्तात् वातपित्तकफात् कफात्।
कफवातान्मरुत्तो यो रन्ध्रं पश्येत्ततोऽस्ति सः ॥२॥

लग्न से अष्टम जो राशि-काल पुरुष के जिस अंग में वह राशि पड़ती हो—उस अंग में रोग से प्राय। मृत्यु होती है। आयुर्वेद के अनुसार, समस्त रोग तीन दोषों में विभाजित किये गये हैं—१. वात, २. पित्त, ३. कफ। किसी-किसी रोग में यह अमिश्रित रूप में रहते हैं तथा किसी में पित्त और कफ, किसी में वात और पित्त और किसी में वात और कफ। किसी-किसी रोग में वात, पित्त और कफ तीनों का असंतुलन हो जाता है। जिस रोग में दो या तीनों दोष कुपित हो जाते हैं वहाँ भी कोई अधिक कुपित होता है, कोई कम। उचित निदान करके समीचीन औषधि द्वारा दोष को साम्यावस्था में लाना अनुभवी वैद्य का कार्य है। अस्तु; किस दोष से जातक की मृत्यु होगी, इस विषय में जो अनिष्ट (भावाधिप, नवांश स्वामी, द्रेष्काण-स्वामी आदि की जो मारकता है, उनसे संस्पृष्ट होने पर) ग्रह अष्टम भाव को देखे, उसके दोष से मृत्यु होती है।

यदि सूर्य अष्टम को देखे तो पित्त से; चन्द्रमा देखे तो वात

ग्रौर कफ से; मंगल देखे तो पित्त से; बुध देखे तो वात, पित्त ग्रौर कफ से; बृहस्पति देखे तो कफ से; शुक्र देखे तो कफ ग्रौर वात से; यदि शनि देखे तो वात से मृत्यु कहना।

उपर्युक्त ग्रहों की दृष्टि से जो दोष होता है, वह उस-उस ग्रह के ग्रष्टम स्थान में बैठने से भी होता है।

शनौकर्कगते चन्द्रे मकरस्थे जलोदरात्।
त्रिकोणस्थौ शुभादृष्टौ पापौ चेद्बन्धनान्मृतिः ॥३॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि शनि कर्क में हो ग्रौर चन्द्रमा मकर में हो तो जलोदर से मृत्यु।

(२) यदि पंचम ग्रौर नवम में पापग्रह हों ग्रौर उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो बन्धन से मृत्यु।

पापद्वयान्तरे चन्द्रे कुजर्क्षे शस्त्रवह्नितः।
वार्किभे रज्जुपाताग्नेरेवं स्त्रीभेऽस्रशोषतः ॥४॥

इसमें तीन योग बताए गए हैं—

(१) यदि चन्द्रमा मेष या वृश्चिक राशि में हो ग्रौर दो पाप ग्रहों के बीच में हो तो शस्त्र या वह्नि (ग्रग्नि) से मृत्यु हो।

(२) यदि चन्द्रमा मकर या कुंभ राशि में हो ग्रौर पाप ग्रहों के बीच में हो तो रज्जु, ग्रग्नि या पात (ऊपर से गिरने से) मृत्यु हो।

(३) यदि चन्द्रमा कन्या राशि में हो ग्रौर दो पापग्रहों के बीच हो तो रुधिर-विकार से उत्पन्न शोष से मृत्यु हो।

मीनाङ्गेऽर्के सिते स्वेऽस्ते चन्द्रे सोग्रे गृहे स्त्रियः ।
भौमेऽर्के चाम्बुगे मन्दे कर्मस्थे शूलिकाभवः ।।५।।

इसमें दो योग बताये हैं—

(१) यदि लग्न में मीन का सूर्य, द्वितीय स्थान में मेष का शुक्र, सप्तम में कन्या में पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो तो स्त्री-हेतुक मरण घर में हो। स्त्री के हेतु से तात्पर्य है कि स्त्री के हाथ से, या स्त्री के कारण (अपनी या कोई अन्य स्त्री)।

(२) यदि चतुर्थ में सूर्य और मंगल हो और शनि दशम में हों तो शूल से मृत्यु हो। शूल भाले को कहते हैं। शूल पेट के दर्द को भी कहते हैं।

सातितीक्ष्णेन्दुपापैश्च कोणाङ्गस्थैश्च कारतः ।
तुर्येऽर्के खे कुजेकेन्दु युक्तावेक्ष्येऽस्ति शौलिकः ।।६।।

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि लग्न, पंचम, नवम में क्षीण चन्द्र, सूर्य, मंगल, शनि हों ता शूल से मृत्यु।

(२) यदि लग्न से चतुर्थ सूर्य हो, दशम में मंगल हो और उसे क्षीण चन्द्र देखे तो शूल से मृत्यु हो।

सुखेऽर्के खे कुजे मन्दे युक्तेक्ष्ये काष्ठसंभवः ।
स्वाम्बुखःथैः शनीन्द्वारैः क्रमेण क्षतकीटतः ।।७।।

इसमें दो योग बताए गए हैं—

(१) यदि चतुर्थ में सूर्य हो, दशम में मंगल हो और मंगल को शनि पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो काष्ठ (लकड़ी) के आघात से मरे।

(२) यदि द्वितीय में शनि, चतुर्थ में चन्द्रमा, दशम में मंगल हो तो शरीर में कृमि हो जावें या व्रण (घाव) (सेप्टिक) हो जावे और क्षत को सेप्टिक करने वाले कीटाणुओं से मृत्यु हो।

यष्टेः केन्द्रार सौरार्कै रष्टाज्ञांगाम्बुगैर्यथा ।
कर्मधर्माङ्ग धीगैश्च धूम्रबन्धाग्नि कुट्टनात् ।।८।।

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि अष्टम में चन्द्र, दशम में मंगल, लग्न में शनि, चतुर्थ में सूर्य हो तो लाठी या डंडे से मृत्यु हो।

(२) यदि चन्द्र दशम में, नवम में मंगल, लग्न में शनि, पंचम में सूर्य हो तो, धूम (धुएँ) से, अग्नि से, बंधन से या काष्ठादि (लाठी आदि) के प्रहार से मृत्यु हो।

पदे सूर्ये सुखे भौमे स्यन्दनाश्वादियानतः ।
खास्ताम्बुगैः क्रमात् वक्रचन्द्रमन्दैस्तु कूपतः ।।९।।

इसमें दो योग बताए हैं—

(१) यदि दशम में सूर्य, चतुर्थ में मंगल हो तो रथ, घोड़े, सवारी आदि से गिरकर मृत्यु हो। इस योग में पत्थर से चोट लगकर भी मृत्यु होती है।

(२) यदि दशम में मंगल, सप्तम में चन्द्रमा, चतुर्थ में शनि हो तो कुएँ में गिरने से मृत्यु हो।

विष्ठान्तर्मन्दभे चन्द्रे कुले तौलिन्यजे यमे ।
केन्द्रौ खेऽर्केऽस्तगे तुर्ये भौमेस्यामेध्यमेध्यतः ।।१०।।

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि चन्द्रमा मकर या कुम्भ में हो, तुला का मंगल,

मेष का शनि हो तो विष्ठादि के स्थान में मृत्यु हो।

(२ यदि चन्द्रमा दशम में, सप्तम में सूर्य, चतुर्थ में मंगल हो, तो विष्ठादि के अपवित्र स्थान में मरण हो।

कार्मभौमेङ्गगैः केन्द्विनार्किभि यंत्र पीडया।
सारेऽर्केऽस्ते यमेऽष्टस्थे केन्दौतुर्येविहङ्गतः ॥११॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि सूर्य, चन्द्र और शनि लग्न में हों तथा मंगल सप्तम में हो तो यन्त्र-पीड़ा से मृत्यु हो। मशीन के बीच में दबकर, रेल, मोटर, ट्रैक्टर या ट्रक के नीचे आकर कुचल जाने से।

(२) यदि सूर्य, मंगल सप्तम में हो, शनि अष्टम में, चतुर्थ में चन्द्रमा तो पक्षी से (चील, गिद्ध आदि से—या वायुयान की दुर्घटना से) मृत्यु हो।

बल्यारेक्ष्ये विधौ चन्द्रे यमे गुह्यार्त्तिकर्मतः।
धर्मध्यष्टांग केन्द्वारार्कोनैः शम्पाद्रिकुड्यतः ॥१२॥

इसमें दो योग बताये हैं—

(१) बलवान् मंगल क्षीण चन्द्र को देखे और शनि अष्टम में हो तो गुह्य (इन्द्रिय या गुदा स्थान) की पोड़ा से मृत्यु हो।

(२) यदि लग्न में सूर्य, पंचम में मंगल, अष्टम में शनि और नवम में चन्द्रमा हो तो पर्वत से गिरकर या दीवाल की चोट से मृत्यु हो।

सूर्यारौ खाम्बुगौ शैलात् वृध्यंगांगेऽर्कविधूजलात्।
कन्यास्थौ पापदृष्टौ चेदर्केन्दू स्वजनादपि ॥१३॥

इसमें दो योग बताये हैं—

(१) यदि सूर्य, मंगल दोनों दशम या चतुर्थ में हो तो पहाड़ से गिरकर मृत्यु हो। अन्य अर्थ यह भी हो सकता है कि सूर्य दशम में, मंगल चतुर्थ में हो।

(२) यदि सूर्य और चन्द्रमा द्विस्वभाव राशि में लग्न में हों तो जल से मृत्यु हो। मिथुन, कन्या, धनु, तथा मीन द्विस्वभाव राशियाँ हैं।

(३) यदि सूर्य और चन्द्रमा कन्या में हों और उनको पापग्रह देखता हो तो स्वजन (अपने आदमी से या अपने आदमी के कारण) मृत्यु हो।

कार्मेऽर्केम्बुनिभौमे खे शनौ शस्त्राग्निराट्क्रुधः।
भुजंगनिगडत्र्यंशैरष्टस्थैर्गुप्ततोऽस्ति सः ॥१४॥

इसमें दो योग बताये हैं—

(१) यदि सूर्य सप्तम में, चतुर्थ में मंगल, दशम में शनि हो तो शस्त्र, अग्नि, किंवा राज-कोप से मृत्यु हो।

लग्न द्रेष्काण से जो २२वां द्रेष्काण, उससे भी मृत्यु का विचार होता है। यदि ल न में प्रथम द्रेष्काण हो तो अष्टम राशि (लग्न राशि से गिनने पर अष्टम राशि) का प्रथम द्रेष्काण २२वाँ द्रेष्काण होगा। यदि लग्न स्पष्ट का अंश द्वितीय द्रेष्काण में हो तो लग्न से अष्टम राशि का द्वितीय द्रेष्काण २२वाँ द्रेष्काण होगा। यदि लग्न में तृतीय द्रेष्काण उदित हो तो लग्न से अष्टम राशि का तृतीय द्रेष्काण २२वाँ द्रेष्काण होगा। यदि अष्टम स्थान में भुजग, पाश या निगड द्रेष्काण हो तो बन्धन में या जेलखाने में मृत्यु हो। यह द्रेष्काण निम्नलिखित है—

कर्क राशि का द्वितोय और तृतीय द्रेष्काण, वृश्चिक का प्रथम और द्वितीय द्रेष्काण और मीन का अन्त्य द्रेष्काण। निगड़ द्रेष्काण मकर का प्रथम द्रेष्काण।

यदात्र्यंशेऽजनिष्टातो द्वाविंशो यश्च तत्पतेः ।
यत्रर्क्षेऽसौ नु तत्पातस कालपुंगाष्टगाङ्गभूः ॥१५॥

ऊपर मृत्यु किस कारण से, किस प्रकोप से होगी, यह बता चुके हैं। यदि उपर्युक्त कोई भी योग घटित न हो तो निम्न-लिखित प्रकार से विचार करना चाहिए।

जन्म-लग्न से २२वाँ द्रेष्काण मृत्यु का कारण होता है, यह ऊपर बता चुके हैं। इस २२वें द्रेष्काण का जो स्वामी उसके प्रकोप से मृत्यु होगी, यह कहना। यथा २२वें द्रेष्काण का स्वामी सूर्य हो तो अग्नि से, पित्त-विकार से, चन्द्रमा हो तो जल से, वात और कफ से इत्यादि और २२वाँ द्रेष्काण, काल-पुरुष के जिस अंग में पड़ता हो (यथा मेष सिर, वृषभ मुख, मिथुन कंठ, बाहु फेफड़े, कर्क हृदय, सिंह उदर, कन्या नाभि, तुला बस्ति, वृश्चिक गुह्य अंग, धनु जाँघें, मकर घुटना, कुम्भ पिंडलियाँ, मीन पैर) उन अंग में रोग या पीड़ा से मृत्यु हो।

मृगाद्यो निगऽडस्त्र्यंशोऽहि कर्काल्यादिमोद्विकः ।
मीनान्त्यश्चाष्टमस्थेत्र काकश्वाद्यैः सभक्ष्यतो ॥१६॥

यदि अष्टम भाव में (जन्म लग्न द्रेष्काण से २२वाँ द्रेष्काण) मकर का प्रथम या कर्क या वृश्चिक राशि का प्रथम या द्वितीय या मीन राशि का अंतिम द्रेष्काण हो तो बन्धन में मारा जावे और कौए या कुत्ते उसके मांस को खावें, अर्थात् उसका विधिवत् अन्त्येष्टि-संस्कार न हो।

सौम्यस्यैष जले क्षेप्यः पापस्यैवञ्च पावके ।
पापस्य सेष्ट एवं वा सतः सोऽग्रेऽथ शुष्यति ॥१७॥

यदि अष्टम राशिस्थ द्रेष्काण सौम्य क्षेत्र में पड़े तो मृत

शरीर जल में फेंका जावे, यदि पाप-क्षेत्र में पड़े तो अग्नि में जलाया जावे। यदि सौम्य और पाप दोनों का सम्बन्ध हो तो (यथा द्रेष्काण राशि सौम्य हो परन्तु द्रेष्काणेश पापक्षेत्र में बैठा हो या द्रेष्काण राशि स्वामी पाप हो किन्तु शुभ क्षेत्र में बैठा हो) तो मृत शरीर सूखे। यह सब अकस्मात् अपमृत्यु, अनजाने स्थान में होने से होता है। देश, समाज, जाति की प्रथा का भी विचार कर लेना चाहिये। यथा, गंगा के किनारे किंचित् शरीर जल जाने के बाद गंगा में प्रवाहित कर देते हैं; हिन्दुओं में अग्नि-दाह किया जाता है; मुसलमान और ईसाइयों में गाड़ते हैं; पारसियों में गृध्रों आदि के खाने के लिए शव को ऊँची मीनार पर डाल दिया जाता है।

लग्नांशपतियुक्तर्क्षसमायां भुविमृत्युता।
देवाम्भोग्निक्रीडाकोषस्वप्नधूल्यवनौत्विनात् ॥१८॥

जन्म-लग्न का जो नवांश-उस नवांश का स्वामी जिस ग्रह को राशि में हो, उस ग्रह के अनुरूप भूमि में मृत्यु होती है। उदाहरण के लिए, मेष लग्न के २८ अंश हैं। तो धनु नवांश हुआ। धनु का स्वामी बृहस्पति है। बृहस्पति यदि कर्क राशि में है तो कर्क के स्वामो चन्द्रमा के तुल्य स्थान में मृत्यु होगी। अब प्रत्येक राशि के स्वामी के तुल्य भूमि बताते हैं (१) सूर्य-देव भूमि, (२) चन्द्रमा-जल समीप, (३) मंगल-अग्नि-समीप, (४) बुध-क्रीडागृह, (५) बृहस्पति खजाने के पास या जहाँ धन रखा हो, (६) शुक्र—शय्या में, (७) धूलि, भूमि में।

लग्नभोग्यांशकालोऽस्ति तावन्मोहात्ययो भवेत्।
स्वामीष्टेष्टेशयुक्तेक्षे वाङ्गे द्वित्रिषट् गुणाः ॥१९॥

मृत्यु के पूर्व कितने दिन तक मोह-मूर्च्छा-गफ़लत-बेहोशी की हालत रहे, यह बताते हैं। जन्म-लग्न के जितने नवांश भोग्य हों, उतने दिन तक बेहोशी की हालत। मान लीजिए, जन्म-लग्न

के नौ नवांशों में दो बीत चुके, सात बाकी हैं, तो सात दिन तक बेहोशी रहे। लग्न का लग्नेश देखे तो दुगुना काल, शुभ ग्रह देखे तो तिगुना काल; यदि लग्नेश और शुभ ग्रह दोनों देखें तो छः गुना काल।

केन्द्रार्यष्टोच्चसंस्थेज्ये मीनांगस्थे शुभांशगे।
होनैरन्यैः ध्रुवाष्टारित्र्यंशपस्यात्त सागतिः ॥२०॥

इसमें तीन योग बताये हैं—

(१) बली बृहस्पति (अर्थात् उच्च राशि का) केन्द्र में या छठे आठवें हो तो मोक्ष हो।

(२) यदि बृहस्पति मीन राशि का—शुभ अंश का लग्न में हो और अन्य ग्रह निर्बली हों तो मोक्ष हो।

(३) छठे तथा आठवें भाव में जो द्रेष्काण हो उसके तुल्य लोक प्राप्त हो। अर्थात् छठें, आठवें में जो बली हो उससे विचार करे। यदि द्रेष्काणेश बृहस्पति हो तो देवलोक को जावेगा; चन्द्रमा या शुक्र हो तो पितृलोक को; यदि सूर्य या मंगल हो तो तिर्यक् लोक को। बुध या शनि हो तो नरक को प्राप्त हो।

इस अध्याय में ७० योग बताये हैं।

———

पंचम कल्लोल

राजयोगाध्याय

मूर्त्तेयन्नवमं चेन्दोर्युक्तं तत्पेन वीक्षितम्।
तन्मित्रैर्वा निजदेशे धनी त्वन्यैस्तथापरैः ।।१।।

जन्म-लग्न या चन्द्रमा से नवम भाव यदि अपने स्वामी या स्वामी के मित्रों से युत या वीक्षित (देखा जाता) हो तो अपने देश में ही धनो होता है। यदि अपने स्वामी या स्वामी के मित्रों के अलावा ग्रहों से युत हो या देखा जाता हो तो परदेश में भाग्योदय होता है। किस राशि का कौन सा ग्रह स्वामी है, तथा किस ग्रह के कौन से ग्रह मित्र हैं—इसके लिये देखिये, 'सुगम ज्योतिष-प्रवेशिका'।

लग्नेद्वोः खस्य यो राशिः बली याद्दगथोखपः।
तत्सद्दग् वस्तु देशादेरर्थलाभस्तु नान्यथा ।।२।।

जन्म-लग्न तथा चन्द्रमा से जो दशम राशि वह यदि बलवान् हो या जन्म लग्न या चन्द्रमा से जो दशम राशीश, वह यदि बलवान् हो तो राशि तथा राशीश जिन वस्तु, कार्य, संबन्धी, आदि

के द्योतक हैं, उन्हीं वस्तुओं कार्य या सम्बाधियों से लाभ होता है। कौन-कौन सा ग्रह या कौन-कौन सी राशि किन-किन वस्तुओं की कारक हैं, इसके लिये देखिये 'सुगम ज्योतिष प्रवेशिका' तथा 'फलदीपिका' (भावार्थबोधिनी)। बली या निर्बल ग्रह कौन सा होता है, यह भी 'फलदीपिका' के चतुर्थ अध्याय में विस्तार से समझाया है। साधारणतया जो ग्रह षड्वर्ग में बली हो और शुभ ग्रहों से युत तथा वीक्षित हो वह बली समझा जाता है। जो राशि अपने स्वामी तथा शुभ ग्रहों से युत या वीक्षित हो, वह बली समझी जाती है।

तयोरर्थं खगोऽर्कादिः सोऽर्थदः स्वदशांगतः।
तात्तात्तातानुगाच्छत्रोर्मित्राद् भ्रातुः स्त्रिया भृतः ॥३॥

यदि लग्न या चन्द्रमा से दशमेश बली हो (या दशमस्थ बली ग्रह हो)—तो यदि सूर्य हो तो पिता से लाभ, चन्द्रमा हो तो माता से, मंगल हो तो शत्रु हो, बुध हो तो मित्र से, बृहस्पति हो तो भाई से, शुक्र हो तो स्त्री से, शनि हो तो भृत्यों से लाभ होता है। भृत्यों से लाभ कैसे ! नौकरों के ज़रिये काम-काज, धन्धा-रोज़गार कराने से।

खेशाश्रितांशपे वांगेद्वर्काणां तद्भावके।
सूर्याद्यंशगते स्वर्णतृणोर्णा रोगिसेवया ॥४॥

लग्न, चन्द्रमा, या सूर्य से दशम स्थान का स्वामी जिस ग्रह के नवांश में हो, उस नवांश स्वामी के अनुसार, वस्तु कार्य आदि बताते हैं जिनसे लाभ हो सकता है। यदि नवांश स्वामी सूर्य हो तो स्वर्ण, तृण (घास) ऊन, वैद्यकर्म, औषधि इत्यादि से।

स्त्रीसेवाकृषिमुक्तादेर्धात्वस्त्रानलसाहसात् ।
लिपि काव्यादिनादेव धर्मज्ञाकर तीर्थतः ।।५।।

यदि लग्न, सूर्य या चन्द्रमा से दशम स्थान का स्वामी चन्द्रमा के नवांश में हो तो स्त्री-सेवा, खेती, मोती जल से उत्पन्न वस्तुओं से लाभ हो। यदि मंगल के नवांश में हो तो धातु (ताँबा आदि) अस्त्र (या अस्त्र धारण करने से-- पुलिस या फौज में काम करने से) साहस के कार्य करने से (यथा-- डकैती, युद्ध आदि), अग्नि से (फैक्टरी आदि के कार्य से ; यदि नवांश स्वामी बुध हो तो लेखन-कार्य (समाचार-पत्र, प्रेस, पुस्तक लेखन प्रकाशन आदि से। बृहस्पति हो तो, देवताओं के कार्य, तीर्थ-सम्बन्धी व्यवसाय, कर (लगान, या सूद) पांडित्य आदि से लाभ होता है।

मणिभादेः श्रमाबंधैः भारोढ्या नीचकर्मभिः ।
मित्रस्वारिगृहे खेशे मित्रस्वारिगृहात् धनम् ।।६।।

यदि लग्न, सूर्य या चन्द्रमा से दशम स्थान का स्वामी शुक्र के नवांश में हो तो रत्न आदि से लाभ हो (शुक्र के अन्तर्गत खेती, मकान, सवारी, खुशबूदार पदार्थ, पेय द्रव्य, स्त्री, गाना-बजाना, सिनेमा, वस्त्राभरण भी आते हैं)। यदि शनि के नवांश में हो तो श्रम, बन्धन नीच कर्म से द्रव्य-लाभ होता है। शनि लोहा, तेल, पेट्रोल आदि से भी लाभ कराता है।

जिस उपाय से, लग्न, सूर्य या चन्द्रमा से दशमेश नवांशपति ग्रह के अनुसार द्रव्य-लाभ बताया गया है, वह रीति उन ग्रहों पर भी लागू करनी चाहिये जो लग्न, सूर्य या चन्द्रमा से दशम स्थान पर बैठे हों।

अब एक विशेष बात और बताते हैं। यदि उपर्युक्त विचारणीय ग्रह मित्र की राशि में बैठा हो तो मित्र से लाभ, यदि शत्रु की राशि में बैठा हो तो शत्रु से लाभ, और यदि अपनी ही राशि में बैठा हो तो स्वयं के उद्योग या भाग्य से लाभ समझना चाहिये।

लग्नस्वायगतैः सौम्यैर्बलिभिः स्वमनेकधा।
कर्मभिः सोर्जयेद् वार्के बलिन्युच्चैः स्ववीर्यतः ॥७॥

इस श्लोक में दो योग बताये गये हैं—(१)यदि लग्न, द्वितीय या एकादश में—या इन तीनों या दो स्थानों में—बलवान् शुभ ग्रह बैठे हों तो जातक अनेक उद्योगों से—धनोपार्जन करता है। (२) यदि बलवान् सूर्य अपनी उच्च राशि में बैठा हो तो जातक अपने पराक्रम से द्रव्य प्राप्त करता है।

भादिमध्यान्तगेंगस्थे भूदेशग्रामपोङ्गपे।
षट्त्र्याये स्वर्क्षगेस्विन्दोः सौम्येष्वीशोऽथवा धनी ॥८॥

इसमें दो योग बताये हैं—(१) यदि बलवान् लग्नेश लग्न में प्रथम द्रेष्काण (० अंश से १०° अंश तक) में हो तो जातक भूपति राजा या राजा के तुल्य) हो; यदि द्वितीय द्रेष्काण (१०° अंश से २०° अंश तक)में हो तो एक प्रदेश का मलिक,अधिपति,या प्रदेश पर हुकूमत करने वाला हो। यदि तृतीय द्रेष्काण (२१° अंश से ३०° अंश तक) में हो तो ग्राम का मालिक या ग्राम पर हुकूमत करने वाला हो।

(२) चन्द्रमा से तृतीय स्थान का मालिक सौम्यग्रह चन्द्रमा से तृतीय में, चन्द्रमा से छठे स्थान का मालिक सौम्य ग्रह चन्द्रमा से

छठे में,और चन्द्रमा से एकादश का मालिक सौम्य ग्रह चन्द्रमा से एकादश में हो तो जातक ईश (उच्च पदाधिकारी) या धनी होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा से तृतीय, षष्ठ, तथा एकादश के स्वामी अपनी-अपनी उपर्युक्त राशि में हों तो पूर्ण राजयोग होगा। यदि तीन की बजाय दो ही ग्रह उपर्युक्त स्थान में हों तो अल्प राज-योग और यदि केवल एक ही ग्रह उपर्युक्त स्थान में हो तो और भी अल्प राज-योग समझना। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिये कि तृतीयाधिप षष्ठाधिप तथा एकादशाधिप सौम्य (शुभ-ग्रह) होने चाहिये।

चन्द्रमा यदि, कर्क, में, हो उसी दशा में तृतीयश, षष्ठेश लाभेश सौम्य ग्रह होंगे, परन्तु इस स्थिति में भी चन्द्रमा से तृतीय बुध, और एकादश में शुक्र हो नहीं सकता। वृष में चन्द्र होने से तृतीयेश स्वयं चन्द्रमा हो जावेगा। इसलिये यह योग लागू नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में चन्द्रमा से तृतीय, षष्ठ और लाभ में स्वगृही ग्रह हों तो भी योग होगा, किंतु किंचित् न्यून। अन्य शास्त्रकारों ने यह भी कहा है कि चन्द्रमा से सब शुभ ग्रह उपचय में हों (स्वराशि का बंधन नहीं है) तो भी जातक धनी होता है।

उच्चेंगगे गुरौ ज्ञेन्दुशुक्रै रायेपदे रवौ।
सूर्येऽजाङ्के गुरौ धर्मे कुजे खे भवगे शनौ ॥६॥

इसमें दो राजयोग बताये गये हैं— (१) कर्क राशि का बृहस्पति लग्न में हो, चन्द्रमा, बुध तथा शुक्र वृषभ के आय(एकादश) में हों तथा मेष का सूर्य दशम में हो, (२) सूर्य मेषराशि का लग्न में हो, धनु का बृहस्पति नवम में, मकर का मंगल दशम में और कुंभ का शनि एकादश में। दोनों प्रबल राज-योग हैं।

तुंगेंगेऽर्के गुरौ चार्कौ वारे च स्वर्क्षगे विधौ ।
स्वांशेगे वा विधौ दृष्टे निश्चन्द्रैश्चतुरादिभिः ॥१०॥

(१) सूर्य, शनि, मंगल, बृहस्पति यदि अपनी-अपनी उच्च राशि में केन्द्र में हों तो प्रवल राज-योग होता है। मेष, कर्क, तुला या मकर लग्न से यह चार राजयोग हुए।

(२) सूर्य, बृहस्पति, शनि यदि अपनी-अपनी उच्च राशि में केन्द्र में हों और इनमें से कोई एक लग्न में हो तो भी प्रवल राज-योग है।

३) सूर्य, मङ्गल, बृहस्पति यदि अपनी-अपनी उच्च राशि में हों और उपर्युक्त तीनों ग्रहों में से कोई एक लग्न में हो तो भी प्रवल राजयोग है।

(४) सूर्य, मङ्गल और शनि यदि अपनी-अपनी उच्च राशि में हों और इनमें से कोई लग्न में हो तो भी प्रवल राज-योग है।

(५) मङ्गल, बृहस्पति, शनि यदि अपनी-अपनी उच्च राशि में हों और इन तीनों में यदि कोई लग्न में हो तो भी प्रवल राज-योग है।

(६) सूर्य मेष राशि का लग्न में, बृहस्पति, चन्द्र कर्क के चतुर्थ में राजयोगकारक हैं।

(७) चन्द्र, बृहस्पति कर्क के, सूर्य मेष का हो। यदि कर्क लग्न हो तो उत्तम राजयोग है। अन्य राजयोगकारक ग्रह-स्थिति-याँ नीचे दी जाती हैं —

(८) मेष का सूर्य लग्न में, चतुर्थ में कर्क का चन्द्रमा, सप्तम में तुला का शनि।

(६) तुला का शनि लग्न में, कर्क का चन्द्र दशम में, सप्तम में मेष का सूर्य ।

(१०) मेष का सूर्य, कर्क का चन्द्रमा, मकर का मंगल—यदि जन्म-लग्न मेष या मकर हो ।

(११) कर्क का चन्द्रमा और बृहस्पति तथा तुला का शनि यदि कर्क या तुला लग्न हो ।

(१२) कर्क के चन्द्रमा और बृहस्पति तथा मकर का मंगल यदि कर्क या मकर लग्न हो ।

(१३) कर्क का चन्द्रमा, तुला का शनि, मकर का मंगल यदि तुला या मकर लग्न हो ।

(१४) मेष का सूर्य, कर्क का चन्द्रमा, यदि मेष लग्न हो ।

(१५) तुला का शनि लग्न में, कर्क का चन्द्र दशम में ।

(१:) मकर का मंगल लग्न में, कर्क का चन्द्रमा सप्तम में ।

(१७)* यदि लग्न या चन्द्रमा वर्गोत्तम हो और उस वर्गोत्तम लग्न को, या वर्गोत्तम चन्द्रमा को सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति शुक्र, शनि—इन छः ग्रहों में से कोई से चार पूर्ण दृष्टि से देखें तो प्रबल राजयोग है । चार से अधिक ग्रह देखें तो योग नष्ट नहीं होता किन्तु कम से कम चार ग्रहों की दृष्टि (पूर्ण दृष्टि) आवश्यक है ।

---

* इस योग में यदि वर्गोत्तम लग्न को चार, पाँच या छः ग्रह देखतें हो और उनके अलावा चन्द्र भी देखता हो तो योग भंग नहीं होता । चन्द्रमा की गणना, द्रष्टा ग्रहों में नहीं की जाती है, केवल यह कथन उद्देश्य है ।

अथाजेर्के वृषे चन्द्रे वार्कौ कुंभे तनुस्थिते ।
नृयुक्सिंहालिगैश्च ज्ञजीवारैर्भूपतिर्बली ॥११॥

(१) लग्न में सूर्य मेष में या लग्न में चन्द्रमा वृष में या लग्न कुंभ में शनि हो ।

(२) मिथुन में बुध, सिंह में बृहस्पति, वृश्चिक में मंगल हो तो जातक राजा होता है ।

किन्तु यहां विचारणीय यह है कि यदि मेष में सूर्य हो तो मिथुन में बुध नहीं हो सकता । वास्तव में पूर्ण राजयोग तो तभी होगा जब मेष में सूर्य, वृष में चन्द्रमा कुंभ में शनि हो, और इन तीनों में से कोई लग्न में हो, और बहस्पति सिंह में तथा मंगल वृश्चिक में हो ।

मूर्तावुच्चे विधौ स्त्रीगौ ज्ञार्कौ शुक्रेज्यभूमिजाः ।
तौलिकर्कालिगाः स्युश्च यदि राजैवमर्कजे ॥१२॥

इसमें दो राजयोग बताये गये हैं—

(१) वृष लग्न हो, लग्न में उच्च राशि का चन्द्रमा हो, सूर्य, बुध कन्या में हों, तुला में शुक्र, कर्क में बृहस्पति, वृश्चिक में मंगल हो ।

(२) तुला लग्न हो, लग्न में शुक्र और शनि, मेष में मंगल, कर्क में बृहस्पति, कन्या में सूर्य और बुध ।

सारैणाङ्गे स्त्रगार्के द्वौ वात्र साब्जेस्त्रगे रवौ ।
अजाङ्गेर्के मदे मन्दे सेन्दौ धर्मे गुरौ विभुः ॥१३॥

इसमें तीन राजयोग बताए गए हैं—

(१) लग्न में मंगल और चन्द्रमा मकर में और सूर्य धनु में ।

(२) लग्न में मकर का मंगल, धनु में सूर्य और चन्द्र ।

(३) मेष का सूर्य लग्न में, तुला का शनि सप्तम चन्द्रमा के साथ तथा बृहस्पति धनुराशि में नवम में।

वृषांगेऽब्जे स्मरे जीवे खे यमेऽर्के सुखे प्रभुः।
त्र्यारिधर्मान्त्यगे वेन्द्वादिकेरेणांगगे शनौ ॥१४॥

इसमें दो राजयोग बताए गए हैं—

(१) वृष लग्न हो, लग्न में चन्द्रमा हो, सप्तम में बृहस्पति, दशम में शनि, तथा चतुर्थ में सूर्य हो।

(२) मकर का शनि लग्न में हो, तृतीय में मीन का चन्द्रमा हो, छठे में मंगल, नवम में बुध, द्वादश में बृहस्पति हो।

सेंदौ जीवेऽस्त्रगे भौमे मृगे वोच्चेंगगे सिते।
बुधे वा धीस्थ भौमार्क्योस्तूर्यस्थे ज्येन्दुभार्गवैः ॥१५॥

इसमें दो राजयोग बताए गए हैं—

(१) मीन लग्न हो, लग्न में उच्च का शुक्र हो, बृहस्पति और चन्द्रमा धनु में तथा मकर में मंगल हो।

(२) कन्या लग्न, लग्न में उच्च बुध, मंगल और शनि पंचम में और चतुर्थ में चन्द्र, बृहस्पति और शुक्र।

सेन्दौ झषाङ्गे कुंभैरा सिंहस्थार्के कुजांशुभिः।
सारेऽजांगे गुरौ कर्के वा कर्कांगे गुरौ तथा ॥१६॥

इस श्लोक में तीन राजयोग बताए हैं—

(१) मीन लग्न में चन्द्रमा, कुम्भ में शनि, मकर में मंगल, सिंह में सूर्य हो।

(२) मेष का मंगल लग्न में, बृहस्पति कर्क का चौथे में हो।

(३) कर्क का बृहस्पति लग्न में हो, दशम में मेष का मंगल हो।

वृषे शुक्रेम्बुगे चन्द्रे धर्मे व्यंगायगेतरैः ।
पुष्टे ज्ञेंगे शुभैः केऽन्यैर्धमस्वोपचयाश्रितैः ॥१७॥

इसमें दो राजयोग बताए गए हैं—

(१) चतुर्थ स्थान में वृष का शुक्र हो, नवम में चन्द्रमा हो तथा अन्य ग्रह लग्न से प्रथम, तृतीय या एकादश में (इन तीन राशियों में से एक, दो या तीन राशियों में हों)।

(२) वली बुध लग्न में, शुभ ग्रह चतुर्थ में, अन्य ग्रह लग्न से द्वितीय नवम या उपचय (लग्न से तृतीय, षष्ठ, दशम या एकादश में)।

उच्चेंगेऽब्जे यमे षष्ठे जीवे स्वे लाभगैः परैः ।
मन्देङ्गगे पदेऽर्केन्द्वोः जीवेंबुन्यायगैः परैः ॥१८॥

इसमें दो राजयोग बताए गए हैं—

(१) उच्च का चन्द्रमा लग्न में, छठे तुला का शनि, बृहस्पति लग्न से द्वितीय में अन्य ग्रह लग्न से एकादश।

(२) लग्न में शनि,दशम में सूर्य,और चन्द्र, चतुर्थ में बृहस्पति, अन्य ग्रह एकादश में।

(हमारे विचार से धनु लग्न होने से यह ग्रह-स्थिति राजयोग कारक होगी।)

इसमें तीन राजयोग बताए गए हैं—

शश्यार्केज्याः खायंगस्थाः ज्ञारौ स्वेर्कसितौ सुखे ।
मंशौलग्नेऽस्तरवांब्वाय धर्मेज्यार्केन्दुवित्सितैः ।१९।

(१) लग्न में बृहस्पति, दशम में चन्द्रमा, एकादश में शनि हो।

(२) मंगल और बुध द्वितीय में तथा सूर्य और शुक्र चतुर्थ में ,किन्तु यदि बुध द्वितीय में हो तो सूर्य चतुर्थ में हो नहीं सकता) ।

(३) मंगल और शनि लग्न में, चतुर्थ में चन्द्रमा, दशम में सूर्य, नवम में शुक्र, एकादश म बुध और सप्तम में बृहस्पति ।

साकौं मृगांगे स्यादीशः सेशैः खास्ताष्टभू शुभैः ।
कन्याङ्गे ज्ञे सिते खेऽस्ते जीवेन्द्वोर्धीयमारयोः ॥२०॥

इसमें दो राजयोग बताए गए हैं—

(१) मकर लग्न हो, लग्न में शनि हो, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम तथा दशम के स्वामी उन-उन भावों में स्वगृही हों; अर्थात् मेष का मङ्गल, कर्क का चन्द्रमा, सिंह का सूर्य, कन्या का बुध और तुला का शुक्र ।

(२) कन्या लग्न में बुध हो, शुक्र दशम में, सप्तम में बृहस्पति तथा चन्द्र एकत्र हों । लग्न से पंचम मङ्गल और शनि हों । किन्तु

बुध से दशम शुक्र नहीं हो सकता, इसलिये यह योग घटित नहीं हो सकता ।

'बृहज्जातक' (अध्याय ११, श्लोक ११) में इसी प्रकार का योग आया है। बहुत उच्च अक्षांशों में यथा इंग्लैण्ड, नॉर्वे आदि देशों में ऐसा होता है कि लग्न और दशम में तीन राशि का अन्तर नहीं होता।

उदाहरण के लिए, ओसलो नगर (नार्वे) अक्षांश ५९-५४ उत्तर, देशान्तर १०-४५ पूर्व में, रविवार १६ मई १९४८ को

रात्रि के ११ बजकर ३० मिनिट नॉर्वे-टाइम पर एक कन्या का जन्म हुआ। निरयन लग्न स्पष्ट धनु (१°-३०'-४६") आया। दशम स्पष्ट निरयन तुला (२२°-१'-४६") हुआ। इस प्रकार जन्म स्थान का अति उच्च अक्षांश (५९-५४) होने के कारण लग्न और दशम स्पष्टों में केवल १ राशि ९ अंश २९ कला का अन्तर हुआ।

सम्भवतः वराहमिहिर आदि प्राचीन ग्रन्थकर्ताओं ने कुछ योग रोम अथवा यूनान के ज्योतिषियों से लिए हों जो भूमध्य रेखा के समीप के देशों में लागू नहीं हो सकते।

आद्यैरुच्चैस्त्रिकोणस्थैः संपुष्टैर्नृपजो नृपः।
पंचाद्यैरन्यजः पुष्टैः सवित्तः स्यान्नृपोपमः ॥२१॥

यदि बलवान् तीन या अधिक ग्रह अपनी उच्च या मूल त्रिकोण राशि में हों और जातक राजवंश में उत्पन्न हो तो राजा होता है। यदि जातक राजवंश में उत्पन्न न हो तो पांच या अधिक ग्रह अपनी-अपनी उच्च या मूल त्रिकोण राशियों में हों तो जातक अत्यन्त धनी और राजा के समान होता है।

ये ग्रंथ उस समय लिखे गये थे जब प्रायः राजवंश के लोग ही राजा हुआ करते थे। अब भी जो प्राइम मिनिस्टर की सन्तान होती हैं वह थोड़े भी राज योग से प्राइम मिनिस्टर हो जाती हैं।

इस योग में एक विशेषण की ओर विशेष ध्यान दिलाया जाता है। वह यह कि ग्रहों का केवल अपनी उच्च या मूल-त्रिकोण राशि में होना ही आवश्यक नहीं है। मूल-त्रिकोण या उच्च राशि में रहते हुए भी ग्रह बलवान होने चाहिए।

बली ग्रह तब होता है जब स्थान-बल, काल-बल, दिक्-बल, चेष्टा-बल, दृग्बल आदि से बली हो। इन बलों के विशेष विव-

रण के लिये देखिये, 'फलदीपिका' (भावार्थ-बोधिनी, अध्याय ४)।

खस्थो यो वांगगः पुष्टो राज्यदः स्वदशोदये।
शत्रुनीचर्क्षयातस्य दशायां च्युतिसंश्रयौ ॥२२॥

इसमें दो बातें बताई गई हैं। जो बलवान् ग्रह दशम में या लग्न में होता है उसकी दशा (अन्तर्दशा) में जातक का भाग्योदय होता है। तथा जो ग्रह अपनी नीच, राशि या शत्रु-राशि में होता है उसकी दशा में पतन (गिराव, हानि) होता है।

शुक्रेज्यज्ञेंगगे खेऽर्के यमेऽस्ते भोगवान्नरः।
केन्द्रैः शुभर्क्षैः पापर्क्षगान्यैः शबरचौरराट् ॥२३॥

इसमें दो योग बताये गये है—

(१) यदि शुक्र, बृहस्पति या बुध लग्न में हो, दशम में सूर्य, सप्तम में शनि हो तो जातक भोगवान् होता है। बुध और शुक्र सूर्य से चतुर्थ में नहीं हो सकते, इसलिये केवल बृहस्पति को ही लग्न में लेना पड़ेगा।

(२) यदि केन्द्र में बलवान् शुभग्रह हों और पापग्रह पापक्षेत्रों में हों तो जातक दस्युओं का सरदार होता है।

दूसरे योग का एक अन्य टीकाकार अर्थ करते हैं कि—शुभ-ग्रह केन्द्र में पाप ग्रह की राशियों में या पापग्रह केन्द्र में शुभग्रह की राशियों में हों तो दस्युओं (लुटेरों) का नायक होता है।

स्वाधिमित्र त्रिकोणोच्च सद्वर्गादियुतोदिताः।
लग्नांशराशिपेष्टान्याः राज्यदाः व्यस्त गात् तु ॥२४॥

यदि लग्न, नवांश, तथा चन्द्रराशि के स्वामी, स्वराशि, अधि-मित्र की राशि, मूल त्रिकोण, या उच्च राशि में हों तथा शुभ

षड्वर्गों में हो और शभग्रहों से दृष्ट हों तो राज्य देने वाले अर्थात् भाग्योदय करने वाले होते हैं। यदि इससे उलटा हो अर्थात् लग्न, नवांश तथा चन्द्र राशि के स्वामी अपनी नीच या शत्रुराशि में हों, पाप ग्रहों के वर्ग में पापग्रहों से दृष्ट हों तो व्यसन (कष्ट, आपत्ति) करते हैं।

केन्द्रस्वर्क्षोच्चगैः शुक्रारेज्यार्किज्ञैः स राज्यभाक् ।
खर्षि खर्षि नभोनन्द खर्षि खाष्टसमानरः ॥२५॥

यदि मंगल अपनी राशि या अपनी उच्च राशि में केन्द्र में हो तो राजयोग है। जातक ७० वर्ष की अवस्था तक राज्य-सुख भोगता है। यदि मिथुन या कन्या राशि में बुध केन्द्र में हो तो जातक ८० वर्ष की अवस्था तक राज्य-सुख भोगता है। यदि अपनी राशि या अपनी उच्च राशि में बृहस्पति केन्द्र में हो तो प्रबल राजयोगकारक होता है। उसकी आयु ९० वर्ष की होती है। यदि वृषभ, तुला या मीन का शुक्र लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम में हो तो ७० वर्ष तक राज्याधिकारी भाग्यवान् होता है। यदि शनि तुला, मकर या कुंभ राशि का केन्द्र में हो तो ७० वर्ष की अवस्था तक राजयोग प्रदान करता है।

सभी केन्द्रों में सभी ग्रह समान रूप से बलशाली नहीं होते। बुध और बृहस्पति लग्न में, शुक्र चतुर्थ में, शनि सप्तम में तथा मंगल दशम में विशेष बलशाली होते हैं।

शीर्षपृष्ठोभयर्क्षस्थाः केन्द्रजीवांगराशिपाः ।
वयसोऽथादिमध्यान्ते राज्यार्थे सत्त्वसौख्यदाः ॥२६॥

अर्थात्, यदि बृहस्पति, लग्नस्वामी तथा चन्द्रराशि के स्वामी केन्द्र में शीर्षोदय राशि में हों तो जीवन के आदि काल में—प्रारम्भिक अवस्था में शुभ फल देते हैं। उपर्युक्त ग्रह केन्द्र में

यदि पृष्ठोदय राशि में रहें तो मध्यावस्था में फल देते हैं। यदि ये तीनों (बृहस्पति, लग्नेश, जन्मराशीश) उभयोदय राशि में हों तो जीवन के अन्तिम काल में, वृद्धावस्था में, शुभ फल देते हैं।

हमारे विचार से उभयोदय राशि में स्थित ग्रह मध्यावस्था में और पृष्ठोदय राशि में बैठे हुए वृद्धावस्था में फलदायक होने चाहिएँ।

बादरायण कहते हैं कि केन्द्र में ग्रह अतिबली होते हैं पणफर में मध्यबली और आपोक्लिम में हीनबली। होराशास्त्र की टीका में रुद्रभट्ट लिखते हैं कि पृष्ठोदय राशियाँ दीर्घकाल में फल देती हैं, इसलिए पृष्ठोदय राशि-स्थित ग्रह पीछे फल देते हैं। उभयोदय राशि में स्थित ग्रह मध्यकाल में फल देते हैं।

शीर्षोदय राशियाँ विशेष शुभ फल देने वाली हैं। पृष्ठोदय राशियाँ उतनी अच्छी नहीं होतीं।

मेष, वृष, कर्क, सिंह, धनु पृष्ठोदय राशियाँ हैं। मीन उभयोदय है। अन्य राशियाँ शीर्षोदय हैं।

इस अध्याय में ६६ योग बताये हैं।

———

छठा कल्लोल

योगाध्याय

खास्ताम्बुगैः क्रमाच्चन्द्रशुक्रपापैः स्ववंशहा।
स्त्र्यंगेऽर्केऽस्ते यमे स्त्रीघ्नः सुते चारे स्त्पुत्रहा ॥१॥

इस श्लोक में तीन योग बताये गये हैं:—

(१) यदि दशम में चन्द्रमा, सप्तम में शुक्र और चतुर्थ में पापग्रह हों तो जातक के वंश का नाश हो

(२) यदि कन्या का सूर्य लग्न में हो, सप्तम (मीन का) शनि हो तो जातक की पत्नी का मरण हो।

(३) यदि पाँचवें मंगल हो तो जातक के पुत्र की मृत्यु हो।

शुक्रात् तुर्याष्टगैः पापैस्तद्र भार्या म्रियतेऽग्नितः।
सिते तन्मध्यगे पातात् पाशान्निःसोम्यदृग्युते ॥२॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं:—

(१) यदि शुक्र से चतुर्थ, अष्टम (दोनों स्थानों में) पापग्रह हों तो जातक की भार्या (पत्नी) की अग्नि से मृत्यु होती है।

(२) यदि शुक्र दो पापग्रहों के मध्य में हो तो जातक की पत्नी की गिरने से (उच्च स्थान से पतन से) मृत्यु होती है।

(३) यदि शुक्र पाप-मध्य में हो और शुभ ग्रह की दृष्टि न हो, तो पाश (फाँसी लगने, आत्म-हत्या आदि से) मृत्यु हो ।

काणः पत्न्या सहार्केन्द्वोः व्ययारौ चैकनन्दनः ।
क्षीणांगा स्त्री सुते वास्ते धर्मे वा सूर्यशुक्रयोः ॥३॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) जातक स्वयं तथा उसकी पत्नी भी, दोनों काने (एकाक्ष) हों, सूर्य और चन्द्रमा लग्न से छठें बारहवें हों, छठे सूर्य, द्वादश में चन्द्रमा या द्वादश में सूर्य छठे चन्द्रमा, ऐसे दम्पती के पुत्र भी एक ही होता है ।

(२) यदि सूर्य-शुक्र, दोनों एक साथ पंचम, सप्तम या नवम में हों, तो जातक की पत्नी हीनांगा (किसी अंग से हीन) या क्षीणांगा (शरीर से दुर्बल) होती है ।

मूर्त्ते वेन्दोः स्मरे चैकद्वित्रिपुष्टशुभेषु सा ।
वेष्टवर्गेऽथ वेशेक्ष्ये स्त्री भव्याथ खलेषु न ॥४॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि जन्म-लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान में एक, दो या तीन बलवान् शुभ ग्रह हों तो जातक की पत्नी भव्या (सुन्दरी) हो ।

(२) यदि जन्म-लग्न या चन्द्र राशि से सप्तम का स्वामी सौम्य (शुभ ग्रहों के) षड्वर्ग में हो और शुभ ग्रहों से दृष्ट हो—पाप ग्रहों से नहीं—तो जातक की पत्नी भव्या हो ।

एकार्कांशगौ ज्ञेज्यौ वात्रार्केन्दू परप्रिया ।
शुक्रेज्यौ तु स्ववर्णार्कौद्वाराकैरन्यवर्णजा ॥५॥

इसमें चार योग बताये गये हैं—

(१) यदि बुध-बृहस्पति सप्तम में सूर्य या मंगल के नवांश में हों तो जातक के एक ही पत्नी होती है।

(२) यदि सप्तम में चन्द्रमा और शनि हों तो जातक की पत्नी परप्रिया (दूसरे आदमी की प्रिया) होती है।

(३) यदि बृहस्पति या शुक्र सप्तम में हों तो अपनी जाति की कन्या से ही विवाह होता है।

(४) यदि सप्तम में सूर्य, मंगल, चन्द्र या शनि हों तो अन्य जाति की कन्या से भी विवाह की संभावना है। किस जाति की कन्या से विवाह होगा, यह भविष्य-वाणी करते समय देश, काल, पात्र का भी विचार कर लेना चाहिये।

विस्त्रीसुतोंत्यास्तांगस्थैः पापैर्धीस्थे च दुर्विधौ।
कामगाभ्यां यमाराभ्यां स चैकस्थेन्दुशुक्रयोः ॥६॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं—

(१) यदि लग्न में, सप्तम में और द्वादश में पापग्रह हों तथा पंचम में क्षीण चन्द्र हो तो जातक स्त्री-हीन, पुत्र-हीन हो।

(२) यदि सप्तम में मंगल और शनि हों तो भी यही फल हो।

(३) यदि सप्तम में चन्द्र-शुक्र दोनों साथ हों और उन से सप्तम मंगल तथा शनि हो तो यही फल हो।

लग्नस्थार्कीक्षिते सज्ञे त्र्यंशे शिल्पादिजीविकः।
चित्र्यंगेऽब्जे मदे सूर्ये व्ययार्थस्थयमारयोः ॥७॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि लग्न में शनि से दृष्ट बुध शनि के द्रेष्काण में हो तो जातक शिल्प से आजीविका उपार्जन करता है।

(२) यदि लग्न में चन्द्र, सप्तम में सूर्य और द्वादश तथा द्वितीय में शनि और मंगल हों तो जातक चित्रकार होता है।

कुकर्मास्तगयोरर्कचन्द्रयोः शनिदृष्टयोः।
मिथो भांशस्थयोः शोषी चैतयोस्तनुर्दुर्बलः ॥८॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि सप्तम में सूर्य और चन्द्रमा हों और उन पर शनि की दृष्टि हो तो जातक कुकर्म करने वाला होता है।

(२) यदि सूर्य चन्द्रमा के नवांश में हो और चन्द्रमा सूर्य के नवांश में हो तो जातक दुर्बल शरीर का होता है और उसको 'शोष' रोग भी होता है। जिस रोग में शरीर का शोषण होता चला जावे उसे शोष रोग कहते हैं। यदि सूर्य चन्द्रमा की राशि में और चन्द्रमा सूर्य की राशि में हो तो भी यही फल होगा।

शुक्रेन्त्यस्थे यमांशस्थे दासीजातोऽयमित्यपि।
चन्द्रे खेस्ते कुजे सौरे वेशिगे सोंगवर्जितः ॥९॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि लग्न से द्वादश स्थान में शुक्र, मकर या कुंभ नवांश में हो तो जातक दासी-पुत्र होता है।

(२) यदि चन्द्रमा दशम में हो, मंगल सप्तम में हो, तथा सूर्य जिस राशि में हो उसमें द्वितीय राशि में शनि हो, तो अंगहीन हो। कोई अंग न हो या ठीक काम नहीं करता हो।

अस्ते शुक्रारयोः पापदृष्टयो वांघ्रिरुक् शिशुः।
कर्काल्यंशगते चन्द्रे स पापे गुह्यरुग् भवेत् ॥१०॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि जन्म-लग्न से सप्तम स्थान में मंगल और शुक्र हों तो जातक के पैर में रोग हो।

(२) यदि पाप ग्रह के साथ चन्द्रमा हो और चन्द्रमा कर्क या वृश्चिक नवांश में हो तो गुह्य स्थान (मूत्रेन्द्रिय या गुदा आदि) में रोग हो।

मृगेऽर्केऽब्जे यमारान्तः श्वासप्लीहकगुल्मरुक्।
कर्केण मीनजांशस्थे चन्द्रे कुष्ठ्यारयुग् दृशि ॥११॥

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) यदि सूर्य मकर में हो और चन्द्रमा, मंगल तथा शनि इन दो पाप ग्रहों के मध्य में हो तो श्वास (दमा), प्लीहा या गुल्म का रोग होता है।

(२) यदि चन्द्रमा मेष, कर्क, मकर या मीन नवांश में हो और मंगल से देखा जावे तो कुष्ठ रोग होता है।

धन्विपंचांशगे चन्द्रे कुष्ठ्यारार्कीक्षितेऽन्विते।
वांगे कर्कैणगोलीनामेवोग्रेक्ष्ये त्रिकोणगे ॥१२॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि चन्द्रमा धनु राशि के पंचम नवांश में हो और मंगल तथा शनि के साथ हो या इन दोनों पापग्रहों से दृष्ट हो तो कुष्ठ रोग होता है।

(२) यदि चन्द्रमा वृषभ, कर्क, वृश्चिक या मकर राशि में लग्न से प्रथम, पंचम या नवम में हो और मंगल तथा शनि दोनों पापग्रहों से युत या वीक्षित हो तो भी कुष्ठरोग हो।

अन्धोऽर्केन्द्वारसौरैः स्वाष्टांत्यारिस्थैर्यथा तथा ।
एतैस्त्रिधर्मध्यायस्थैः बधिरोऽस्तेऽथ कुद्विजः ॥१३॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं—

(१) यदि लग्न से द्वितीय, षष्ठ अष्टम और द्वादश में सूर्य, चन्द्रमा, मंगल और शनि में हों इन चारों में से कोई अष्टम, कोई षष्ठ, कोई द्वादश, कोई धन (द्वितीय) में, तो जातक अन्धा हो जाता है ।

(२) यदि ये चारों ग्रह लग्न से तृतीय, पंचम नवम और एकादश में हों (चारों में से कोई, तृतीय, कोई पंचम, नवम, और एकादश) तो जातक बहरा होता है ।

यहाँ ध्यान दिलाया जाता है कि द्वितीय स्थान दक्षिण नेत्र का है, द्वादश स्थान वाम नेत्र का; तृतीय स्थान दक्षिण कान का है एवं एकादश स्थान बांयें कान का ।

(३) यदि ये चारों ग्रह लग्न से सप्तम हों और उनपर शुभ दृष्टि न हो तो जातक के दाँत खराब होते हैं या जातक के दाँतों में पीड़ा होती है ।[1]

अन्धोऽर्केंगेऽहिभुक्ते च त्रिकोणस्थारसौरयोः ।
पिशाचोऽब्जे तु चोग्रेक्ष्ये गोजास्त्रांगे कुदन्तकः ॥१४॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं—

(१) यदि लग्न में राहु और सूर्य हों और त्रिकोण में मंगल तथा शनि हों तो जातक अंधा हो जावे ।

---

१. यदि चार ग्रहों के बजाय दो पापग्रह मंगल या शनि सप्तम में सौम्य-ग्रह दृष्टिरहित होंगे तो भी दन्तविकार होगा, किन्तु अल्प होगा ।

(२) यदि लग्न में राहु और चन्द्रमा हों और त्रिकोण में मंगल-शनि हों तो पिशाच-बाधा होती है। अर्थात् जातक के शरीर या मन में, भूत-प्रेत पिशाच आविष्ट हो जाता है और उसमें प्रमाद, उन्माद आदि मानसिक विकार के रूप में रोग उपस्थित हो जाते हैं। इनको पिशाच-बाधा कहते हैं।

(३) यदि मेष, वृष या धनु लग्न हो और लग्न को पापग्रह देखें तो दाँतों में विकार हो।

राश्यंशकपतीन्द्वर्क जीवैर्नीचर्क्षपांशगैः।
अमित्रांशगतैर्वैतैर्जातो दासो भवेदयम् ॥१५॥

यदि जन्म-राशि का स्वामी, चन्द्र नवांशपति तथा सूर्य चन्द्र और बृहस्पति अपनी नीच राशि, नीच नवांश या शत्रु नवांश में हो तो जातक दास होता है। अब दास (खरीदा हुआ गुलाम) प्रथा नष्ट होगई है, इसलिये यह अर्थ समझना चाहिये कि जातक हीन-वृत्ति का, पराधीन और दरिद्र होता है।

पापर्क्षगे वृषे वास्त्रे खल्वाटः पापवीक्षिते।
धीस्वधर्मांत्यगैः पापैर्लग्नर्क्षाभाऽस्य बन्धता ॥१६॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं—

(१) यदि लग्न में पापग्रह की राशि हो, लग्न को पापग्रह देखते हों तो खल्वाट (गंजा) होता है।

(२) यदि लग्न वृष या धनु हो और उसको (लग्न को) पाप ग्रह देखते हों तो खल्वाट होता है।

(३) यदि लग्न से द्वितीय, पंचम, नवम और द्वादश में पाप ग्रह हों तो लग्न राशि सदृश बन्धन को प्राप्त हों। किस राशि

के लग्न गत होने से किस प्रकार का बन्धन प्राप्त होता है, यह नीचे बताते हैं—

यदि मेष, वृष, सिंह या धनु लग्न हो तो रस्से से बाँधा जावे। यदि कर्क, मकर या मीन लग्न हो तो विना किसी बन्धन के किले, जेल या पुलिस-थाने में बन्द किया जावे। अर्थात्, हिरासत में रक्खा जावे। वृश्चिक लग्न हो तो तहखाने में बन्द किया जावे। मिथुन, कन्या, तुला या कुंभ लग्न हो तो हथकड़ी-बेड़ी लगे।

साक्यरिक्ष्ये विधौ दुर्वाक् साग्रेऽर्के कोणगे कुदृक्।
एवं शनौ बहुव्याधिरेवं भौमेंगहीनकः ॥१७॥

इसमें चार योग बताये गये हैं—

(१) यदि मंगल और शनि चन्द्रमा को देखते हों तो दुर्वचन बोलने वाला हो।

(२) यदि मंगल और शनि-दृष्ट सूर्य त्रिकोण में हों तो नेत्र-विकार हो। यदि 'सोग्रेऽर्के' पाठ लिया जावे तो यह भी अर्थ होता है कि पापग्रह के साथ सूर्य त्रिकोण में हों तो नेत्र-विकार हो।

(३) यदि सूर्य मंगल-दृष्ट शनि त्रिकोण में हों तो बहुत व्याधियाँ (बीमारियाँ) हों।

(४) यदि सूर्य, शनि-दृष्ट मंगल त्रिकोण में हो तो अंगहीन हो।

खस्थार्कारार्किभिः सौम्या दृष्टेर्भृत्यो वरादिकः।
जीवेंगेऽस्ते यमे सारे वाती वारेऽस्तकोणगे ॥१८॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं—

(१) यदि सूर्य, मंगल, शनि दशम में हों और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तो जातक सेवा वृत्ति करता है। यदि इन तीनों में एक हो तो उत्तम प्रकार की नौकरी करता है। यदि दो हों तो मध्यम प्रकार की। यदि तीनो हों तो अधम प्रकार की नौकरी करे।

(२) यदि लग्न में बृहस्पति और सप्तम में शनि हो तो उन्माद रोग हो। उन्माद रोग से सर्वथा पागलपन नहीं, प्रत्युत मानसिक रोग—यथा स्काइजोफ्रेनिया—समझना चाहिये।

(३) यदि मंगल और शनि लग्न से पंचम, सप्तम या त्रिकोण में हो तो ऊपर (२) में जो कहा गया है, वही फल होना चाहिए।

> शुक्रे शन्यारयोर्वर्गेऽस्ते तद्वीक्ष्येऽन्यदारगः।
> तयोर्वक्रस्थयोः सेन्द्वोः शुक्रेऽस्ते स्त्रीसमस्तथा ॥१६॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि शुक्र सप्तम में हो और यह शुक्र, मंगल या शनि के षड्वर्ग में हो, या शनि मंगल से दृष्ट हो, तो जातक परस्त्रीगामी होता है।

(२) यदि सप्तम भाव में चन्द्रमा, मंगल और शनि एक साथ हों और शुक्र शनि मंगल के वर्ग में बैठकर उनको देखता हो तो जातक तथा उसकी पत्नी दोनों अन्यगामी होते हैं।

> वन्ध्याभसंधौ शुक्रेऽस्ते मंदेंगे नेष्टदृग्सुते।
> वृद्धेष्टेक्ष्यास्तगाराक्योंरिफगः स्त्रीनृखेटयोः ॥२०॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि शनि लग्न या पंचम में हो तो और शुक्र भसंधि

में सप्तम में हो, तो जातक की स्त्री वंध्या होती है (कर्क का अंतिम नवांश, वृश्चिक का अंतिम नवांश मीन का अंतिम नवांश भसंधि कहलाता है) यदि लग्न से पंचम स्थान अपने स्वामी या शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट न हो।

(२) यदि मंगल, शनि सप्तम में हो और उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा किसी राशि में पुरुष ग्रह और स्त्रीग्रह दोनों एक साथ बैठे हों तो वृद्धावस्था में अधिक उम्र की स्त्री प्राप्त होती है।

इस प्रकार इस अध्याय में ५० योग बताये गये हैं।

सप्तम कल्लोल

स्त्रीजातकाध्याय

स्त्रीस्वभावासमेंगेन्द्वोः सच्छीला शुभदृष्टयोः ।
ओजस्थयोर्नराकारा निर्गुणाग्रेक्ष्ययुक्तयोः ॥१॥

मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु तथा कुंभ विषम या पुरुष राशि हैं। वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन सम या स्त्री राशि हैं। इस अध्याय में जितने योग हैं वे केवल स्त्रियों की कुण्डलियों में लागू करने चाहिएँ। पुरुषों की जन्म-पत्रियों के लिए ये योग नहीं हैं क्योंकि इस अध्याय का नाम ही 'स्त्री-जातक' है।

यदि जन्म समलग्न में हो और चन्द्रमा भी समराशि में हो तो कन्या स्त्रीस्वभाव की होगी, अर्थात् स्त्रियों में लज्जा, मृदुता, विनय आदि जो स्वाभाविक गुण कहे गए हैं, वे उसमें होंगे। यदि लग्न और चन्द्रमा को शुभ ग्रह देखें तो वह सुशीला होगी। यदि लग्न और चन्द्रमा विषम राशि में हों तो उसका शरीर, चित्त मर्दाने प्रकार का होगा—अर्थात्, उतनी कोमलांगी न हो, चित्त में भी साहस, धैर्य, सत्त्व आदि पुरुषोचित गुण विशेष हों। यदि लग्न और चन्द्रमा पापग्रहों से युत या वीक्षित

हों तो गुणहीन हो। कहने का तात्पर्य यह है कि शुभ ग्रहों की दृष्टि सद्गुणों को बढ़ाती है, पापग्रहों की दृष्टि गुणों को कम करती है।

यदि लग्न और चन्द्रमा, इन दोनों में एक पुरुष या विषम राशि में हो तथा एक सम या स्त्री राशि में, अथवा इनको शुभ-ग्रह भी देखें और पापग्रह भी, या लग्न तथा चन्द्रमा शुभ ग्रहों से युत भी हों और पापग्रह से भी—तो मिश्र फल, अर्थात् मिला-जुला फल होगा।

लग्नेन्दुगार्कादिभस्थे त्रिंशांशे वक्त्रतोऽतिवाक्।
निन्द्या राज्ञी नराभास्त्र्यगम्यगाथाऽसतीनिभृत् ।।२।।

सगुणा शिल्पिनी दुष्टा दुर्भगा दासगा सती।
मायेत्वरी वा कूटाढ्या क्लीबेष्टा सगुणान्यगा ।।३।।

वा गुणाप्लो प्रिया शिल्पधीर्दुष्टात्त्वन्यगाऽन्यधृत्।
दक्षेष्टाढ्याथ वा दासी नीचेष्टा पांसलाऽपसूः ।।४।।

विषम राशियों में ० अंश से ५ अंश तक मंगल का त्रिंशांश, ५ के बाद १० अंश तक शनि का त्रिंशांश, उसके बाद १८ अंश तक बृहस्पति का त्रिंशांश, १८ से २५ अंश तक बुध का त्रिंशांश उसके बाद ३० अंश तक शुक्र का त्रिंशांश होता है। सम राशियों में क्रम उलटा है। ० अंश से ५ अंश तक शुक्र का त्रिंशांश, उसके बाद १२ अंश तक बुध का त्रिंशांश। १२ अंश के बाद २० अंश तक बृहस्पति का त्रिंशांश; बृहस्पति के बाद ५ अंश तक शनि का त्रिंशांश और २५ के बाद ३० अंश तक मंगल का त्रिंशांश।

अब जन्म-लग्न या चन्द्रमा, जो बलवान् हो वह, यदि—

(१) मंगल की राशि में हो और मंगल के ही त्रिशांश में हो तो पर-पुरुष-गामिनी, शनि के त्रिशांश में दासगा (नौकर के साथ रत), बृहस्पति के त्रिशांश में सती, बुध के त्रिशांश में, शठा (मायाविनी) और शुक्र के त्रिशांश में दुःशीला।

(२) शुक्र की राशि में हो और मंगल के त्रिशांश में तो पर पुरुषगामिनी, शनि के त्रिशांश में दूसरे की रखैल, बृहस्पति के त्रिशांश में दक्षा (चतुर), बुध के त्रशांश में इष्टा (प्रिय)और शुक्र के ही त्रिशांश म धनिक।

(३) बुध की राशि में हो और मंगल के त्रिशांश में हो तो कपटी, शनि के त्रिशांश में हो तो क्लीबा (जिसमें कामवासना कम हो या पुत्रोत्पादन-शक्ति कम हो), बृहस्पति के त्रिशांग में अभीष्टा (प्रिय, जिसका सब सम्मान करें), बुध के स्वयं के त्रिशांश में गुणवती तथा शुक्र के त्रिशांश में पर-पुरुष-गामिनी।

(४) कर्क राशि में हो और मंगल के त्रिशांश में हो तो असती, शनि के त्रिशांश में पतिघ्नी (पति की मृत्यु करने वाली अर्थात् अपने कार्य व्यवहार, स्वभाव के कारण पति की आयु कम करने वाली),बृहस्पति के त्रिशांश में गुणवती, बुध के त्रिशांश में शिल्प कार्य में कुशल, शुक्र के त्रिशांश में दुष्टा।

(५) यदि सिंह राशि में हो और मंगल के त्रिशांश में हो तो बहुत बोलने वाली, शनि के त्रिशांश में निन्द्या (जिसकी लोग निन्दा करें), बृहस्पति के त्रिशांश में राज्ञी (उच्च अधिकार-सम्पन्न, वैभवयुक्त), बुध के त्रिशांश में पुरुष-सदृशा (मर्दाना) और शुक्र के त्रिशांश में व्यभिचारिणी।

(६) यदि बृहस्पति की राशि में हो और मंगल के त्रिशांश में

हो तो बहुत गुणों से युक्त, यदि शनि के त्रिशांश में हो तो अल्प काम वासना वाली, यदि बृहस्पति के ही त्रिशांश में हो तो पति की प्रिया, बुध के त्रिशांश में शिल्पिनी तथा शुक्र के त्रिशांश में दुष्टा ।

(७) यदि शनि की राशि में हो और मंगल के त्रिशांश में हो तो दासी, शनि के ही त्रिशांश में हो तो नीच (तुच्छ मनोवृत्ति की या छोटा काम करने वाली) बृहस्पति के त्रिशांश में इष्टा (पति की प्रिया तथा जिसका अन्य सम्मान करें) बुध के त्रिशांश में व्यभिचारिणी, तथा शुक्र के त्रिशांश में वन्ध्या ।

मिथोंशस्थौ सितार्कौ चेदन्योन्येक्ष्यौ नृवद्रतम् ।
कुर्यात् सा स्त्रीभिरन्याभिः कुंभांशे वा सितांगगे ॥५॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) जिस स्त्री की कुंडली में शनि वृषभ या तुला नवांश का हो और शुक्र मकर या कुंभ नवांश का हो और शुक्र शनि एक-दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखते हों, वह स्त्री अत्यन्त प्रबल काम-वासना वाली होने के कारण अन्य स्त्री से (अन्य स्त्री की कमर के अग्र भाग में कृत्रिम लिंग (रबड़ या चमड़े का) बांध कर उसके साथ पुरुषवत् संभोग करती है ।

(२) यदि स्त्री की कुण्डली में वृष या तुला लग्न हो और कुंभ नवांश हो तो भी उपर्युक्त फल हो ।

अंगाद्वेन्दोः स्मरे शून्येऽबलेऽस्याः कातरः पतिः ।
वाज्ञे वार्कौ नृकारोना चरे पान्थः स्थिरे न च ॥६॥

(१) यदि लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान में कोई ग्रह नहीं

हो और यह स्थान दुर्बल हो तो स्त्री का पति कापुरुष, अर्थात् भीरु होता है।

(२) यदि लग्न से सप्तम बुध या शनि हो तो भी यही फल। बुध और शनि नपुंसक ग्रह माने गये हैं, इसलिये यह फ़ल कहा है। हमारे विचार से यदि बुध या शनि सप्तम में अपने घर के बलवान् तथा शुभ ग्रह दृष्ट हों तो उपर्युक्त फल नहीं होगा।

(३) यदि लग्न से सप्तम चर राशि हो तो पति परदेश में अधिक रहे। यदि लग्न से सप्तम स्थिर राशि हो तो पति घर पर रहे। यदि द्विस्वभाव राशि हो तो मिला-जुला फल हो।

त्यक्तार्के विधवारेऽत्र पापेक्ष्यार्कौ चिराप्रिया।
सौम्यैर्धन्या प्रियाऽस्तस्थैः क्रूरैः रण्डा च मिश्रितैः ॥७॥

(१) यदि स्त्री की जन्म-कुंडली में लग्न से सप्तम सूर्य हो तो अपने पति से छोड़ी जावे, या अलग रहे। यदि मंगल हो तो विधवा हो। यदि सप्तम में शनि हो और वह पाप ग्रह से देखा जावे तो देर से विवाह हो या विवाह होने पर बहुत काल बाद पति की प्रिया हो। यदि सप्तम में शुभग्रह हों तो धन्या (उत्तम भाग्य तथा पति-सौभाग्य से युक्त हो। सप्तम में पापग्रह विधवा योग करते हैं शुभ और पापग्रह दोनों प्रकार के ग्रह सप्तम में हों तो मिश्र फल मिला-जुला फल होगा।

सप्तम में केवल मंगल, शनि, राहु, केतु आदि देखकर ही वैधव्य योग नहीं कहना चाहिए। साधारणतया यदि मंगल जन्म लग्न से, प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश स्थान में हो तो जातक या जातकी मंगलीक कहलाता है। जहाँ तक वैवाहिक सुख का प्रश्न है—मंगल इस सुख को न्यून करने वाले ग्रहों का सरदार या मुखिया है। इसीलिए मुखिया के नाम से

दोष को 'मंगलीक' कहते हैं। परन्तु केवल मंगल ही दोषकारक हो, ऐसा नहीं है। मंगल, शनि, राहु, केतु तथा सूर्य ये पाँचों ग्रह दोषकारक हैं।

ज्यौतिषियों के मत से पापग्रह की स्थिति जन्म-लग्न सप्तम तथा अष्टम में जितनी दोषकारक है उतनी लग्न से द्वितीय, चतुर्थ तथा द्वादश में नहीं। इसके अतिरिक्त एक शंका उठती है। ग्रह की नौ स्थिति राशि-भेद से होती है (१) उच्च, (२) मूल त्रिकोण, (३) स्वराशि, (४) अधिमित्र राशि, (५) मित्र राशि, (६) समराशि, (७) शत्रुराशि, (८) अधिशत्रु राशि, (९) नीच-राशि। क्या ग्रह सब स्थितियों में समान रूप से अनिष्ट फल करेगा ? नहीं।

कन्या और वर की कुण्डली में यदि समान संख्या में मंगलीक दोष हो तो एक-दूसरे के मंगलीक दोष का निवारण हो जाता है। समान संख्या से अभिप्राय समान संख्या के पापग्रहों से नहीं है। अपितु समान दोष संख्या से है। दक्षिण भारत के ग्रन्थों में मंगलीक दोष-संख्या निर्णय करने की एक विशेष पद्धति है। भिन्न-भिन्न राशि-स्थित ग्रह यदि लग्न से प्रथम, द्वितीय आदि अनिष्ट स्थानों में हों तो राशि तथा भाव की भिन्नता से पृथक्-पृथक् दोष-संख्या निर्धारित की जाती है। यदि जो संख्या वर की कुण्डली में दोषों की हो, वही कन्या की कुण्डली में हो, करीब-करीब बराबर (बिलकुल एक ही संख्या दोनों में आये यह तो प्रायः सम्भव नहीं है) आवे तो एक-दूसरे के मंगलीक दोष को काटते हैं। मंगलीक दोष के अन्तर्गत शनि, राहु, केतु, तथा सूर्य-कृत दोष की भी गणना की जाती है। यह पद्धति उत्तर भारत में सर्वथा अप्रचलित है परन्तु दक्षिण भारत में इसका सर्वत्र प्रचार है। इसलिए हिन्दी-भाषी पाठकों के सम्मुख यह प्रथम

बार रखी जा रही है। अब तक जितनी ज्यौतिष की पुस्तकें हिन्दी में छपी हैं, उनमें से किसी में भी यह प्राप्य नहीं है।

(१) यदि, लग्न, सप्तम या अष्टम में नीचे लिखे क्रूर ग्रहों में कोई हो तो निम्न लिखित दोष-संख्या समझनी चाहिये—

	मंगल	शनि	राहु	केतु	सूर्य
(१) उच्च-राशि स्थित	१४४	९६	९६	९६	४८
(२) मूल त्रिकोण में	१०८	७२	७२	७२	३६
(३) स्वराशि में	९६	६४	६४	६४	३२
(४) अधिमित्र राशि में	३६	२४	२४	२४	१२
(५) मित्र-राशि में	४८	३२	३२	३२	१६
(६) समराशि में	९६	६४	६४	६४	३२
(७) शत्रुराशि में	१६८	११२	११२	११२	५६
(८) अधिशत्रु राशि में	१८०	१२०	१२०	१२०	६०
(९) नीच राशि में	१९२	१२८	१२८	१२८	६४

यदि द्वितीय, चतुर्थ या द्वादश में क्रूर ग्रह हो तो निम्नलिखित दोष-संख्या समझनी चाहिए—

	मंगल	शनि	राहु	केतु	सूर्य
(१) उच्चराशि में	३६	२४	२४	२४	१२
(२) मूल त्रिकोण में	२७	१८	१८	१८	९
(३) स्वराशि में	२४	१६	१६	१६	८
(४) अधिमित्र राशि में	९	६	६	६	३
(५) मित्रराशि में	१२	८	८	८	४
(६) समराशि में	२४	१६	१६	१६	८
(७) शत्रुराशि में	४२	२८	२८	२८	१४
(८) अधिशत्रु राशि में	४५	३०	३०	३०	१५
(९) नीच राशि में	४८	३२	३२	३२	१६

अब विचार कीजिये, किसी कन्या की कुंडली में लग्न में नीच राशि का मंगल है तो दोष १६२ हुए और वर की कुण्डली में बारहवें घर में अधिमित्र राशि में मंगल है तो दोष केवल ९ हुए। कितना महान् अंतर है। किन्तु साधारणतया ज्योतिषी दोनों को मंगलीक कहकर कुण्डली मिला देते हैं। कितना महान् अनर्थ है!

अस्तु, अभी तक मंगलीक दोष के विषय में हमने आधी ही बात कही है। आधी बात अभी शेष है। वह आधी बात यह है कि जिस प्रकार जन्म-लग्न से प्रथम, द्वितीय चतुर्थ, सप्तम, अष्टम में या द्वादश में ग्रह पति या पत्नी सुख में बाधक हैं, उसी प्रकार चन्द्र-लग्न से (चन्द्र जिस राशि में हो उससे) तथा शुक्र लग्न से (शुक्र जिस राशि में हो उससे) प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश में मंगल, शनि, राहु, केतु या सूर्य हों तो उच्च, मूलत्रिकोण आदि विविध राशि में स्थित होने के कारण जो दोष-संख्या हो वह भी हिसाब में लेनी चाहिये। तदुपरान्त कन्या की कुण्डली में जो दोष-संख्या लग्न, चन्द्र-लग्न तथा शुक्र-लग्न से गणना पर आवे, उसके योग को वर की जन्मकुण्डली में जन्म-लग्न, चन्द्र-लग्न तथा शुक्र-लग्न से अनिष्ट स्थान स्थित जो दोष-संख्याएँ आवें,—उनके योग से तुलना कर विचार करे।

दक्षिण भारत में भी दो सम्प्रदाय प्रचलित हैं:—

(१) जो दोष-संख्या जन्म-लग्न से लेनी, वही चन्द्र से और वही शुक्र लग्न से—अर्थात्, जन्म-लग्न, चन्द्र-लग्न तथा शुक्र-लग्न तीनों को समान समझना। तीनों को एक-सा महत्त्व देना।

(२) दूसरा सम्प्रदाय यह है कि जन्म-लग्न को १६ आना महत्त्व देना, चन्द्र-लग्न को ८ आना, शुक्र लग्न को ४ आना। इस सम्प्रदायानुसार यदि जन्म-लग्न से अष्टम नीच राशि का

मंगल हो तो दोष-संख्या १९२। यदि चन्द्रमा से अष्टम नीच राशि का मंगल हो तो दोष-संख्या १९२ की आधी अर्थात् ९६। और यदि शुक्र से अष्टम नीच का मंगल हो तो १९२ का चौथाई अर्थात् दोष सख्या ४८।

सूर्य, चन्द्र आदि सातों ग्रहों के मित्र, नैसर्गिक सम, शत्रु सब पुस्तकों में दिये रहते हैं, इसलिये उनकी पुनरावृत्ति नहीं की जातो है। किन्तु राहु केतु के मित्र-सम-शत्रु बहुत कम पुस्तकों में दिये रहते हैं। इस कारण इस विषय में 'फलदीपिका' का निम्न-लिखित श्लोकांश दिया जाता है—

मित्राणि विच्छनिसितास्तमसोर्द्वयोस्तु।
भौमः समो निगदिता रिपवश्च शेषाः॥

राहु और केतु के मित्र बुध, शुक्र और शनि हैं। मंगल इनका सम है। अन्य शत्रु हैं। राहु-केतु की नैसर्गिक मित्रता, समता, शत्रुता ऊपर बताई गई है। तात्कालिक मित्रता या शत्रुता का वही नियम है—जो अन्य ग्रहों के विषय में। दोनों, नैसर्गिक तथा तात्कालिक, सम्बधवश अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु, अधिशत्रु राशि—किस में है, यह स्थिर करना चाहिये।

रंध्रेंत्ये च तनौ वोग्रे वांगे रंडा षडष्टगे।
पापमध्ये तनौ चेन्दौ स्वसुरात्मकुलक्षया॥८॥

इसमें पाँच योग बताये गये हैं:—

(१) यदि पाप ग्रह अष्टम तथा द्वादश में हो तो विधवा हो।
(२) यदि पापग्रह लग्न में हो तो विधवा हो।
(३) यदि पापग्रह लग्न में तथा आठवें हो तो विधवा हो।
(४) यदि पापग्रह छठे या आठव हो तो विधवा हो।

(५) यदि लग्न तथा चन्द्रमा पापग्रहों के मध्य में हों तो श्वशुर के कुल का क्षय करने वाली हो ।

यद्यस्तं तत्पतिर्वा स्याद् गृहान्तरसुमित्रभाक् ।
अथास्ते द्वौ ग्रहौ स्यातां स्त्रिया उपपतिस्तदा ॥६॥

जन्म लग्न से जो सप्तम राशि या उसका (सप्तम राशि का) स्वामी यदि अन्य ग्रहों के बीच में हो तो अच्छा मित्र मिले । मूल में 'गृह' शब्द आया है । यह 'ग्रह' भी हो सकता है । सप्तम में यदि अन्य गृहों के स्वामी बैठे हों, या सप्तमेश अन्य गृह में बैठा हो तो सुमित्र प्राप्त हो । यहाँ स्त्रीजातक का प्रसंग चल रहा है । एक टीकाकार ने अर्थ किया है कि सप्तम स्थान या सप्तमेश दो ग्रहों के मध्य में हो तो उपपति हो; परन्तु हम इस अर्थ से सहमत नहीं हैं । यदि सप्तम भाव दो शुभ ग्रहों के मध्य में हों तो सप्तम भाव सम्बन्धी शुभ फल ही होगा । यदि सप्तमेश दो शुभ ग्रहों के मध्य में हो तो भी शुभ फल ही होना चाहिये ।

(२) यदि सप्तम में दो ग्रह हों तो उपपति होवे । इस मूल-वचन से हम सहमत नहीं हैं । जिस समाज में विधवा-विवाह या पुनर्विवाह प्रचलित है, उसमें दूसरा विवाह संभव है । यदि शुभ ग्रह दो भी सप्तम में हों और स्त्री की कुण्डली में व्यभिचार-योग न हो तो उपपति होगा, यह कहना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता ।

क्रूरेऽबलेऽत्र सौम्येक्ष्येऽपस्वकान्ता नु सान्यगा ।
शुक्रवक्रौ मिथोंशस्थौ वात्रसेन्दुप्रियाज्ञया ॥१०॥

इसमें तीन योग बताये गये हैं :—

(१) यदि निर्बल क्रूर ग्रह सप्तम में हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो, तो पहिले पति से छोड़ी जावे, पीछे अन्यगामिनी (दूसरे पुरुष से सम्बन्ध करने वाली) हो ।

(२) यदि शुक्र, मेष या वृश्चिक नवांश में हो और मंगल वृष, या तुला नवांश में हो, तो परपुरुषगामिनी हो।

(३) यदि सप्तम स्थान में मंगल, शुक्र, चन्द्र तीनों ग्रह हों तो अपने पति की अनुज्ञा से स्त्री व्यभिचारिणी हो।

मन्दारभेङ्गगे सेन्दुशुक्रे पापेक्षितेन्यगा।
वास्ते कुजांशे मन्देक्ष्ये रुग्गुह्ये ष्टांगगेऽन्यथा ॥११॥

इसमें दो योग बताये गये हैं:—

(१) यदि लग्न में मेष, वृश्चिक, मकर या कुंभ राशि हो और उसमें चन्द्रमा और शुक्र हो और उनको पापग्रह देखते हों तो परपुरुषगामिनी हो।

(२) यदि सप्तम भाव में मंगल का नवांश हो और सप्तम भाव को शनि देखे तो गुह्य स्थान में रोग हो। यदि लग्न में शुभ ग्रह हो तो रोग न हो।

भेंशेर्कादिर्मृदुः कर्मा कामी दुर्वाक् चलः कुधीः।
सद् विद्वांसौ गुणी कान्तोऽभीष्टो वृद्धो जडोऽस्तगे ॥१२॥

(१) यदि सप्तम में (१) सूर्य की राशि या नवांश हो तो पति अत्यन्त कठिन स्वभाव का और अतिकर्मकृद्—बहुत कार्य काम करने वाला होता है; (२) चन्द्र की राशि या नवांश हो तो मृदु और कामी पति हो; (३) मंगल की राशि या नवांश हो तो अन्य स्त्रियों के सम्बन्ध में जिसका चित्त चलायमान हो तथा क्रोधी पति; (४) यदि बुध की राशि या नवांश हो तो पति विद्वान् और निपुण (चतुर) हो; (५) यदि बृहस्पति की राशि या नवांश हो तो पति गुणवान् और जितेन्द्रिय हो; (६) यदि शुक्र की राशि या नवांश सप्तम में हो तो उसका पति अत्यन्त कान्त

(सुन्दर) और सौभाग्ययुक्त हो; (७) और यदि शनि की राशि या नवांश हो तो अधिक अवस्था वाला और मूर्ख होता है।

अंगे सितेन्द्वोः स्त्री सेर्ष्या सुखा ज्ञेन्द्वोः कलागुणा।
शुक्रज्ञयोः प्रियाभीष्टा सार्थसौख्या शुभेषु सा ॥१३॥

यदि स्त्री की जन्म-कुण्डली में लग्न में (१) चन्द्रमा और शुक्र हों तो सुखी किन्तु ईर्ष्यालु होती है; (२) बुध और चन्द्रमा हों तो कलाओं में निपुण, सुखी और गुणवती हो; (३) बुध और शुक्र हों तो सुन्दर और कलावती (कलाओं में दक्ष) हो तथा प्रिया (अपने पति की प्यारी) हो; (४) यदि चन्द्र, बुध, शुक्र तीनों लग्न में हों तो बहुत धनिक और अनेक गुणों से युक्त हो।

क्रूरेऽष्टगे तदा रंडा यथाष्टेशो यदंशगः।
तद्वयस्यथ गोलिस्त्रीसिंहभेऽजे स्थितेऽल्पसूः ॥१४॥

इसमें दो योग बताये गये हैं :—

(१) यह जो पहले कह चुके हैं कि क्रूर ग्रह अष्टम में वैधव्य करता है, वह वैधव्य किस अवस्था (वय) में होगा, इसका निरूपण करते हुए कहते हैं कि अष्टम स्थान का स्वामी जिस नवांश में हो, उस नवांश स्वामी ग्रह की अवस्था में।

इस ग्रह की अवस्था से क्या तात्पर्य है यह आगे के श्लोक में स्पष्ट करेंगे।

(२) यदि स्त्री की कुण्डली में चन्द्रमा वृष, सिंह, कन्या या वृश्चिक का हो तो उसके थोड़ी सन्तान होती है।

तद्दशायां विवाहोद्र्ध्वं वर्षे रंडार्यमादिके।
विंशैकद्विनवद्विघ्नः विंशपंचाशतिक्रमम् ॥१५॥

ऊपर श्लोक १४ में कह आये हैं कि अष्टम स्थान में स्थित

नवांश नाथ की दशा में वैधव्य योग है। इस नवांश नाथ की 'वय' के दो अर्थ करते हैं:—

(१) विवाह के बाद जब इस नवांश नाथ की अन्तर्दशा आवे।

(२) सूर्य आदि सातों ग्रह विवाह के बाद निम्नलिखित वर्षों में वैधव्य योग करते हैं—

सूर्य २० वर्ष, चन्द्रमा १ वर्ष, मंगल २ वर्ष, बुध ९ वर्ष, बृहस्पति १८ वर्ष, शुक्र २० वर्ष, शनि ५० वर्ष पीछे।

शुभे स्वगेऽष्टगे क्रूरे म्रियते प्रथमं प्रभोः।
समेंगे बलिभिर्यद्भैः दक्षा शुक्रेज्यवित्कुजैः ॥१६॥

इसमें दो योग बताये गये है—

(१) यदि अष्टम में क्रूर ग्रह हो, किन्तु साथ ही जन्म-लग्न से द्वितीय में शुभ ग्रह हो तो स्त्री (जिस स्त्री की जन्म-कुण्डली में उपयुक्त योग हो) अपने पति की मृत्यु के पहले स्वयं ही स्वर्ग-गामिनी हो जावे।

(२) यदि सम राशि जन्म-लग्न में हो और बली मंगल बुध, बृहस्पति शुक्र लग्न में हों तो दक्षा चतुरा) हो।

ओजाङ्गे यत्रगैः शुक्रज्ञेन्दुभिर्विबलैः परैः।
बलैः मध्यबले चार्कौ वक्तृत्वाचरणैः नृवत् ॥१७॥

यदि लग्न विषम हो, चन्द्रमा, बुध और शुक्र हीन-बल हों, शनि मध्यम बली हो, अन्य ग्रह बलवान् हों तो उसकी वाणी और कार्य पुरुष-जैसे होते हैं। अर्थात् मर्दाना औरत होती है।

पापेऽस्ते धर्मगस्थाभां दीक्षां गृह्णाति साप्यमी।
विवाहे वरणे प्रश्ने जन्मन्यूह्यास्तु योगके ॥१८॥

यदि पापग्रह सप्तम में हों तो नवम-स्थित (लग्न से नवम में

ग्रह यदि दीक्षा-योग बनाता हो) ग्रह के सदृश दीक्षा-ग्रहण करती है। दीक्षा किस प्रकार की होगी, इसका निश्चय करने के पूर्व यह देख लेना चाहिये कि प्रव्रज्या-योग है अथवा नहीं।

इस 'स्त्रीजातकाध्याय' के नियमों को विवाह-कुण्डली, वरण-कुण्डली (जब वाग्दान या सगाई या टीका हो), प्रश्न-कुण्डली तथा जन्म-कुण्डली, इन चारों प्रकार की कुण्डलियों में लगाना चाहिये।

इस प्रकार इस अध्याय में ८० योग बताये हैं।

अष्टम कल्लोल

रज्ज्वादियोगाध्याय

एकद्वित्रिचतुःस्थाने स्थितै रज्जुश्चरे विशेत् ।
स्थिरे तु मुसलेप्येवं द्व्यंगे योगो नलस्तथा ।।१।।

इसमें तीन योग बताये गए हैं—

(१) यदि मेष, कर्क, तुला, मकर इन चारों राशियों में सब ग्रह[1] (इनमें से एक में, दो में, तीन में या चारों में) हों तो 'रज्जु-योग' होता है। ऐसा जातक पुण्यात्मा और विदेश में निवास करने वाला होता है। ऐसा जातक उच्च पदवी प्राप्त करता है, पर ईर्ष्यालु होता है।

(२) यदि सब ग्रह वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ इन चार राशियों में (इनमें से एक, दो, तीन या चारों में) हों तो 'मुसल योग' होता है। ऐसे जातक सदैव कार्य में लग्न रहते हैं और मानी तथा धनिक होते हैं।

(३) यदि सब ग्रह मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशियों में हों (इनमें से एक, दो, तीन या चारों में हों) तो 'नलयोग' होता है। ऐसे जातकों के शरीर में कोई अंगहीन या अधिक होता है। ऐसे व्यक्ति चतुर होते हैं और धन-संचय करते हैं।

---

१. इस अध्याय में सब ग्रहों से तात्पर्य सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि से है। इस अध्याय के योगों में 'राहु, केतु' नहीं लिये जाते।

खांगगैः खास्तगैर्वास्ताम्बुगैर्वागांबुगैर्गदा ।
केन्द्रत्रयगतैः सौम्यैः माला पापैस्तु पन्नगः ।।२।।

इसमें छः योग बताये हैः—

(१) यदि सब ग्रह दशम और लग्न में हों ।
(२ यदि सब ग्रह दशम और सप्तम में हों ।
(३) यदि सब ग्रह सप्तम और चतुर्थ में हों ।
(४) यदि सब ग्रह लग्न और चतुर्थ में हों ।

ये चारों योग 'गदायोग' कहलाते हैं। गदायोग में उत्पन्न व्यक्ति यज्ञ करने वाला अर्थात् धार्मिक, सर्वदा धन में रुचि रखने वाला, धन कमाने में उद्यत होता है। ऐसे व्यक्ति भाग्यवान् होते हैं ।

(५) यदि तीनों केन्द्र में शुभ ग्रह हों तो 'मालायोग' होता है। इस योग में उत्पन्न जातक भाग्यवान् होते हैं, अर्थात् उनको सब प्रकार के शारीरक सुखों के साधन उपलब्ध होते हैं ।

(६) यदि तीन केन्द्रों में पापग्रह हों तो 'पन्नगयोग' होता है।

इसे 'सर्पयोग' भी कहते हैं। ऐसे योग में उत्पन्न व्यक्तियों को नाना प्रकार के दुःख उठाने पड़ते हैं ।

तीनों केन्द्रों में यदि शुभग्रह हों तो 'मालायोग', यदि पाप ग्रह हों तो 'सर्पयोग'। इन दोनों को 'दलयोग' भी कहते हैं ।

सर्वे लग्नास्तगैर्यानं खांबुगैर्विहगो ग्रहैः ।
लग्नर्त्ते स्वारिखस्थैर्वा त्रस्तायस्थैस्त्रिधा हलः ।।३।।

इसमें पाँच योग बताये गये हैं—

(१) यदि सब ग्रह लग्न और सप्तम में हों तो 'यानयोग' होता है। इसे 'शकट योग' भी कहते हैं। ऐसा जातक सवारी

(रेल, गाड़ी, मोटर, बस, जलयान, वायुयान) के जरिये वृत्ति-उपार्जन करता है। शरीर से रोगी रहता है। भार्या अच्छी नहीं होती।

(२) यदि सब ग्रह चतुर्थ और दशम में हों तो 'विहग योग' होता है। इसमें उत्पन्न व्यक्ति दूत (घूमने-फिरने) का काम करने वाला (जैसे पोस्टमैन, सेल्समैन, इंस्पैक्टर, टिकट-चेकर) होता है। ऐसा व्यक्ति कलहकृत्, अर्थात् झगड़ालू, भी होता है।

३) यदि सब ग्रह द्वितीय, षष्ठ, तथा दशम में हों, या

(४) तृतीय, सप्तम, एकादश में हों या

(५) चतुर्थ, अष्टम, द्वादश में हों, तो 'हलयोग' होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति खेती करते हैं।

वज्रं लग्नास्तगैः सौम्यैः पापैः खाम्बुगैश्च वा।
यवोऽस्ति विपरीतस्थैः श्रृङ्गाटोध्यंगधर्मगैः* ॥४॥

इसमें तीन योग बताए गए हैं—

(१) यदि लग्न और सप्तम में ३ शुभग्रह हों और चतुर्थ तथा दशम में तीन पापग्रह हों तो वज्रयोग होता है। चन्द्रमा शुक्ल तथा कृष्णपक्ष भेद से कभी शुभ कभी पाप होता रहता है। इसलिये कम से कम ३ शुभ ग्रह लग्न तथा सप्तम में होना

---

* यदि सब ग्रह लग्न, पंचम, नवम में हों तो 'शृंगाटक' योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाले व्यक्ति मधुरवाणी बोलने वाले होते हैं और वृद्धावस्था में सुखी होते हैं। भगवान्गार्गि कहते हैं—

लग्नपंचमधर्मस्थैर्योगः शृंगाटको मतः।
वयोन्ते सुखिनां जन्म तत्र स्यात्स्वादुभाषिणाम् ॥

कहा है। चार हों तो हर्ज नहीं। तीन कम से कम होने चाहिएँ। इसी प्रकार कम से कम तीन पाप ग्रह चतुर्थ तथा दशम में होने चाहिएँ। चार हों तो हर्ज नहीं।

वज्रयोग में उत्पन्न व्यक्ति बाल्यावस्था और वृद्धावस्था में सुखी रहता है। मध्यावस्था में दुःखी रहता है। ऐसा जातक सर्वजन-वल्लभ और शूरवीर होता है।

वराहमिहिर ने भी अपने ग्रंथ में 'वज्रयोग' दिया है। किंतु वह स्वयं यह शंका भी उठाते हैं कि सूर्य से चतुर्थ बुध-शुक्र कैसे होंगे? यदि चतुर्थ तथा दशम में सूर्य-मंगल-शनि हुए तो सौम्य ग्रह बुध-शुक्र-बृहस्पति लग्न तथा सप्तम में हुए। सूर्य से चौथे बुध-शुक्र हो नहीं सकते। फिर स्वयं ही समाधान करते हैं कि पूर्व आचार्यों ने यह योग कहे हैं, इसलिए उन्हीं का उल्लेख वह कर रहे हैं।

(२) यदि सब शुभ ग्रह चतुर्थ तथा दशम में हों और सब पापग्रह लग्न तथा सप्तम में हों तो 'यवयोग' होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति बली (वीर्यशाली) और जीवन के मध्य भाग में सुखी होता है।

(३) यदि सब ग्रह लग्न, पंचम, नवम में हों तो 'शृंगाटक' योग होता है। इसका फल पिछले पृष्ठ में बता चुके हैं।

कमलं केन्द्रगैर्मिश्रैर्वापीकेन्द्राद्बहिर्गैस्त्रिगैः।
केन्द्रर्ते स्वादिगैः सप्तमस्थैरर्धेन्दुरष्टधा ॥५॥

इसमें दस योग बताए गए हैं—

(१) सौम्य और पाप सब ग्रह मिले-जुले चारों केन्द्रों में हों

तो 'कमल' योग होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति विख्यात कीर्तिवाला और अमित सौख्यशाली तथा गुणवान् होता है।

(२) यदि सब ग्रह केन्द्र के अतिरिक्त (केन्द्र में कोई ग्रह न हो) पणफर तथा आपोक्लिम स्थान में हों तो वापीयोग होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति को चिरकाल स्थायी शरीर-सुख रहता है। दूसरे विद्वान् कहते हैं कि वह दीर्घकाल तक सुखी रहता है किन्तु सुख अल्प मात्रा में प्राप्त होता है। ऐसा व्यक्ति धन-संग्रही और कृपण होता है। अब अन्य योग बताते हैं।

यदि सब ग्रह छः राशियों में (बीच में कोई राशि खाली न हो)

(३) द्वितीय से अष्टम तक हों, या
(४) तृतीय से नवम तक हों, या
(५) पंचम से एकादश तक हों, या
(६) षष्ठ से द्वादश तक हों, या
(७) अष्टम में द्वितीय तक हों, या
(८) नवम से तृतीय तक हों, या
(९) एकादश से पंचम तक हों, या
(१०) द्वादश से षष्ठ तक हों, तो

इन आठों योगों को 'अर्धेन्दुयोग' कहते हैं। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति सर्वजन-प्रिय, सुन्दर शरीर वाला, प्रधान (प्रधान पद पर अधिष्ठित) होता है।

यूपेषुशक्तिदण्डा वाङ्गाविकेन्द्राच्चतुर्भगैः।
नौकूटच्छत्रचापाख्याः क्रमात्सप्तर्क्षगैरिति ॥६॥

इस श्लोक में ८ योग बताये गये हैं :—

(१) यदि सब ग्रह लग्न से लेकर चतुर्थ तक (अर्थात् लग्न, द्वितीय तृतीय तथा चतुर्थ में) हों तो 'यूपयोग' होता है। इसमें

जन्म लेने वाले व्यक्ति श्रेष्ठ यज्ञ क्रियादि करने में संलग्न रहते हैं, अर्थात् धार्मिक कार्यों में उनकी विशेष अभिरुचि रहती है। ऐसे व्यक्ति त्यागी और अप्रमादी होते हैं।

(२) यदि सब ग्रह चतुर्थ से लेकर सप्तम तक (चतुर्थ, पंचम, षष्ठ तथा सप्तम में हों तो) तो 'इषु-योग' होता है। इसे 'शर-योग भी कहते हैं। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति हिंसक (हिंसा करने वाला या हिंसा में रुचि रखने वाला), गुप्त्यधिकृत (जेल-खाने, कारखाने) और शर (युद्ध के पदार्थ, हथियार) आदि बनाने वाला होता है।

(३) यदि सब ग्रह सप्तम से लेकर दशम तक (सप्तम अष्टम नवम तथा दशम में) हों तो 'शक्तियोग' होता है। इस योग में उत्पन्न जातक नीच, आलसी, सुख और धन से रहित होता है।

(४) यदि सब ग्रह दशम से लग्न तक चार घरों में हों (अर्थात् दशम, एकादश, द्वादश तथा लग्न मे) तो जातक दासवृत्ति वाला (नौकरी-पेशा) प्रियों से (पुत्रादि से) विरहित होता है।

(५) यदि सब ग्रह सात राशियों में लग्न से लेकर सप्तम तक हों तो 'नौ (नौका) योग' होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति विख्यात यश वाला होता है। लेकिन उसका सुख स्थिर नहीं रहता। कदाचित् सुखी, कदाचित् दुखी रहता है। वह कृपण भी होता है।

(६) यदि सब ग्रह चतुर्थं से लेकर दशम तक सब राशियों में हों तो 'कूटयोग' होता है। ऐसे व्यक्ति की असत्य में प्रवृत्ति रहती है। वह जलयात्रा या कारागार-सम्बन्धी कार्य करता है।

(७) यदि सब ग्रह सात घरों में (सप्तम से लग्न तक) हों तो 'छत्रयोग' होता है। इस योग वाला जातक स्वजनों को सुखी

करने वाला होता है। स्वयं वृद्धावस्था में सुख प्राप्त करता है। अर्थात् वृद्धावस्था में विशेष भाग्योदय हो।

(८) यदि सब ग्रह दशम से लेकर चतुर्थ तक, इन सातों राशियों में हों तो 'कार्मुक योग' होता है। इसे 'चापयोग' भी कहते हैं। 'चाप' और 'कार्मुक' दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है—धनुष। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति शूरवीर तथा संग्राम-प्रिय होता है। बाल्य-काल तथा वृद्धावस्था में सुखी रहता है।

इस छठे श्लोक में जो योग राशियों में ग्रहस्थितिवश बताये गये हैं, उसमें यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि कोई राशि खाली नहीं होनी चाहिये। सब भरी अर्थात् ग्रह-युक्त हों।

स्वादेकान्तरषड्भस्थैरब्धिचक्रं च लग्नतः।
पापैर्धने शुभैरंगे मृगोस्ति शरभोन्यथा ॥७॥

इस श्लोक में चार योग बताये गये हैं—

(१) यदि द्वितीय स्थान से एक-एक राशि छोड़कर, राशियों में (अर्थात् द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम तथा द्वादश स्थान में) सातों ग्रह हों (उपर्युक्त राशियों में कोई राशि ग्रह-रहित नहीं होनी चाहिये) तो 'अब्धियोग' होता है। अब्धि समुद्र को कहते हैं। कोई ग्रंथकार इसको 'समुद्रयोग' भी कहते हैं। जो इस योग में उत्पन्न होता है, वह राजा के सदृश भोगी होता है। अर्थात् यह योग, धन, सुख, भाग्य भोग के लिये श्रेष्ठ हैं।

(२) यदि लग्न, तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम, एकादश—इन स्थानों में—राशियों में सब ग्रह हों और उपर्युक्त छः राशियों में कोई ग्रह-शून्य न हो तो 'चक्रयोग' होता है। इस योग में उत्पन्न मनुष्य राजाधिराज होता है। अर्थात् बहुत सम्मानित

पदवी प्राप्त करता है और धनैश्वर्यप्रतापशाली होता है।

(३) यदि शुभग्रह लग्न में हों और पापग्रह धन में (लग्न से द्वितीय स्थान में तो 'मृगयोग' होता है। इस योगवाला मनुष्य क्रोधी प्रकृति का चंचल और कीर्तियुक्त होता है।

(४) यदि पापग्रह लग्न में हों और शुभग्रह धनस्थान में हों तो जातक धनी हो। किन्तु तृष्णा की मात्रा उसमें अधिक हो। इसे 'शरभयोग' कहते हैं।

गर्त्तान्त्यारिमपापैस्त्र्यङ्कगेष्टैः कीटिकाऽन्यथा।
ध्यायगेष्टैर्नदी स्वाष्टगोग्रैश्च त्वन्यथा नदः ॥८॥

इसमें चार योग बताये गये हैं:—

(१) यदि तृतीय तथा नवम में शुभ ग्रह हों और षष्ठ तथा द्वादश स्थानों में पापग्रह हों तो 'गर्त्तयोग' होता है। ऐसा जातक असद्वृत्ति का तथा निर्धन होता है।

(२) यदि तृतीय तथा नवम में पापग्रह और षष्ठ तथा द्वादश में शुभग्रह हों तो 'कीटिकायोग' होता है। इस योग में उत्पन्न जातक पापकर्म करता है।

(३) यदि पंचम और एकादश में सौम्य ग्रह हों तथा द्वितीय और अष्टम में पापग्रह हों तो 'नदीयोग' होता है। ऐसा जातक उच्च पदाधिकारी तथा उत्तम स्वरूपवान् होता है।

(४) यदि पंचम और एकादश में पापग्रह हों तथा द्वितीय और अष्टम में सौम्य ग्रह हों तो 'नदयोग' होता है। इसमें उत्पन्न जातक सुखी हो तथा उसमें योग्यता उत्तम हो।

एकाविस्थानगैरुक्तयोगाभावे क्रमादमी।
गोलो युगः शूलक्षेत्रपाशदामाख्यवीणिकाः ॥९॥

इस श्लोक में सात योग बताये गये :—

लग्न से विविध राशियों में ग्रह स्थित होने से विविध योग

पहले कह आये हैं। वह यदि लागू न हों तो निम्नलिखित योग लगाने चाहियें। कहने का तात्पर्य यह है कि छः राशियों में विशेष प्रकार की स्थिति से अब्धि या 'चक्रयोग' वर्णन कर चुके हैं। अब नीचे पुनः यह वर्णन करते हैं कि छः राशियों में सब ग्रह हों तो 'दामयोग' होता है। ऐसी स्थिति में यदि पहले वर्णित योग लागू हों तो वही लेने चाहिएँ, इस दामयोग को नहीं। पहले कहा हुआ कोई योग लागू न हो, उसी दशा में इस श्लोक में वर्णित योग लेने चाहिएँ यही कथन का तात्पर्य है।

इस अध्याय में अब तक जो योग दिये गये हैं या इस श्लोक में दिये जा रहे हैं वे नित्य फलद हैं;अर्थात् किसी खास महादशा या अन्तर्दशा में उनका प्रभाव हो, ऐसा नहीं है: —

(१) यदि सातों ग्रह किसी एक ही राशि में हों तो 'गोल योग होता है। जो इस योग में उत्पन्न होता है वह धनहीन, मलिनवेश, मलिन चित्तवाला, ज्ञान-रहित, आलसी, व्यर्थ घूमने वाला तथा कार्य-निपुण नहीं होता।

(२) यदि सातों ग्रह केवल दो राशियों में हों तो 'युगयोग' होता है। इसमें उत्पन्न जातक धनहीन और पाखंडी होता है।

(३) यदि सब (सातों ग्रह) तीन राशियों में हों तो 'शूल-योग' होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति शूरवीर, घावों के चिह्नों से युक्त, धन की आकांक्षा रखने वाला, किन्तु निर्धन होता है।

(४) यदि सब ग्रह चार राशियों में—किन्हीं भी चार राशियों में—अवस्थित हों तो क्षेत्रयोग होता है। इसे 'केदार योग' भी कहते हैं। इस योग में उत्पन्न मनुष्य कृषिकर्म करता है और बहुत से लोगों का उपकार करता है, अन्य बहुत से व्यक्ति उसके यहाँ भोजन करते हैं।

(५) यदि सब ग्रह किन्हीं भी पाँच राशियों में हों तो 'पाश योग' होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति निन्दित मार्गों से धनोपार्जन करते हैं और इसी प्रकार के इनके काम करने वाले और बान्धव होते हैं।

(६) यदि सब ग्रह छः राशियों में हों तो 'दामयोग' होता है। इसमें उत्पन्न जातक दानशील, पशुओं का स्वामी तथा दूसरों के कार्य में निरत होता है अर्थात् परोपकारी हो।

(७) यदि सातों ग्रह सात राशियों (किन्हीं भी सात राशियों में-किसी क्रम का निर्देश नहीं है) हों तो 'वीणायोग' होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्तिनिपुण, सूक्ष्म-दृष्टि, नाच-गान का शौकीन होता है।

स्वान्त्योभयस्थैः सुनफाऽनफा दुरधरेन्दुतः।
व्यर्कैर्व्यव्जैस्त्विनाद्वेशिर्वाशिश्चोभयचरी ग्रहैः ॥१०॥

यदि सूर्य के अतिरिक्त कोई ग्रह—मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र या शनि चन्द्रमा से दूसरे घर में हों तो 'सुनफायोग' होता है। यदि उपर्युक्त पाँच ग्रहों में से कोई चन्द्रमा से द्वादश हो तो 'अनफा योग' होता है। यदि चन्द्रमा से द्वितीय और द्वादश दोनों में ग्रह हों तो 'दुरुधरा योग' होता है।

यदि सूर्य के द्वादश में चन्द्रमा के अतिरिक्त कोई ग्रह हो तो 'वाशि योग' होता है। यदि पांच ग्रहों में से कोई सूर्य से द्वितीय हो तो 'वेशि' और सूर्य से द्वितीय तथा द्वादश दोनों स्थानों में कोई ग्रह हो तो 'उभयचरी' योग होता है।

ये सभी योग धन तथा भाग्योदय के लिये अच्छे हैं; परन्तु हमारे अनुभव में ये प्रबल योग नहीं हैं। किन्तु 'वेशियोग' अच्छा नहीं।

चन्द्रात् केन्द्रेऽपखेटे वाब्जेङ्गात् केमद्रुमोऽस्तगे।
राजा धनी शुभैरेषु वोश्यां केमद्रुमोऽधमः ॥११॥

यदि चन्द्रमा के द्वितीय, या द्वादश में कोई ग्रह न हो और चन्द्रमा से केन्द्र में भी कोई ग्रह नहीं हो तो 'केमद्रुम' योग होता है। केमद्रुम योग से जातक निर्धन होता है।

जटीकपालभृद्‌रक्तवस्त्राजीवी त्रिदण्डिकः।
चरको मुनिरर्कात् स्यादेकस्थैश्चतुरादिभिः ॥१२॥

यदि चार ग्रह एक राशि में हों तो 'संन्यास' योग होता है। इनमें (चारों ग्रहों में) जो बली हो, उसके अनुरूप 'प्रव्रज्या' होती है। सूर्य से 'जटाधारी', चन्द्रमा से 'कपाली', मंगल से 'रक्त वस्त्र' धारण करने वाला, बुध से 'एकदंडी', बृहस्पति से 'त्रिदंडी', शुक्र से 'चरक', शनि से 'मुनि'। 'कपाली' शिवपूजक होते हैं 'चरक' योगाभ्यास-कुशल को कहते हैं।

धर्मेशे सबलेऽर्कस्थे वान्येक्ष्येऽस्तमितेऽत्र सः।
नीचे वोग्रेक्षिते नश्येद्वात्राऽपुष्टे व्रतापहः ॥१३॥

यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह (या नवमेश) ग्रस्त हो या अन्य पापी ग्रह से देखा जावे या नीच हो या निर्बल हो तो 'प्रव्रज्यायोग' नष्ट हो जाता है।

एकगेक्ष्ये भपे वार्ताऽऽर्कीक्ष्ये नान्येक्षितेऽबले।
केन्द्रेऽत्रार्कि दृशिस्यात्स व्रती वा योगसप्त के ॥१४॥

(१) निर्बल लग्नेश को देखे और कोई ग्रह लग्नेश को न देखे।

(२) निर्बल चन्द्र राशीश को देखे—और कोई ग्रह चन्द्र राशीश को न देखे।—

तो उपर्युक्त योगों में जातक रोगी और व्रती होता है।

यदि चार ग्रह एक साथ हों और—

(३) लग्न स्वामी को देखे, या

(४) चन्द्र राशीश को देखे, तो

इन दोनों योगों में उत्पन्न जातक व्रती होता है।

(५) यदि शनि-दृष्ट लग्नेश केन्द्र में हो।

(६) यदि शनि-दृष्ट चन्द्रेश केन्द्र में हो तो—इन दोनों योगों में उत्पन्न जातक भाग्य-शून्य एवं व्रती होता है।

(७) यदि नवम में शनि हो और उस पर किसी ग्रह की दृष्टि न हो तो जातक तपस्वी होता है।

बल्यार्कीक्ष्येऽबलार्केन्द्वीज्ये खस्थे चाङ्गगेऽसुखी।
पश्यत्यंगपतिं रिक्तं पूर्णेन्दौ कृच्छ्रभुग्विराः ॥१५॥

इसमें दो योग बताये गये हैं—

(१) यदि लग्न या दशम में निर्बल सूर्य, चन्द्र या बृहस्पति हों, और उनको बलवान् शनि देखे तो सुखी न हो। सूर्य, चन्द्र या बृहस्पति का निर्बल होना आवश्यक है। शनि को बलवान् होना चाहिये।

(२) यदि निर्बल लग्नेश को पूर्ण चन्द्र देखें तो भोजन भी कठिनता से प्राप्त हो।

यद्भेशोभ्युदितो यद्भे तद्भांकाद्बे धनं तदा।
बलिष्ठोऽङ्गे शरद्याद्ये श्रीरत्यन्तं पुनस्ततः ॥१६॥

लग्न आदि बारह भाव होते हैं। जो भावेश जिस स्थान में बैठा हो, उस भावसदृश वर्ष में फल होता है।

उदाहरण के लिये, बली सौम्य ग्रह लग्न में हो तो प्रथम वर्ष में शुभ फल। बली लग्नेश द्वितीय में बैठा हो तो द्वितीय वर्ष में लक्ष्मी-प्राप्ति। इसमें भविष्य के लिये बारह-बारह वर्ष जोड़ने चाहिएँ। उदाहरण के लिये, प्रथम वर्ष अच्छा आया तो १३, २५, ३७, ४९, ६१, ७३ वाँ वर्ष शुभ।

मान लीजिये, लग्नेश निर्बल, पाप-दृष्ट अष्टम में है तो ८, १२, २०, ३२, ४४, ५६, ६८, ८० वें वर्ष में शरीर-कष्ट। मान

लीजिये, धनेश बृहस्पति उच्च का होकर नवम में हैं, तो ९, २१, ३३, ४५, ५७, ६१, ८१ वें वर्ष में धनागम।

इस विषय में अंग्रेजी तारीख के हिसाब से (जिस अंग्रेजी तारीख को जातक का जन्म हो) शुभाशुभ वर्ष ज्ञात करने के लिए देखिए हमारी लिखित 'अंक विद्या' (ज्यौतिष)।

खाङ्कार्थाम्बुनवर्क्षेशे लग्नादाद्यन्तवह्निभे।
तुंगाद्यस्थे धनी मुख्यो बाल्ययौवनवार्धके ॥१७॥

यदि कोई उच्च ग्रह प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, नवम या दशम का स्वामी हो, तो भाग्योदयकारक होता है।

यदि बलवान शुभग्रह लग्न से चतुर्थ तक हों तो बाल्यावस्था में सुखी यदि पंचम से अष्टम तक हों तो मध्यावस्था में सुखी; यदि नवम से द्वादश तक हों तो वृद्धावस्था में सुखी।

राशौ नवनवाब्दांश्च स्थाप्यावस्थात्रयं वदेत्।
कोणांगात् वार्धतः पुष्टाः यत्रेष्टास्तत्र वित्तदाः ॥१८॥

लग्न से लेकर द्वादश भाव तक-प्रत्येक भाव के ९वर्ष समझे। लग्न के जन्म से ९ वर्ष तक, धन के १० से १८, तृतीय के १९ से २७, चतुर्थ के २८ से ३६ इत्यादि।

यदि लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, नवम या दशम का स्वामी उच्च होकर किसी भाव में पड़े, तो ९ वर्ष के क्रम से जो अवस्था आवे उसमें शुभफल कहे। मान लीजिए, चतुर्थेश बुध कन्या का चतुर्थ में है तो २८ से ३६ वर्ष तक उसका विशेष शुभ प्रभाव। मान लीजिए कुंभ लग्न है। चतुर्थेश शुक्र उच्च का होकर मीन में द्वितीय स्थान में पड़ा है तो १० से १८ वर्ष की अवस्था में धनागम।

यो जातोऽब्दाहमासादौ वा मध्येद्युनिशोर्जयी।
मासान्तर्यतमे योऽह्नि ततमेब्दे भवेत्सुखी ॥१९॥

इसमें तीन योग बताए हैं:—

(१) वर्ष मास के खंड करके फल कहे, यदि प्रथम खंड में जन्म हो तो सुखी।

(२) दिन के मध्य में या रात्रि के मध्य में जिसका जन्म होता है, वह धनी होता है। मध्य से तात्पर्य है मध्याह्न की एक घटी और मध्यरात्रि की एक घटी।

(३) जन्म-तिथि तुल्य वर्ष संख्या में शुभफल।

लग्ने लाभे च तत्पे वा पुष्टे पूर्णायुरुच्यते।
एकस्मिन् मध्यमं हीनं द्वयोः संख्या तदंकतः ॥२०॥

इसमें तीन योग बताये हैं—

(१) यदि लग्नेश लग्न में हो, लाभेश लाभ में हो या लग्नेश-लाभेश दोनों बलवान् हों तो पूर्णायु होता है।

(२) यदि उपर्युक्त दोनों (लग्नेश, लाभेश) में एक बलीं, एक निर्बल हो तो मध्यायु होता है।

(३) यदि दोनों निर्बल हों तो अल्पायु होता है।

केन्द्रेज्येऽपोग्रशुक्रेक्ष्ये वेज्येलाभे विधौज्ञभे।
खेऽब्जे सद्दृगयुते वा स दीर्घायुर्वाम्बुगैः शुभैः ॥२१॥

इसमें तीन योग बताए हैं—

(१) यदि शुक्र-दृष्ट बृहस्पति केन्द्र में हो और बृहस्पति पर पाप ग्रह की दृष्टि न हो तो जातक पूर्णायु होता है।

(२) यदि बृहस्पति और पूर्ण चन्द्र लाभ में बुध की राशि में हो तो जातक पूर्णायु होता है।

(३) यदि शुभ ग्रह के साथ, शुभग्रह-दृष्ट चन्द्रमा दशम में हो और चतुर्थ में शुभग्रह हों तो जातक पूर्णायु होता है। इस अध्याय में ८८ योग बताये हैं।

दैवज्ञानां च लाभाय द्रष्टुं कर्म शुभाशुभम्।
जन्माब्धिं चततुं पोतो वेदर्षीन्दुमितिप्रियः ॥२२।

ज्योतिषियों के लाभ के लिए, कर्म का शुभ या अशुभ परि-णाम देखने के लिए जीवन-समुद्र को पार करने के लिए इस ग्रन्थ

का निर्माण किया है। इसमें १७४ श्लोक हैं।

श्रीकाशहृद्गच्छगुच्छतरलश्रीदेवचन्द्राब्धियुक्
श्रीउद्योतनसूरिपट्टमुकुट श्रीसिंहसूरिप्रभोः।
शिष्यः श्रीनरचन्द्रनामविदितो योऽध्यापको ज्ञापकः
चक्रे जन्मसमुद्र एष सुधिया तेनार्थगेहं जयी॥

श्री उद्योतन सूरि के पट्ट मुकुट श्री सिंहसूरि के शिष्य श्री नरचन्द्र थे जो बहुत विद्वान् थे और अध्यापक थे। उन्होंने जन्म-समुद्र अर्थात् जीवन-रूपी महासागर की घटनाओं को जानने के लिए इस वेडाजातक का निर्माण किया। जैसे नौका से मनुष्य समुद्र को पार कर सकता है किन्तु बिना नौका के समुद्र पार करना असंभव है, उसी प्रकार इस वेडा(वेडा नौका या नाव को कहते हैं) जातक से—जीवन को घटनाओं का पार लगाना संभव है। विना ज्योतिष के ग्रन्थ के किसी उत्पन्न हुए पुरुष के जीवन में होने वाले कार्य, प्रवृत्ति, शुभाशुभ वृत्त जानना संभव नहीं है।

श्रीमद्विक्रमवत्सरास्त्रिनयनाऽघोषेऽत्र वर्षे तपो
मासे शुद्धचतुर्दशीशशिदिने चम्पावतीपट्टने।
चैत्येऽकारि कुमारपालनृपतेर्वृत्ति चकाशहृदो
पाध्यायो नरचन्द्र इन्द्रसपर्यायरूपामिमाम्॥

राजा इन्द्र के समान प्रभावशाली कुमारपाल राजा की यह वृत्ति (नौकरी या सेवा जिससे वेतन मिलता हो) करते थे। और देवालय से सम्बन्धित पाठशाला या स्थान में अध्यापक थे। विक्रम संवत् ९२३ में फाल्गुन-शुक्ला चतुर्दशी सोमवार को इस ग्रन्थ का निर्माण पूर्ण हुआ। यह ग्रन्थ चम्पावती नगर में लिखा गया। चम्पावती अंगवंश के राजाओं की राजधानी थी। विहार में जहाँ इस समय भागलपुर शहर है, वहाँ चम्पावती नगर प्राचीन समय में था।

लेखक की अन्य कृतियाँ

जातकपारिजात (सौरभ) मूल संस्कृत और हिन्दी भाष्य सहित दो भागों में।

इस भाग के आठ अध्यायों में राशिशील, ग्रहस्वरूप, वियोनिजन्म, अरिष्ट, शुभयोग, अशुभयोग, राजयोग, द्वयादिग्रह योग कहे हैं जिन्हें चक्र, कोष्ठक, कुण्डलियाँ, तालिका आदि उपकरणों द्वारा विस्तारपूर्वक समझाया गया है। रचना मौलिक है किन्तु इसमें श्रीपतिपद्धति, तारावली, सर्वार्थचिन्तामणि, वृहज्जातक तथा अन्य पूर्ववर्ती ग्रन्थों का सार मिलता है। इसमें होराशास्त्र के [illegible]ी उपादेय वि[illegible]य आ गये हैं।

प्रथम भाग : रु० ४५ (अजिल्द); रु० ६० (सजिल्द)
द्वितीय भाग : रु० ६५ (अजिल्द); रु० ८५ (सजिल्द)

[illegible]खाविज्ञान (शरीर लक्षण सहित):—इसमें पाश्चात्य तथा भारतीय सिद्धान्तों के आधार पर हस्तरेखा तथा पुरुष लक्षण, स्त्री लक्षण आदि सामुद्रिक शास्त्र समझाया गया है। रु० २०

अङ्कविद्या (ज्योतिष) :—जन्म की अंग्रेजी तारीख और मास के आधार पर भविष्यफल की सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रमाणित पुस्तक। रु० १०

सुगमज्योतिषप्रवेशिका:—पुस्तक में चार भाग हैं: (१) जन्म कुण्डली का गणित और फलित, (२) वर्ष कुण्डली विचार, (३) प्रश्न कुण्डली, (४) मुहूर्त विचार। रु० २०

फलदीपिका :—हिन्दी भाषा में व्याख्या सहित देवनागरी में मूल श्लोक, प्रथम वार प्रकाशित हुए हैं। दक्षिण भारत में प्रचलित फलित ज्योतिष के बहुत से नवीन सिद्धान्त इसमें दिये गये हैं। ४५० फलित ज्योतिष के योग इस ग्रंथ में दे दिये गये हैं। रु० ४०

जातकादेशमार्गचन्द्रिका—दक्षिण भारत के प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ जातकादेशमार्ग की हिन्दी में व्याख्या। रु० १०

भारतीयलग्नसारिणी:—विना पंचाग, सूर्योदय या इष्टकाल के, जन्म की तारीख, घंटे, मिनट से लग्न स्पष्ट करने की पुस्तक। रु० १६

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली □ वाराणसी □ पटना